अंक 294 वर्ष 60

भाषा

जनवरी–फरवरी 2021

भाषा
जनवरी–फरवरी 2021

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
भारत सरकार

भाषा (द्वैमासिक)

लेखकों से अनुरोध

1. ***भाषा*** में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ प्रायः टंकित रूप में भेजी जाएँ। हस्तलिखित सामग्री यदि भेजी जाए तो वह सुपाठ्य, बोधगम्य तथा सुंदर लिखावट में होनी अपेक्षित है। रचना की मूलप्रति ही भेजें। फोटोप्रति स्वीकार नहीं की जाएगी।

2. लेख आदि सामान्यतः फुल स्केप आकार के दस टंकित पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए।

3. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी, अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम और पता हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी में भी देने का कष्ट करें।

4. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

5. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अतः रचनाओं के साथ डाक टिकट लगा लिफाफा, पोस्टकार्ड आदि न भेंजे। इन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।

6. अस्वीकृत रचनाएँ न लौटा पाने की विवशता/असमर्थता है। कृपया रचना प्रेषित करते समय इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

7. भाषा में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग किया जाता है। अतः रचनाएँ इसी वर्तनी के अनुसार टाइप करवाकर भेजी जाएँ।

8. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।

संपादकीय कार्यालय

संपादक भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066

भाषा

जनवरी–फरवरी 2021

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका (क्रमांक–16)

अध्यक्ष, परामर्श एवं संपादन मंडल
प्रोफेसर रमेश कुमार पांडेय

परामर्श मंडल
प्रो. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'
डॉ. पी. ए. राधाकृष्णन
प्रो. ऋषभ देव शर्मा
प्रो. मंजुला राणा
प्रो. दिलीप कुमार मेधी
श्रीमती पद्मा सचदेव
श्री हितेश शंकर

संपादक
डॉ. राकेश कुमार

सह–संपादक
डॉ. किरण झा
श्रीमती सौरभ चौहान

प्रूफ रीडर
श्रीमती इंदु भंडारी

कार्यालयीन व्यवस्था
सेवा सिंह

**केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार**

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : **60** अंक : **1 (294)**
जनवरी–फरवरी 2021

संपादकीय कार्यालय
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.mhrd.gov.in
www.chd.mhrd.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12

बिक्री केंद्र :
नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस,
दिल्ली - 110054
वेबसाइट : www.deptpub.gov.in
ई–मेल : pub.dep@nic.in
दूरभाष : 011-23817823/ 9689

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।

बिक्री केंद्र :
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.mhrd.gov.in
www.chd.mhrd.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12
सदस्यता हेतु ड्राफ्ट निदेशक, कें. हिं. नि.,
नई दिल्ली के पक्ष में भेजें।

मूल्य :

1.	एक प्रति का मूल्य	=	रु. 25.00	**(डाक खर्च सहित)**
2.	वार्षिक सदस्यता शुल्क	=	रु. 125.00	
3.	पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 625.00	
4.	दस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 1250.00	
5.	बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 2500.00	

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रमणिका

निदेशक की कलम से
संपादकीय
आलेख

1.	सुब्रह्मण्यम भारती की कविताओं में विश्व बंधुत्व की भावना	डॉ. पी. राजरत्नम	9
2.	लोकगीतों में गांधी	प्रो. हरीशकुमार शर्मा	12
3.	भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य में मूल्यों की अभिव्यक्ति	डॉ. अलका आनंद	23
4.	मेरी निगाह में फिरता है आज भी शमशेर	डॉ. पुरुषोत्तम कुंदे	27
5.	रामदरश मिश्र की कविता : अनुभव की बहुरंगी और आत्मीय दुनिया	डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी	31
6.	नागार्जुन : व्यक्तित्व तथा कृतित्व	डॉ. केशव राम शर्मा	38
7.	रेणु के मैला आँचल में ग्रामीण यथार्थ	शिव प्रकाश दास	43
8.	लोकदेवता धर्मराज और उनके देवान	अंबिकेश कुमार मिश्र	48
9.	'नो' मीन्स 'नो'	डॉ. संध्या वात्स्यायन	56
10.	कोई "कहाँ तक कहे युगों की बातें"	डॉ. सुमित्रा महरोल	62
11.	लोकसाहित्य में सामाजिक – सांस्कृतिक परिवेश (विशेष संदर्भ हिमाचली लोकसाहित्य)	डॉ. गुरमीत सिंह	66
12.	सिनेमा की सशक्त स्त्री अदाकारा : 'इंग्लिश–विंग्लिश' और 'मॉम' फिल्म के झरोखे से	डॉ. तृप्ता	78
13.	भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का अक्षय कोश : दशम ग्रंथ	डॉ. ममता सिंगला	81
14.	हिंदी में शोध : दशा एवं दिशा	प्रो. निरंजन कुमार	87
15.	हिंदी और असमिया के विशेषणों का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. प्रीति बैश्य	92
16.	ब्रजावली और हिंदी : भाषाई संदर्भ	प्रो. सूर्यकांत त्रिपाठी	99
17.	गांधी जी के स्वराज्य चिंतन की वैश्विक परिकल्पना	डॉ. जयपाल सिंह प्रजापति	105
18.	भक्ति साहित्य आधारित सर्जनात्मक लेखन : कबीर केंद्रित पक्ष	नेहा मिश्रा	110

हिंदी कहानी

19. दुनिया की सबसे खूबसूरत खराब हो गई पेंटिंग	सुशांत सुप्रिय	116
20. किस गुनाह की सजा	शमा ख़ान	120

हिंदी कविता

21. कोई हँसी बेचने आया था	अजय मलिक	125
22. नर्मदा के घाट	प्रियदर्शी खैरा	126
23. मैं ब्रिटेन में हूँ आजकल... लेकिन	तिथि ढोबले	127

अनूदित खंड

कहानी

24. औकात (मैथिली कहानी)	अनुवाद : 'पद्मश्री' उषाकिरण खाँ	128
25. एक वृक्ष की मृत्यु (डोगरी कहानी)	राजेश्वर सिंह 'राजू' अनुवाद : डॉ. भारत भूषण शर्मा	134

कविता

26. मूल और ब्याज (डोगरी/हिंदी)	पद्मा सचदेव अनुवाद : कृष्ण शर्मा	140
27. गुमशुदा मुहब्बत (पंजाबी/हिंदी)	शम्मी जालंधरी अनुवाद : नीलम शर्मा 'अंशु'	142

परख

28. राष्ट्र, समाज और मानवीय मूल्यों पर केंद्रित कविताएँ (चेतना के स्वर/कवि : कुमार हृदयेश)	डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय, डी. लिट्.	144
29. एक विवेचन सात समंदर पार का (वृत्तांत सात समंदर पार का/योगेंद्र कुमार)	डॉ. रमेश चंद्र शर्मा	148
30. कठिन जीवन की सहज कथा (गंगा रतन बिदेसी/उपन्यास/मृत्युंजय कुमार सिंह)	डॉ. सुनील कुमार तिवारी	151

संपर्क सूत्र **155**

सदस्यता फॉर्म

निदेशक की कलम से

विविध अभिव्यक्ति एवं विचार पीढ़ियों तक मानवता का अमर संदेश देती हैं। विचारों की भावाभिव्यक्ति सभ्यता की परतें अनावृत करने के साथ–साथ शाश्वत और शिव की अनूठी संकल्पना को अनवरत गतिशीलता प्रदान करती हैं। पुरातन और नवीन का संयोग सदैव आकांक्षाओं की असीम संभावना जगाता है। इन संभावनाओं को विचाररूपी कल्पनाओं के पंख साहित्य एवं कला को विस्तार प्रदान करता है। साहित्य का क्षेत्र अथाह, असीम है। कवि की कल्पना, कथाकार का गद्यगुल्म उन सभी सुलझे–अनसुलझे पहलुओं को व्यापकता प्रदान करता है। भाषा पत्रिका साहित्य, सजगता और निरंतरता की कड़ी को गतिशीलता प्रदान करने की दिशा में अहर्निश संलग्न रहती है। इस पत्रिका में अखिल भारत से विभिन्न भाषा–भाषियों के हिंदी भाषा और साहित्य की श्रेष्ठ सामग्री को स्थान देने का प्रयास किया जाता है। विभिन्न विधाओं की रचनाओं को अपने विविध स्तंभ में सुरुचिपूर्ण स्वरूप प्रदान करने का भरसक प्रयास किया जाता है। हिंदी की रचनाएँ जहाँ भाषा की शोधपरक प्रवृत्ति को पुष्ट करती हैं वहीं अनूदित रचनाएँ क्षेत्रीयता और अंचल के सुवास से सुवासित होती हैं।

भारत का संविधान 26 नवंबर, 1949 को संविधान सभा द्वारा पारित हुआ था तथा 26 जनवरी, 1950 से प्रभावी हुआ। 26 नवंबर के पावन दिवस को भारत के संविधान दिवस के रूप में घोषित किया गया। संविधान सभा द्वारा पारित होने पर 26 जनवरी का दिन गणतंत्र दिवस के रूप में मनाया जाता है। विश्व के वृहत् लोकतंत्र भारतवर्ष के 72वें गणतंत्र दिवस के रूप में वर्ष 2021 का गणतंत्र दिवस मनाया गया। भारत वर्ष की गौरवशाली परंपरा के प्रतीक के रूप में राजधानी दिल्ली के राजपथ पर सेना की तीनों शाखाओं का रोमांचित कर देने वाला शौर्य प्रदर्शन प्रत्येक भारतवासी के हृदय में देशप्रेम, त्याग और बलिदान की भावना का संचार करता है। भारतवर्ष की महान सांस्कृतिक विरासत को अक्षुण्ण रखते हुए 72वें गणतंत्र दिवस के अवसर पर भाषा का यह अंक प्रबुद्ध पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। सुधी पाठकों के सुझावों का भाषा पत्रिका सदैव स्वागत करती है। इसी अपेक्षा के साथ यह अंक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

गणतंत्र दिवस की शुभकामनाएँ, जय हिंद!

रमेश कुमार पांडेय

प्रोफेसर रमेश कुमार पांडेय

जल को भीजि पवन का यंभा रकत बूंद का गारा।
हाड़ माँस नाड़ी को पिजरु, पंखी बसै विचारा
प्रानी किआ मेरा, किआ तेरा, जैसे तरवर पंखी बसेरा।
राखहु कंध उसारहु नींक, सोढ़ तीनिघध तेरी सीवां।।
बंके लाल पागसिर ढेरी, इहु तनु होइगों भसम की ढेरी।
ऊँचे मंदर सुंदर नारी, राम नाम बिनु बाजी हारी।।

– रैदास

कोई और कोई और कोई और–और अब भाषा नहीं–
शब्द, अब भी चाहता हूँ
पर वह कि जो जाए वहाँ–वहाँ होता हुआ तुम तक पहुँचे
चीजों के आरपार दो अर्थ मिलाकर सिर्फ एक स्वच्छंद अर्थ दे
मुझे दे। देता रहे जैसे छंद केवल छंद घुमड़–घुमड़कर भाषा का भास देता हुआ
मुझको उठाकर निःशब्द दे देता हुआ

– रघुवीर सहाय

मैं गौर से सुन सकता हूँ, औरों के रोने को मगर दूसरे के दुःख को
अपना मानने की बहुत कोशिश की, नहीं हुआ।

– श्रीकांत वर्मा

संपादकीय

स्वतंत्रता प्राप्ति के 73 वर्षों के पश्चात् भी हमारे देश में अंग्रेजी भाषा रोजगार और आजीविका का प्रमुख माध्यम बनी हुई है इस तथ्य को हमें स्वीकारना ही होगा। भारत के आर्थिक तंत्र में आज भी अंग्रेजी भाषा का ही वर्चस्व है, बड़ी–बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों, बड़े–बड़े औद्योगिक घरानों में अंग्रेजी भाषा का ही प्रभुत्व है। संचार माध्यमों में आई क्रांति के परिणामस्वरूप उभरते हुए मशीनी युग ने ग्रामीण, शहरी और महानगरीय जीवन को पूर्ण रूप से यांत्रिक एवं व्यवसायी बना दिया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि जीवन–स्तर को ऊँचा उठाने की दौड़ में मनुष्य अंधाधुंध भाग रहा है। 'बहुराष्ट्रवाद' का आक्रमण जारी है और हमारे जीवन मूल्यों पर संकट गहराता जा रहा है। इस स्थिति का एक सकारात्मक पक्ष यह भी है कि इसी बाजार क्रांति के कारण हिंदी का जीविकापरक रूप भी उभरकर सामने आया है। आज का वैश्विक बाजार पूरी तरह इस तथ्य से अवगत है कि अपने माल को खपाने, बिक्री बढ़ाने और उपभोक्ता वर्ग तक अपनी पहुँच बढ़ाने की दृष्टि से अपने लक्षित वर्ग की भाषाई–सुविधा को नजरअंदाज नहीं कर सकता। इसीलिए उसने बाजार की सुविधा के लिए उपभोक्ता की भाषाओं का सम्मान करना प्रारंभ कर दिया। बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने हिंदी के भूगोल के विस्तार को समझकर 'ग्लोबलाइजेशन' को 'लोकलाइजेशन' के रूप में अपनाकर भारत की इस क्षमता का दोहन करना प्रारंभ कर दिया है। जबकि दूसरी ओर हम हिंदी के राष्ट्रभाषा और 'राजभाषा' के स्वरूप को लेकर भीतरी झगड़ों में पड़े हैं। भारतीय जनमानस इस तथ्य से भली–भाँति परिचित है किंतु उसकी मानसिकता यह है कि वह विदेशी चीजों के मत–अभिमत का और विचार दृष्टियों का अंधानुकरण करता है। भाषा के रोजगारपरक रूप में हिंदी की स्थिति का अवलोकन करना आवश्यक है। इसके लिए हिंदी के विविध पक्षों एवं आयामों का उद्घाटन करना अपेक्षित है। विद्वानों का ध्यान अब इस ओर गया है और वे इस दिशा में नई संभावनाएँ तलाशने के लिए प्रयासरत हैं।

हिंदी का आजीविकामूलक रूप गत कुछ वर्षों में उभरा है। पिछले कुछ समय में हिंदी का एक नया चरित्र विकसित हुआ है। समय के साथ चलने के लिए यह परिवर्तन आवश्यक है। संचार–क्रांति ने जन–संचार के क्षेत्र में हिंदी के माध्यम से आजीविकामूलक हिंदी के लिए रोजगार के नए द्वार खोले हैं। विज्ञान के विषय क्षेत्रों यथा भौतिकी, रसायन विज्ञान, खगोल विज्ञान, जीव विज्ञान, परमाणु विज्ञान आदि के साथ–साथ अभियांत्रिकी और प्रौद्योगिकी, चिकित्सा और आयुर्वेद आदि असंख्य विषय क्षेत्र हैं जिनमें हिंदी के प्रचार–प्रसार की संभावनाओं को तलाशा जा सकता है और विस्ताारित किया जा सकता है।

ऐसे ही कुछ अन्य विविध विषयों से संबंधित आलेखों से समन्वित भाषा का यह अंक सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। पाठकों से प्राप्त सुझावों का स्वागत है।

(डॉ. राकेश कुमार)

मैं सोच रहा था जाने क्या हो गया मुझे
मन किन अनजानी डगरों में है भटक गया
कितने अँधियारे कोने हैं मानव मन के।
कुछ किए नहीं बनता, दिन यों ही बीत रहें
इस निरुद्देश्य जीवन से किसको लाभ भला
भूभार बने रहने से तो मरना अच्छा!

– रामविलास शर्मा

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।

दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद
धुआँ उठा आँगन के ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठीं घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद

– नागार्जुन

भाषा ISSN 0523-1418

सुब्रह्मण्यम भारती की कविताओं में विश्व बंधुत्व की भावना

डॉ. पी. राजरत्नम

सुब्रह्मण्यम भारती का जीवनकाल 1882 –1921 तक माना जाता है। तमिलनाडु के तूत्तुक्कुडी जिले में एट्टयपुरम नामक गाँव में इनका जन्म हुआ। सामंतवाद और साम्राज्यवाद के युग में वे समता और स्वतंत्रता में विश्वास रखते थे। साथ ही उनकी भावना वसुधैव कुटुंबकम की थी। जब भारत देश अंधविश्वास एवं अगणित रूढ़ियों से ग्रस्त हो गया था तब महाकवि भारती ने सच्चे राजनैतिक, सामाजिक तथा मानसिक स्वराज का स्वर निर्भय होकर गुंजित किया। उन्होंने सुदूर दक्षिण भारत के कवि होने के नाते तमिल भाषा में लेखनी चलाई, किंतु उनका लेखन भूगोल की सीमाओं को पार कर संपूर्ण भारत की संस्कृति की अभिव्यक्ति के साथ राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय भावनाओं को भी अभिव्यक्त करता था, जो अंततः हमारे मानव स्वभाव में निहित विश्व चेतना का ही प्रतिनिधित्व करती है। उन्होंने भारत के इतिहास में प्रगाढ़ देशप्रेमी, स्वातंत्र्योपासक, समाज सुधारक, राष्ट्रीय एकता के अग्रदूत और नई मानवीय व्यवस्था के मसीहा के रूप में विशिष्ट और अमर गौरव प्राप्त किया।

सारे विश्व की मानव जाति एक है। सभी मनुष्यों के खून का रंग एक ही है, एक जैसे ही साँस लेते है, एक सी ही सुख–दुख की संवेदनाएँ जिनसे राग द्वेष उत्पन्न होते हैं एवं सुख एवं दुख की अनुभूति करते रहते हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह मनुष्य हिंदू, मुस्लिम व ईसाई या अन्य पंथानुगामी है, क्योंकि साँस या संवेदनाएँ इन संप्रदायों से परे हैं। कोई भी संवेदना न तो हिंदू होती है न ही मुस्लिम, न ईसाई या किसी अन्य पंथ से संबंधित। किसी भी पंथ से संबंध क्यों न हो यदि विकार जगाता है तो दुखी होगा ही कुदरत का कानून सबके लिए बराबर है। इसलिए तो कहा जाता है कि कानून की नज़र में सब बराबर हैं। एक सद्गृहस्थ जैसे अपनी पत्नी और संतान को जोड़े रखता है वैसे ही परिवार के अन्य लोगों को, सगे–संबंधियों को देशवासियों से एवं दुनिया के सभी लोगों से संबंध बनाए रखे, प्यार करते रहे।

भगवान बुद्ध ने मनुष्य की एक ही जाति मानी थी।

निर्धन से स्नेह सत्कार का संबंध बनाए रखना, उनसे सहानुभूति और सहयोग बनाकर रखना, संकट में पड़े –बंधुओं को यथाशक्ति सहायता पहुँचाना, जाति संबंधों को जोड़े रखना, रंग–रूप, बोली–भाषा, वेष–भूषा, वर्ण–गोत्र, किसी देश–विदेश का हो, मनुष्य तो मनुष्य ही है और वह एक ही जाति का प्राणी है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया

अर्थात् संसार में सब सुखी रहें, सब निरोग रहें, सब सुख देखें और विश्व में कोई भी दुखी न हो।

विश्व बंधुत्व/वसुधैव कुटुंबकम एक व्यापक मानव–मूल्य है। व्यक्ति से लेकर विश्व तक इसकी व्याप्ति है–व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व। संपूर्ण विश्व इसकी परिधि में है। प्राणी के कल्याण की भावना की कामना ही इसका लक्ष्य है।

महाकवि सुब्रह्मण्यम भारती की कविताओं में विश्व बंधुत्व–उक्त विषय के लिए उनका यह एक विषय ही काफी है जो कि भलाई और ज्ञान चाहे किसी भी देश से आए या मिले, कोई भी दिखाए उसी रास्ते से चलने वाले/जाने वाले ही बुद्धिमान हैं, अच्छे हैं। भाषा के नाम पर जो लड़ाई देश–विदेश में चल रही है उसका निवारण उन्होंने बताया है।

भारती के तमिल प्रेम, भारत शक्ति एवं विश्व बंधुत्व की भावना आदि में क्षेत्रवाद, संकीर्णता अथवा किसी प्रकार का ओछापन नहीं था उनकी कल्पना में व्यापकता है। उनके अनुसार सिंधु नदी पर चाँदनी में तेलुगु गीत गाती हुई केरल की कन्याओं के साथ नौकाविहार संभव है। जैसे–

सिंधु नदी की इठलाती उर्मिल धरा पर,
उस प्रदेश की मधुर चाँदनी रातों में।
केरलवासिनी अनुपमेय सुंदरियों के संग
हम विचरेंगे बलखाती चलती नावों में।
मधुर–मधुर तेलुगु गीतों को गाएँगे।
सब शत्रुभाव मिट जाएँगे।

इस कविता के भाव यद्यपि राष्ट्रीय स्तर पर सीमित है फिर भी विश्व बंधुत्व बनाएँ रखने की नींव है। कितनी ऊँची भावना है। उनका राष्ट्रवाद आत्मा का हनन करने वाला चरम आकांक्षा तथा समस्त मानव के लिए धरती पर शांति और सांसारिक सुख की कामना का समन्वय है। और एक संदर्भ में वे वीणा देवी सरस्वती से प्रत्येक गाँव की प्रत्येक गली के प्रत्येक घर को माधुर्य से भरने और प्रकाशित करने की प्रार्थना करते हैं। वह विजयनाद गीत में कहते हैं–

घर–घर में होवे कलाओं का प्रकाशन
घर गली में हो पाठशाला एक–दो
देश में गाँव–गाँव में
नगर–नगर में हो विद्यालय अनेक
जहाँ नहीं विद्या का वास हो
अग्नि के हवाले कर दे उस नगर को
अमंगलहरिणी अमृतरूपा शारदा
माँ की कृपा का मार्ग यह जानो।

अच्छी शिक्षा, अधिक पाठशालाएँ, अध्यनन एवं कलाओं के माध्यम से दुनिया से रिश्ता तय कर सकते हैं। आज का युग इसका साक्षी है।

विजयनाद कविता में एक जगह पर कवि प्रेम के साम्राज्य की घोषणा यूँ करते हैं–

मानव–मानव एक समान
एक जाति की हम संतान
यही दृष्टि है खुशी आज की
बजा नगाड़ा, करो घोषणा प्रेम–राज्य की।

तात्पर्य है सब मानव एक हैं। हम एक ही जाति की संतान हैं। इस खुशी को नगाड़ा बजाकर मनाओ, जिसके माध्यम से मंगलमय कामना की प्रतीक्षा करते हैं, जो कि प्रेम की जय अमित भावना से गूँजकर सारी दुनिया को घोषित कर दे कि हम सब प्रेम भावना से रहे। जिसमें सबका भला हो। इस विशद विश्व में सब कुछ मंगलमय हो। उपर्युक्त विचार से प्रतीत होता है कि भारती की कविता में ज्ञान है और वे विश्व प्रेम की ओर हमें आकर्षित कर वसुधैव कुटुंबकम की भावना को बनाए रखने की घोषणा करते हैं।

वे हिंदू, मुस्लिम और ईसाई में कोई भेद नहीं मानते हैं। कहते हैं इन सबका भगवान एक ही है। जो अलग–अलग तरीके से आराधना करते हैं। बस इतना ही है। फिर आपस में क्यों लड़ते हैं?

ब्राह्मण, जो अग्नि की पूजा करते हैं
मुस्लिम जो पश्चिम दिशा सम्मुख नमाज पढ़ते हैं
ईसाई जो सूली का वंदन करते हैं
इन सबका भगवन
सबो में विद्यमान है
उस जग में एक ही मान
लड़ना भिड़ना व्यर्थ अभिमान।

विजयनाद कविता में रंग–बिरंगी बिल्लियों का उदाहरण देकर कहते हैं कि अनेक रंग की होते हुए भी सब बिल्लियाँ ही तो हैं देखिए–

रंग भेद तो कदम–कदम पर
नर से भेद नहीं होता पर
रंग भले ही अलग–अलग है

कहलाती बिल्ली ही सब हैं।
रंग कोई भी क्यों न हो
वर्ग एक ही न यहाँ तो
ऊँच–नीच भाव रंगे में
क्या कह सकते हैं अंग में।

इससे स्पष्ट होता है कि रंग में भेद नहीं हो सकता है। मानव के आचार–विचार और भावनाओं में बहुधा हममें एकीकरण होना चाहिए। कितनी महत्वपूर्ण भावना अभिव्यक्त हुई है। इन सब में सहोदर एवं भाईचारा रखने की प्रेरणा देते हैं वे एक स्थान पर बताते हैं कमजोर को ताकतवर द्वारा निचोड़कर या खाकर जीना बेकार समझते हैं। जैसे–

धरती–धरती पर हम सब कोई
कमजोरों को ताकतवर
खाकर जिए? यह क्या जीवन?
आज यह विडंबना अधिक देखने को मिलती है

और एक स्थान पर कहते हैं–

सारे के सारे जन समुदाय में
मिलकर बढ़ाएँ ज्ञान–विज्ञान
करे यदि छोटों का उत्कर्ष
ईश्वर को होगा हम पर हर्ष।

वे कहते हैं बड़ों का बड़प्पन छोटों को साथ ले चलने में है। यही भावना उक्त पंक्तियों में निरूपित होती है। सभी में भाईचारा निभाकर साम्य भावना लाने की कोशिश करता हुआ नज़र आता है। 'विजयनाद' शीर्षक कविता में उनका कहना है–

साम्य सभी में भाईचारा
इनके सिवा नहीं कुछ चारा
इतना ही होगा कल्याण
मिल पाएगा सबको त्राण।

इससे ज्ञात होता है कि विश्व कल्याण की भावना एक दूसरे से भाईचारे के साथ रहने से ही साध्य है।

उपर्युक्त सभी अभिव्यक्तियों से कह सकते हैं कि भाईचारे, प्रेम की जय, प्रेम राज्य, हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, एकता, वर्ण भेद, जाति भेद, धार्मिक मतभेद आदि के जरिए सुब्रह्मण्यम भारती सच्चे रूप में समाज सुधारक, क्रांतिकारी कवि व विश्व बंधुत्व की भावना रखने वाले कवि हैं। जिन्होंने विध्वंश नहीं, आत्मशोधक की प्राचीन भारतीय परंपरा की पुनः स्थापना की कोशिश की है। उनकी दिलचस्पी से स्वाधीनता की और विश्व बंधुत्व की वह आकांक्षा पुष्पित और पल्लवित होती हुई नज़र आती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

सुब्रह्मणयम भारती, संकलित कविताएँ एवं गद्य, प्रकाशक अखिल भारतीय सुब्रह्मण्यम भारती शताब्दी समारोह समिति।

तमिल काव्य में राष्ट्रवादी स्वर : सुब्रह्मण्यम भारती विश्व संवाद केंद्र, नई दिल्ली। विजय कुमार रबिदास, डॉ. राम विलास शर्मा की दृष्टि में सुब्रह्मण्यम भारती का जीवन और साहित्यकर्म, सरस्वती प्रकाशन, नई दिल्ली।

– एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग, तमिलनाडु केंद्रीय विश्वविद्यालय,
तिरुवारूर–610005

❑❑❑

लोकगीतों में गांधी

प्रो. हरीशकुमार शर्मा

एक गीत बचपन में हम लोग अपनी पाठ्य पुस्तक में पढ़ते थे– "हम सबके थे प्यारे बापू। सारे जग से न्यारे बापू।" उस समय हम नहीं समझते थे कि बापू सारे जग से न्यारे कैसे थे? लेकिन इस संदर्भ में 'दीवार' फिल्म का एक संवाद याद आता है जिसमें अमिताभ बच्चन के यह कहने पर कि मेरे पास गाड़ी है, बंगला है ... तुम्हारे पास क्या है? शशि कपूर कहते हैं कि मेरे पास माँ है! हम भी दुनिया को गर्व से कह सकते हैं कि हमारे पास गांधी है। भारत ने दुनिया को बहुत कुछ दिया है और हमने बहुत सारे ऐसे संदेश दिए जो शांति की भावना लिए हुए थे। हमने कभी आक्रामक अंदाज नहीं अपनाया। कभी मानवता को विखंडित करने वाली बातें नहीं कीं। मानवता के निर्माण की, विश्व में कैसे शांति और सद्भाव स्थापित हो– इसकी बात की और आधुनिक युग में निश्चित रूप से इस संदेश को दुनिया में फैलाने वाले नामों में से सबसे बड़ा नाम महात्मा गांधी का है जो कि शांति के प्रतीक माने जाते हैं, अहिंसा के प्रतीक माने जाते हैं।

आधुनिक युग में हुए विश्वभर के महापुरुषों की यदि गणना की जाए तो उनमें महात्मा गांधी का नाम सबसे ऊपर रखने में संभवतः किसी को कोई आपत्ति नहीं होगी। हम सौभाग्यशाली हैं कि महात्मा गांधी हमारे राष्ट्रपिता हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी निश्चय ही आधुनिक भारत की एक बड़ी उपलब्धि हैं और हमारे गर्व का बहुत बड़ा कारण हैं। विश्व सभ्यता को उनकी देन अप्रतिम है। भारत की वे एक महान विरासत हैं। उनका कहा–किया–बोला–लिखा सब अब हमारी अमूल्य धरोहर है। वस्तुतः गांधी स्वयं में एक व्यक्ति मात्र न होकर एक संस्था हैं, एक विचार हैं, एक जीवन–शैली के प्रतीक हैं जो मानवतावाद के विकास में सहायक हैं। जीवन जीने का एक दर्शन हैं। जीवन को बेहतर बनाने का एक व्यावहारिक सिद्धांत हैं। गांधी जी ने हमें बहुत कुछ दिया है।

वस्तुतः गांधी जी का जीवन इतनी घटनाओं से भरा हुआ है, इतने अनुभव हैं उनके और उनसे जुड़े हुए लोगों के, देश और समाज के लिए इतनी बड़ी देन है उनकी, इतना विस्तृत एवं बहुआयामी चिंतन और दर्शन है उनका, विभिन्न क्षेत्रों पर इतना प्रभाव है उनका कि किसी एक व्यक्ति का एकबारगी उन सब पर ध्यान जाना भी सहज नहीं। उनके जीवन, चिंतन एवं आचरण का अध्ययन करने से हमें बहुत से जीवनोपयोगी सूत्र प्राप्त होते हैं। उनको याद करना, भारत और विश्व को उनके योगदान पर विचार करना, उनके चिंतन और लेखन का विवेचन–विश्लेषण करना, उनके दर्शन की वर्तमान में उपयोगिता को समझना और विभिन्न क्षेत्रों में उनके प्रदेय को रेखांकित करना उनको सच्ची श्रद्धांजलि देना भर ही नहीं है, अपितु अपने लिए उनके यहाँ से बहुत–सी सारगर्भित और प्रासंगिक शिक्षाओं को ग्रहण करना भी है।

राजनीति, धर्म, समाज, शिक्षा, भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि सभी क्षेत्रों में गांधी जी की अपनी एक दृष्टि रही है तथा हर क्षेत्र में एक अलग परिप्रेक्ष्य को लेकर वे चले हैं। उनका प्रभाव भी इन तमाम क्षेत्रों पर पड़ा है। भारतीय भाषाओं और हिंदी के संबंध में उनके द्वारा व्यक्त किए गए विचारों का अपना विशेष महत्व है। भारतीय साहित्य भी गांधी और गांधी–दर्शन से अछूता नहीं रहा है। भारतीय साहित्य में, यहाँ तक कि लोकसाहित्य में भी; गांधी जी की जबरदस्त उपस्थिति देखी जा सकती है और उनके विचारों का व्यापक प्रभाव रेखांकित किया जा सकता है। यह ऐसे ही नहीं है। गांधी का अद्वितीय योगदान है मानवता के लिए जिसकी स्वीकृति हमारे साहित्य और लोकसाहित्य में देखने को मिलती है।

हम बात करने जा रहे हैं "लोकगीतों में गांधी विषय पर। साहित्य में गांधी किस रूप में उपस्थित हैं, यह एक बहुत विस्तृत विषय है। साहित्य में गांधी पर बहुत कुछ लिखा गया है। बहुत सारी कविताएँ उन पर लिखी गई हैं। उपन्यास, नाटक, कहानियाँ, संस्मरण, सिनेमा आदि में बहुत रूपों में गांधी और गांधी–दर्शन साहित्य में उपस्थित है। कविताएँ तो उस दौर में और उस दौर के बाद कितनी ही उन पर लिखी गई। लेकिन बड़ी बात यह है कि लोक में गांधी को बहुत समादर मिला। लोकगीतों में उनकी भरपूर उपस्थिति रही। लंबे समय तक वे लोकगीतों के एक बहुत बड़े नायक रहे। साहित्य हमारे समाज के विचारों के निर्माण में बड़ी भूमिका निभाता है। इसी तरह लोकसाहित्य लोक की धारणा के निर्माण में अपना महती योगदान देता है। मैथिलीशरण गुप्त की कविता की बड़ी प्रसिद्ध पंक्तियाँ है– *चल पड़े जिधर दो डग मग में चल पड़े कोटि पग उसी ओर। उठ गई जिधर भी एक दृष्टि उठ गए कोटि दृग उसी ओर*। यह वातावरण तब बन गया था। गांधी चल रहे हैं तो हजारों लोगों की, लाखों लोगों की भीड़ उनके पीछे चल रही है; तो कैसे? लोकसाहित्य में वे भावनाएँ उभारी गईं जिनके माध्यम से एक वातावरण का निर्माण हुआ। लोगों को लगा कि गांधी हमारे लिए कष्ट सह रहे हैं। तमाम तरह की भावनाएँ गीतों में उभरीं।

गांधी जी का प्रभामंडल ऐसा था, उनके कार्यों की धूम ऐसी मची थी कि जिन क्षेत्रों तक वे नहीं भी पहुँच पाए, वहाँ तक उनकी अनुगूँज पहुँची। फिर कहीं पर उनका साथ देने का संकल्प लिया गया तो कहीं उनके कार्यों की सराहना हुई। छत्तीसगढ़ के एक आदिवासी समाज के लोकगीत की पंक्तियाँ हैं–

गांधी बाबा, गांधी बाबा, आले आर जो आयुमे।
झट्टो–पट्टो इंगरेल कुली, आले डेसोन नामा हातरे।

(गांधी बाबा हम सब तुम्हारे सत्याग्रह के साथी हैं। अब झटपट अंग्रेजों को अपने देश से भगाना है)[1]

अरुणाचल जैसे सुदूरवर्ती प्रदेश में गांधी जी का आगमन नहीं हुआ, फिर भी देश को उनके योगदान से यहाँ का समाज अपरिचित नहीं। यहाँ का लोकगीतकार गाता है–

गो राजा पाबोना/ गांधी राजा पाबोना/ गो राजा पाबोना
...गो राजा पाबोना/ मिका सादिन पाबोना/ गो राजा पाबोना।

(क्योंकि गांधी जी ने देश को स्वतंत्रता दिलाई, इसलिए वे राजाओं के राजा थे। यह उनकी ही देन है कि हम एक स्वतंत्र देश के नागरिक हैं।)[2]

इसी तरह से यहाँ के एक पोनुड़ गीत की पंक्तियाँ देखें–

आइए दिल्ली महात्मा गांधी
...आइए दिल्ली महात्मा गांधी।[3]

गांधी जी की सबसे बड़ी देन है देश को आजादी दिलाना। लोकदृष्टि भी इसको स्वीकार करती है– आजादी का डंका आलम में बजवा दिया गांधी बाबा ने। उनके द्वारा चलाए गए आंदोलन से देश भर के बड़े–बड़े नेता जुड़े। उन सबके योगदान को स्वीकार किया जाता है। पर सबसे अधिक चर्चा गांधी और जवाहर की होती है।

लोक में अन्य सब बड़े–बड़े नाम उतने नहीं गए जितने ये दो नाम। इस लोकगीत में स्त्रियाँ आजादी पाने की खुशी मना रही हैं कि अब देखो, सारा राज पलट गया है और देश में आजादी आ गई है। वे कहती हैं कि गुलामी की काली अंधेरी रात मिट चली है और स्वतंत्रता का स्वर्णिम प्रभाव विहँसता हुआ दिखाई दे रहा है। यह सवेरा कौन लाया है? नेहरू। और काली रात किसने मिटाई है? गांधी ने!

अब सारो पलट गयो राज देस में आजादी आई बहना

मिट गयी कारी रात सवेरो हँसत दिखा रओ बहना

नेहरू सवेरो लाओ मोरी बहना, गांधी ने मेटी रात

देस में आजादी आई बहना[4]

एक प्रसिद्ध फिल्मी गीत है– "दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल, साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल"। लोकगीतों में भी ऐसी भावनाएँ व्यक्त की गई हैं। देखें एक हरियाणवी लोकगीत की ये पंक्तियाँ–

आजादी की हुई लड़ाई।/गांधी नै एक फौज बणाई।

बरछी तीर तलवार न जिसपै/सत अहिंसा का हथियार था जिसपै

लिए हाथ में तिरंगा झंडा/ फोड़या अंग्रेजों का भण्डा।[5]

यह कैसे संभव हुआ? बहुत बड़ी जनभागीदारी से संभव हुआ। जनभागीदारी इसलिए इतने बड़े पैमाने पर हो पाई क्योंकि लोगों का डर गांधी ने निकाल दिया। क्या बालक और क्या बूढ़े सभी को गांधी ने सिपाही बना दिया तथा औरत–मर्द सभी को इस लड़ाई के लिए तैयार कर दिया। इस तरह से न तोप चली न बंदूकें लगीं, सत्याग्रह से गांधी ने आजादी की लड़ाई जीत ली–

वारे का बूढ़े बना दए सिपइया/औरत संग मरद सजाये देसी गांधी ने

तोप चलीं न लागी बंदूकें/सत्याग्रह से जीती लड़ाई गांधी ने।[6]

लोग जुड़ते चले गए, आंदोलन बढ़ता गया और अंततः एक दिन हमें सफलता मिली। देखिए लोकगीतकार कैसे इस बात को कहता है–

गांधी जी महराज महात्मा मेरा बनरा लिया

मोह लिया भरमाय लिया खादी पहना सजवाइ लिया

पुलिस कचेरी डंडा गोली का डर सवई भगाइ दिया

जेल भिजा कैदी बनवाया देश का पाठ पढ़ाई दिया[7]

स्त्रियाँ इस बन्ना–गीत में गा रही हैं कि गांधी जी महाराज ने हमारा बन्ना ले लिया। उन्होंने उसको ऐसा मोह लिया और कुछ इस तरह से भरमा लिया कि वह विवाह–मंडप और वर–वेश को छोड़, खादी पहनकर आजादी की लड़ाई के लिए सज्जित हो गया। उसका पुलिस, कचहरी, डंडा, गोली का सारा डर उन्होंने भगा दिया और उसे ऐसा देश का पाठ पढ़ाया कि उसको जेल भेजकर कैदी बनवा दिया। बन्ना विवाह के लिए सन्नद्ध वर को कहा जाता है। गांधी जी का ऐसा प्रभाव लोगों पर पड़ा कि वे विवाह–मंडप तक से उठ–उठकर स्वतंत्रता–आंदोलन से जुड़ गए। लोकसाहित्य ऐसे ही झूठ–मूठ में नहीं लिखा जाता। निश्चित रूप से ऐसी कुछ घटनाएँ घटी होंगी, जिसके कारण इस तरह के लोकगीत प्रचलित हुए।

गांधी जी का योगदान ताली बजाकर अंग्रेजों से राजपाट छीन लेने तथा देश को आजादी दिलाने भर तक सीमित नहीं है। लोगों को निडर बनाने, उनको सत्याग्रह की शक्ति का अहसास कराने, सत्य–अहिंसा में उनका विश्वास पैदा करने की दृष्टि से भी उनका महत्व है। परंतु, लोकगीतकार एक और बड़ी बात कहता है। जाति, क्षेत्र, भाषा आदि के भेदों को तोड़कर और सरकार के भय को दूर भगाकर देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना जगाने तथा उन्हीं के द्वारा देश को स्वतंत्रता दिलाने की

दृष्टि से भी उनकी भूमिका बड़ी है। इसलिए सत्य, अहिंसा के पुजारी गांधी में लोक को अवतारी पुरुष के लक्षण दिखते हैं।

एक लोकगीत की यह पंक्तियाँ देखें–

जात–पाँत तोड़कर देसी बना दव/डरखों भगाइ सरकारी

कर–कर सत्याग्रह लड़ी रे लड़ाई/राजपाट छीनो दे तारी।

गांधी को मानौ औतार/ जे है सत्य अहिंसा के पुजारी।[9]

इस पतले–दुबले आदमी में कैसा अपरिमित बल था, यह दुनिया ने देखा। भारत की जनता ने साथ इसलिए दिया, क्योंकि उसने यह ठीक से समझ लिया कि गांधी अपने लिए नहीं; देश के लिए, देश की जनता के लिए यह लड़ाई लड़ रहे हैं। उनकी यह लड़ाई स्वार्थ की नहीं, परमार्थ की है।

बापू भले हते बलधारी, जिनको जानत दुनिया सारी

परस्वारथ के लाने जिनने, छोड़े महल अटारी

देस विदेसन लगा लँगोटी, घूमें खादी धारी

बिना हथियारन लड़ी लड़ाई, कर गए देस सुखारी[9]

गांधी जी ने अन्याय के विरुद्ध अपनी लड़ाई अफ्रीका से आरंभ की और फिर भारत में इसे पूर्ण परवान चढ़ाया। एक सुमधुर लय वाले बुंदेली लोकगीत में इसका बखान इस प्रकार किया गया है–

गांधी बाबा तोर बँसुरिया बाजी कौने–कौने ओर।

अफ्रीका नेटाल में बाजी, विपदा होइगे थोर।

चंपारन खेड़े में बाजी, कटा कष्ट घनघोर।

सो बंसी अब बाज रही है, भारत में चहुँओर।[10]

एक मनोरंजक पैरोडी गीत में गांधी जी के कारनामों का जिक्र कुछ इस तरह किया गया है–

चना जोर गरम बाबू मैं लाया मजेदार चना जोर गरम

चने को गांधी जी ने खाया

जा के दण्डी नमक बनाया

सत्याग्रह संग्राम चलाया, चना जोर गरम

तुम अभी चना चबेना खाओ, खा के गांधी जी बन जाओ

अंग्रेजो को मार भगाओ, चना जोर गरम[11]

गांधी जी के पास क्या था? कोई शस्त्र तो उन्होंने हाथ में नहीं उठाया! बस, सत्याग्रह की शक्ति थी, जिसमें देश की जनता उनके साथ थी। फिर भी बतौर लोकभावना उनके आने की खबर मात्र से अंग्रेजी शासन की हवा खराब हो जाती थी– *गांधी आया है मैं सुणी/छाती धड़की अंग्रेज की।*[12] वस्तुतः लोक की धारणा बनाने में लोकसाहित्य की भी बड़ी भूमिका होती है। स्वंतत्रता संघर्ष में गांधी की कामयाबी का कारण उन्हें देश की जनता से मिला अपार समर्थन और सहयोग था। उनके प्रत्येक आह्वान पर देश के हर कोने से भारी भीड़ उमड़ पड़ती थी और निडर भाव से लाठी–गोली खाने को तैयार हो जाती थी। गांधी जी को अपार जनसमर्थन प्राप्त होने का एक कारण लोकसाहित्य भी था। कितने ही लोकगीत लोकगीतकारों द्वारा रचे गए जिनमें कितनी ही प्रकार की भावनाएँ व्यक्त की गई हैं जो गांधी जी में लोगों की अगाध आस्था को व्यक्त करती हैं और उनका साथ देने को मचलती हैं। गांधी देशभक्ति की भावना का प्रतीक बन गए थे और उनका साथ देना राष्ट्र–निर्माण के काम में हाथ बँटाने जैसा हो गया था। क्या स्त्री, क्या पुरुष, सभी में त्याग की भावना भर गई थी। देखें एक लोकगीत में मात्र 12 वर्ष की बच्ची अपने दादा से क्या विनय करती है–

केस खोल्ले खड़ी लाड़डो अरज दादा से करती है

दादाजी मेरी मत करो शादी, मेरी उमर 12 बरस की है।

लिखा दियो नाम कांग्रेस में, बनूं मैं सत्यवती नारी।[13]

इस गीत में एक अबोध लड़की में, जो मात्र बारह वर्ष की है; सामाजिक चेतना और राजनीतिक

चेतना दोनों को देखा जा सकता है। अल्प–वय में विवाह करने से तो अच्छा है कि वह देश की स्वतंत्रता के लिए चल रहे संघर्ष में अपना योगदान दे। इसको वह सत्यवती नारी का लक्षण मानती है। इसी तरह से एक अन्य गीत में भी स्त्री अपने पति से कहती है–

मैं भी तेरे साथ चलूँगी गांधी जी के जलसे में।[14]

आदमी को युद्ध के लिए उत्तेजित करने में औरतों की बड़ी भूमिका होती है। संकट के समय आदमी चुपचाप बैठा रहे और उनको समाज में शर्मिंदगी झेलनी पड़े, यह उन्हें गंवारा नहीं होता। आखिर आदिकालीन कवि का वह दोहा प्रसिद्ध है ही कि *भल्ला हुआ जो मारिया बहणी म्हारा कन्त। लज्जेजं तु वयंसियहु जो घर भग्गा अंत।* इसलिए स्त्री जब पुरुष को चूड़ी पहनकर घर बैठने को कहती है और स्वयं सज्जित होकर रणभूमि में जाने की बात करती है; तो आदमी का जोश सोया हुआ नहीं रह जाता। उसके भीतर का उत्साह, वीर–भाव हिल्लोलित होने लगता है और वह संघर्ष हेतु सन्नद्ध हो जाता है।

गांधी जी को इतना बड़ा जनसमर्थन मिलने का कारण था जनता में उनके प्रति उपजी आस्था। उनकी क्षमता के प्रति विश्वास और यह आश्वस्ति कि विजय तो अंततः गांधी की ही होनी है। इसलिए लोकगीतों में उनसे अपेक्षा भी की जाती है, उनके कष्टों के प्रति सहानुभूति भी व्यक्त की जाती है, और उनका साथ देने के लिए लोगों को प्रेरित भी किया जाता है। देखें कैसी अपेक्षाएँ देशवासियों की गांधी, जवाहर जैसे नेताओं से थीं, जिनके एक आह्वान पर सारे कांग्रेसी उमड़ पड़ते थे–

रामा भारतमाता छाती धुनि–धुनि रोवसु हो रामा सुनु गांधी,

गांधी हमरा के कर तू अजदवा, हो रामा सुनु गांधी।

रामा देश लागी गांधी जवाहर भइले जोगिया, हो रामा सुनु गांधी।

रामा नेता लोग धुइयाँ रमावे, हो रामा, सुनु गांधी।[15]

(हे गांधी सुनो! भारतमाता कैसे छाती धुन–धुनकर अपने दुर्भाग्य पर रो रही है और तुमसे फरियाद कर रही है कि हमको आजाद करवा दो। देश की खातिर आज गांधी और जवाहर जोगी हो गए हैं, साथ ही अन्य नेता लोगों ने भी धूनी रमा ली है।)

विवाह के अवसर पर अनेक तरह के गीत गाने का रिवाज है। स्वतंत्रता–आंदोलन के दौरान विवाह–गीत भी राष्ट्रभक्ति की भावना से अछूते नहीं रहे। विवाह के समय एक नेग होता है, दूल्हे को ससुराल में भोजन कराने का। विवाह–कार्य संपन्न हो जाने के पश्चात् यह रस्म होती है। इस अवसर पर वर रूठता है, उसे मनाया जाता है– उसकी मनवांछित माँग पूरी कर और फिर वह कोई नेग लेकर ही भोजन करता है। यहाँ एक ऐसे अवसर पर वर नेग के रूप में स्वराज की माँग करता है और फिर बाद में गांधी के व्याख्यानों को सुनकर स्वयं उस स्वराज को लाने के लिए कांग्रेसी बन जाता है। मतलब, स्वराज्य आंदोलन से जुड़ जाता है–

सोने के थारी में जेवना परोसलो,

जेवना न जेवे, हरि माँग ले सुरजवा देइ दा गांधी ना।

हमके सुरजवा देइ दा गांधी ना।

गांधी के लेकचरवा दुनिया में पटले, उन्हें सुन के ना।

हरि मोरे भइले कंगरेसिया, कि उन्हें सुनिके ना।[16]

घर–परिवार की चिंता तो दूर, लोग आगे रखी भोजन की थाली तक छोड़कर स्वराज्य के काम से निकल पड़ते थे, ऐसा वह वातावरण था जो अब लोकगीतों की थाती बन गया है।

सोने की थारी में जेवना परोसलो, जेवना न जेवे मोरे राजा,

सुराजी झण्डा हाथ में

खद्दर के धोती पहिरे, खद्दर के कुरता पहिरे,

आ खदरवे के टोपी, सुराजी झंडा हाथ में।

एक बेरि गांधी बाबा अवरु राजेंद्र बाबू सीटिया बजवले,

उठि गइले सब कांग्रेसी, सुराजी झंडा हाथ में।[17]

विवाह के अवसर पर पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भात की भी एक रस्म होती है, जिसे लड़के या लड़की का मामा पूरी करता है। इस रस्म को भी लोकगीत में गांधी से जोड़ा गया है। मतलब गांधी राष्ट्रपिता तो हैं ही, अन्य अनेक रिश्तों और भूमिकाओं में भी लोक ने उनमें अपनत्व देखा है। तभी तो एक गीत में लड़की की माँ गांधी के जेल जाने पर इस रस्म की चिंता करती है–

अम्मा तो रोवै रे वीरा आपणी कौण भरेगा भात,

गांधी ने झंडा उठा लिया।

तू क्यों रोवे री मैना याणे से भरेंगे भात

गांधी ने झंडा उठा लिया।[18]

गांधी जी में लोक की अपार आस्था थी और यह आस्था ऐसे ही नहीं बन गयी थी। लोक का किसी में विश्वास करने का भी अपना एक अलग ही ढंग है। सामान्यतः अंधविश्वास अच्छे नहीं समझे जाते और प्रबुद्ध वर्ग की निंदा का ही विषय वे बनते हैं। पर कई बार इनका भी बड़ा सकारात्मक उपयोग चतुर लोगों द्वारा किया जाता है। लोक में किसी के प्रति आस्था उत्पन्न करने का ये एक कारगर हथियार है और बिना आस्था के लोक का किसी के साथ संपूर्ण मन से जुड़ाव नहीं होता। फलतः गांधी जी के संबंध में इस हथियार का भी सार्थक प्रयोग किया गया। इससे लोगों में एक चमत्कारी आस्था गांधी जी के प्रति पैदा हुई, जिसने उनके प्रति लोकभावना और सहयोग को अडिग बनाए रखा। इसी भावना ने यह आत्मविश्वास भारतीय सामान्य जन में भरा कि गांधी जीतेंगे। उसे पूरा विश्वास हो गया कि गांधी को हराना असंभव है। अंग्रेजों को ही अंततः हारना पड़ेगा। इस विश्वास को अनेक तरह से लोकगीतों में व्यक्त किया गया। गांधी के प्रति अंधविश्वासकारी इन चमत्कारी घटनाओं और वर्णनों के कुछ नमूने देखें। इतिहासकार साहिब अमीन के हवाले से 'भोजपुरी लोक–गीतों में स्वाधीनता आंदोलन' पुस्तक में संतोष कुमार चतुर्वेदी ने उस समय के एक महत्वपूर्ण समाचार पत्र 'पायनियर' के संपादकीय को उद्धृत किया है–

"गोरखपुर से प्रकाशित होने वाले पत्र स्वदेश में पिछले महीने ऐसे चार चमत्कारों का उल्लेख हुआ था जिनका श्रेय गांधी जी को दिया जा रहा है। कुओं से धुआं निकलता दिखाई पड़ा और उसके पानी में बसी पाई गई खुशबू केवड़े की, जो इत्र बनाने के काम आता है। इसके अलावा पवित्र कुरान की एक प्रति ऐसे एक कमरे से निकले जो साल भर से बंद था। एक अहीर जिसने महात्मा गांधी के नाम पर शिक्षा देने से इनकार किया था, उसका गुड़ और उसकी दो भैंसे आग में जलकर राख हो गईं। एक ब्राह्मण जिसने संशय के कारण गांधी जी की शक्ति को नकारा, पागल हो गया और 3 दिन पश्चात् उस पूज्य का नाम जाप करने पर ही ठीक हो गया। ...आजकल गाजीपुर में इस किस्म की अफवाहें प्रचलित हैं– एक व्यक्ति ने किसी बात पर गांधी जी को नाराज कर दिया, नतीजा यह हुआ कि उसे अपनी बीवी, बच्चों और भाइयों से हाथ धोना पड़ा। महात्मा गांधी कोलकाता और मुल्तान दोनों स्थानों पर एक ही दिन देखे गए। उन्होंने दो मुर्दा वृक्षों को फिर से हरा–भरा कर दिया।..."[19]

तत्कालीन वातावरण पर लिखे गए उपन्यासों में, विशेषकर आँचलिक उपन्यासों में ऐसे विवरण खूब मिल जाएँगे। बांग्ला साहित्यकार सतीनाथ भादुड़ी के उपन्यास 'ढोड़ाय चरितमानस' में ऐसी अनेक घटनाओं का उल्लेख हुआ है। बिहार के पूर्णिया अंचल पर आधारित इस उपन्यास में कभी कोहरे के ऊपर गांधी जी की उभरी हुई तस्वीर लोगों को चमत्कृत कर देती है तो कभी बेलपत्र पर उनका नाम लिखा हुआ दिखाई दे जाता है, तो कहीं लोटे में गांधी के चमत्कार से पानी बढ़ जाने

की चामत्कारिक घटना लोगों को विस्मित कर जाती है और वे गांधी को अवतारी पुरुष मान लेते हैं। उनके जेल से छूटने में भी वे चमत्कार ही देखते है– "सहसा खबर आती है कि गान्ही बाबा जिरानिया आ रहे हैं 'साभा' करने। उन्हें थोड़े ही कोई जेल में भर्ती कर रख सकता है! एक ही मंतर से वे ताला और दीवाल तोड़कर बाहर आते हैं।..."[20]

इसी अपार आस्था और अटूट विश्वास ने लोगों के मन में ऐसा भाव भरा कि वे निडर हो गए–

गांधी के लड़इया नाहीं जीतवे फिरंगिया,
चाहे करु कतनो उपाय।
भल–भल मजबा उड़वले एहि देसवा में
अब जइहें कोठिया बिकाय।[21]

अर्थात्, हे फिरंगी! अब तुम चाहे कितने भी उपाय कर लो, पर गांधी से लड़ाई नहीं जीत सकते। तुमने इस देश में खूब मजे उड़ाए हैं। अब तुम्हारी सब कोठियाँ बिक जाएँगी।

ऐसे ही जब उन्होंने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आह्वान किया तो यह भावना भी लोकगीतों में आए बिना नहीं रही। एक छत्तीसगढ़ी लोकगीत की पंक्तियाँ हैं–

अरे नइ पहनौंगा भैया, नइ पहनौंगा।
परदेसियन के कपड़ा नइ पहनौंगा।
नानमुन छोकरा पहिरे ला पागी।
गांधी बाबा के कहे पहिनबो खादी।[22]

इसी तरह एक गीत में स्त्रियाँ गाती हैं–

तुम बूंद विलायती छोड़ो हे सखी, गांधी बाबा आ रहे हैं।
तुम खद्दर पहना करो हे सखी, तुम नथ और बाली छोड़ो हे सखी,
तुम मिल का चून पिसाना छोड़ो हे सखी, घर का पिसा खाया करो।
तुम फिल्मी गाने छोड़ो हे सखी, गीत गांधी के गाया करो।[23]

गांधी जी का चरखा तो जैसे आजादी की लड़ाई का शस्त्र और देशभक्ति की भावना का प्रतीक बन गया था और घर–घर में आ गया था। आज भी बहुत से घरों में पुराने चरखे किसी कोने में पड़े मिल जाएँगे। इस चरखे को लेकर भी न जाने कितने गीत लोक में चले। चरखा वस्तुतः सृजन का प्रतीक है, रचनात्मकता का प्रतीक है और स्वावलंबन का भी प्रतीक है। प्रायः महापुरुषों के साथ कोई–न–कोई ऐसी चीज जुड़ी होती है जो प्रतीक–चिह्न की तरह उनकी पहचान से जुड़ जाती है। हर एक महापुरूष के साथ कोई एक वस्तु, कोई एक चीज, कोई एक ऐसा प्रतीक जुड़ा हुआ होता है, जो उसकी पहचान बन जाता है। भगवान राम की कल्पना हम धनुष–बाण के बिना कर ही नहीं पाते। भगवान कृष्ण के पास सुदर्शन–चक्र है, बाँसुरी है। तो चरखा उनके साथ जरूर होगा। सुदर्शन चक्र और धनुष–बाण, संहार और विनाश भी करते हैं, लेकिन चरखा सृजनात्मकता का प्रतीक है।

यहाँ गांधी के साथ हम कुछ चर्चा मध्यकालीन संत कवि कबीर की कर सकते हैं। कई दृष्टियों से दोनों में अद्‌भुत साम्य है। कबीर की भी पहचान के रूप में उनके चित्र के साथ करघा अक्सर रहता है। कबीर के पास चरखा नहीं था, करघा था। वे उससे वस्त्र बनाने का काम करते थे। गांधी उससे भी मूल चीज की ओर देश को लाते हैं– सूत–निर्माण की ओर। वस्त्र बुनने के लिए सूत प्राथमिक आवश्यकता है।

हम देखें कि कैसे बहुत सारी चीजें गांधी और कबीर में मिलती हैं। जैसे कबीर का करघा श्रम–साधना का प्रतीक है, स्वावलंबन का, स्वाभिमान का, सृजनात्मकता का प्रतीक है। ऐसे ही गांधी जी ने उस चरखे को हमारे स्वावलंबन के साधन के रूप में प्रस्तुत किया। सृजन–शक्ति के रूप में उसको हमारे सामने रखा और वह श्रम–साधना का प्रतीक तो है ही। राष्ट्रीय स्वत्व और स्वाभिमान का प्रतीक वह कैसे और किस हद तक बन गया था, यह भी हमें अविदित नहीं है। ऐसे ही हम देखें तो सत्यवादिता का विचार हो, चाहे अहिंसा का

विचार– दोनों में काफी साम्य नज़र आता है। यहाँ तक कि रामभक्ति– कबीर भी रामभक्त हैं, अपने तरीके से हैं और गांधी भी रामभक्त हैं, अपने तरीके से हैं। इतना ही नहीं, आप परिधान देखें– कबीर भी अर्धनग्न दिखाई देते हैं और गांधी जी ने भी वही तरीका अपनाया। उन्होंने भी पूरे वस्त्र नहीं पहने। बहुत कम वस्त्र से काम चलाया। आधी धोती को ही– उसी को ऊपर और उसी को नीचे लपेटते थे। इस तरह आधी धोती से काम चलाते थे। दोनों गृहस्थ हैं, लेकिन गृहस्थ योगी हैं और बदले में उन्होंने कहा भी बहुत कुछ। जवाब भी उन्होंने दिया है। लेकिन, कोई ऐसा उदाहरण नहीं दिखाई देता कि क्रोध में आकर वे हिंसक हो उठे हों।

गांधी जी ने जिस स्वराज के लिए प्रयत्न किया और उसकी परिकल्पना की, उसमें स्वराज और स्वावलंबन दोनों का भाव निहित है। उनके स्वराज का मॉडल स्वदेशी पर आधारित था, जिसमें खादी एक शुरुआत थी, प्रतीक थी। यहाँ भारतेंदु हरिश्चंद्र के ददरी मेले में दिए गए व्याख्यान के उस कथन को और उसके पीछे की पीड़ा को समझने की जरूरत है जिसमें उन्होंने कहा था कि कंघी से लेकर सुई तक हमारे यहाँ पर फरासीस की बनी चलती है। क्या गांधी ने इस पीड़ा का अनुभव नहीं किया होगा? चरखे के पीछे यही पीड़ा थी कि हम धीरे–धीरे आत्मनिर्भरता की ओर बढ़े। एक भोजपुरी लोकगीत की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

विदेशी करो बहिष्कार इ होरी माँ।
मलमल डारौ, मखमल डारो, लंकासायर का लट्ठा इ होरी माँ।
मेनचेस्टर की तंजेब होय धुआँदार इ होरी माँ। विदेशी करो बहिष्कार इ होरी माँ।
गांधी महात्मा चरखा चलवाइन
खद्दर से कर लो प्यार इ होरी माँ। विदेशी करो बहिष्कार इ होरी माँ।[24]

विवाह के अवसर पर वधू पक्ष की ओर से बन्नी गायी जाती है जो लड़की को संबोधित होती है। देखें इस बन्नी में कैसे लड़की को स्वदेशी और स्वराज का पाठ पढ़ाया जा रहा है–

हुकुम गांधी का निबाओ प्यारी बन्नी
मेरी बन्नी पहने सुदेशी साड़ियाँ
विदेशी को वापस करो प्यारी बन्नी
ले लो तिरंगा झंडा हाथ सुराजी बन्नी
खादी प्यारी सब जात सुदेशी बन्नी
चरखा चलाओ दिन–रात सुराजी बन्नी[25]
गांधी का चरखवा है जी प्यारा, गांधी का।[26]

इस तरह से देखा जा सकता है कि लोकगीत कैसे भारत के स्वाधीनता–संग्राम हेतु सन्नद्ध होने के लिए जनमत–निर्माण में अपनी महती भूमिका निभा रहे थे। लोकसाहित्य के रचयिता को अज्ञात कहा जाता है। वस्तुतः लोकसाहित्य के रचयिता का ज्ञात न होना भी उसकी शक्ति है। साहित्य पर प्रतिबंध लग सकता है पर लोकसाहित्य पर नहीं, क्योंकि वह किताबों में नहीं, लोककण्ठ में सुरक्षित होता है और समूह में उसका गायन–वाचन या प्रस्तुतीकरण होता है। इसलिए वह अधिक कारगर भी होता है। लोकगीतों का रचयिता भी कोई–न–कोई व्यक्ति ही होता है जो समयानुकूल भावनाएँ उभारता है। लेकिन समय के साथ लोकगीतकार पीछे छूट जाता है, उसका गीत आगे बढ़ जाता है। लोक की सृजनात्मकता का नमूना लोकगीत हैं, जो इन उदाहरणों में भी देखा जा सकता है।

वास्तव में तो गांधी जी ने देश के लिए भारी त्याग किया तो देश की जनता ने भी उन्हें सिर–आँखों पर बिठाया। उन्हें अपना माना सो तो माना ही, उनमें अवतारी पुरुष की छवि देखी। यहाँ तक कि लोकगीतों में उनकी तुलना राम–कृष्ण जैसे अवतारों तक से की गई। हम लोग बचपन में एक ऐसा ही गीत गाते थे–

मेरे हाथ में घंटी चाँदी की, जय बोल महात्मा गांधी की।
श्रीराम के कपड़े नीले थे, श्रीकृष्ण के कपड़े पीले थे,
गांधी के कपड़े खादी के जय बोल महात्मा गांधी की।

श्रीराम की पत्नी सीता थी, श्रीकृष्ण की पत्नी राधा थीं,

गांधी की पत्नी कस्तूरबा, जय बोल महात्मा गांधी की।

श्रीराम ने रावण मारा था, श्रीकृष्ण ने कंस पछाड़ा था,

गांधी ने अंग्रेज भगाया था, जय बोल महात्मा गांधी की।...

भारत के लोगों ने कभी गांधी जी के योगदान को बहुत गहराई से महसूस किया था। उसे सराहा था। उनका संग देने को तैयार हुए थे, संग दिया था। और जब उनकी हत्या हुई तो विकल आँसू भी बहाए थे। यह हमारे लोकगीत हमें बताते हैं। नाथूराम गोडसे ने गांधी जी की हत्या की तो पूरे देश में उसे कोसा गया और लोकगीतों में भी उसे खूब लताड़ा गया। यह हमारे साहित्य और लोकसाहित्य में दर्ज है जो अब हमारी स्मृतियों की अक्षय निधि के रूप में सुरक्षित है। एक हरियाणवी गीत में गांधी जी की मृत्यु के समय जनभावना की अभिव्यक्ति देखिए–

भारत के चंद्रमा छिप गए हैं बिलखते तारे,[27]

एक अन्य हरियाणवी रागिनी में जनभावना के साथ ही लोक–जागरूकता भी द्रष्टव्य है। लोकगीतकार को गांधी जी की हत्या पर देश–विदेश में हुई प्रतिक्रिया का पूरा ज्ञान है–

नत्थू नाश करणियै तूनै हिंद के सूरज छिपाए।
भारत के जितने नेता थे एकदम घबराए।।
अमरीका इंग्लैंड रूस से गम के पत्तर आए।
जर्मन और जापान, चीन सभी देश पछताए।।
यू एन ओ का झंडा झुक गया जिस दिन बापू मरग्ये।
भारत को आजाद बनाकर सुर्ग के बीच डिगरग्ये।।[28]

शुक्ल जी ने साहित्य को 'जनता की चित्तवृतियों का संचित प्रतिबिंब' और बालकृष्ण भट्ट ने "जनसमूह के ह्रदय का विकास कहा है।"

गांधी नहीं रहे, पर वे लोक की स्मृतियों में अमिट हो गए। रो–रोकर लोक ने आँसुओं से उनका तर्पण किया। उनके कारनामों को याद किया। उन्हें कभी न भुलाने का संकल्प लिया–

जिनगी भरि भजब रउरे नाम ए मोरे गांधी बाबा।

बापू जी के नाता लगाके गइलीं सुरधाम ए मोरे गांधी बाबा।

सारी दुनिया हो गइल अनाथ ए मोरे गांधी बाबा।[29]

एक अन्य गीत की पंक्तियाँ देखें,

भैया जवाहर आ राजेंद्र के संगिया,

रोइ उठल सगरो जहनवाँ, अरे भगवनवा।

बापू के रहिया चली, यादि बनवले रहबि

अँसुअन से करब तरपनवा, अरे भगवनवा।[30]

गांधी जी के प्रेम और सद्भाव के संदेश को एक हरियाणवी लोकगीत में इस तरह व्यक्त किया गया है–

हरने भारत का कलेस,/गांधी ने यो दिया उपदेस।

हिंदू मुस्लिम सिख ईसाई/ आपस में सब भाई–भाई।

सबके दिल में बात समाई/फिर कोन्या कदे करी लड़ाई।[31]

गांधी जी भारत को स्वराज से सुराज की ओर ले जाना चाहते थे। गांधी जी आजादी के बाद बहुत दिनों तक जीवित नहीं रह सके। रहते तो शायद कुछ चीजें और भी अच्छी हो सकती थीं।

लेकिन लोकगीतकार को गांधी का त्याग और बलिदान याद है तो उनका सपना, उनका लक्ष्य, देश के लिए उनकी भावना तथा कल्पना भी याद है, जिसको देशवासियों द्वारा सच किया जाना था। गांधी जी का क्या त्याग है, उन्होंने देश को क्या दिया है, यह उसे बखूबी याद है। उनका संदेश भी लोकगीतकार की दृष्टि से ओझल नहीं हैं। देखें यह हरियाणवी लोकगीत–

हाथ हथकड़ी पायां बेड़ी, यो गहणा गांधी का।

सौ–सौ बार हुआ जेलां में रहणा गांधी का।

जो मिलिर्या सै सुराज हमनै यो लहण गांधी का।

मिलकै नै सब कौम रहो यो कहणा गांधी का।

हिंदी की ऊँची कर दी सज्जनो शान गांधी नै।

चकरबर्ती राजा करे हैरान गांधी नै।

देश की खात्यर खो दी अपनी जान गांधी नै।

एक बार फिर पैदा कर भगवान गांधी नै।[32]

लोगों को यह भी अहसास है कि गांधी जी ने जो कष्ट सहे और अपनी जान गंवाई; वह देश की खातिर, हमारी खातिर गंवाई। इसलिए जो उनकी भावना है– उस भावना के अनुसार देश को बनाना है। उनके संदेश के अनुसार अपना आचरण–व्यवहार करना है। लोक इससे भी अनवगत नहीं है और सावधान–सजग है। हमको हमेशा इस बात को ध्यान में रखना है कि गांधी जी का जो बलिदान है, वह किसलिए है? वे कैसे भारत का निर्माण करना चाहते थे। लोकगीतकार को गांधी जी का बलिदान याद है तो उस बलिदान का उद्देश्य भी याद है, जिसे वह अपने गीत के माध्यम से प्रकट करता है। इसलिए जब वह लोगों का ईमान बिगड़ता हुआ और कदम बहकते हुए देखता है तो पुकार उठता है–

सम्हरि सम्हरि के पाँव उठइह, बिगरे ना इमनवा।

भैया तोहरे कारण हो बाबू दीहले अल्हर परनाव।[33]

(सँभल–सँभलकर कदम उठाना। तुम्हारे ईमान न बिगड़ने पाएँ। भाइयो! गांधी जी ने तुम्हारे ही कारण अपने प्राणों का बलिदान दिया है।)

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सुश्री ललिता चौहान एवं डॉ. एम. एस. चौहान; स्वातंत्र्य समर में लोकगीतो का योगदान; लोकसाहित्य की प्रासंगिकता; जनभागीदारी समिति, शासकीय महाविद्यालय, मुलताई, जिला बैतूल, म. प्र.; 2009; पृ. 90

2. विमलकांत; पूर्वोत्तर भारत पर गांधीवादी प्रभाव; समन्वय पूर्वोत्तर, नौवाँ अंक : अक्तूबर – दिसंबर, 2010; पृ. 119

3. टी मिबांग; इंटरप्रेटिंग हिस्ट्री थ्रू पोनुड.; पीनेहा; 11वाँ सत्र, इंफाल; 1990; पृ. 32–33।

4. संतोष कुमार चतुर्वेदी; भोजपुरी लोक–गीतों में स्वाधीनता आंदोलन; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद; प्रथम संस्करण, 2014; पृ. 110

5. डॉ. पूर्णचंद्र शर्मा; हरियाणवी साहित्य और संस्कृति, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़; प्रकाशन वर्ष 1990; पृ. 102

6. संतोष कुमार चतुर्वेदी; भोजपुरी लोक–गीतों में स्वाधीनता आंदोलन; पृ. 103

7. वही; पृ. 105

8. वही; पृ. 103

9. वही; पृ. 104

10. वही; पृ. 92

11. वही; पृ. 106

12. डॉ. पूर्णचंद्र शर्मा; हरियाणवी साहित्य और संस्कृति; पृ. 94

13. वही; पृ. 95

14. डॉ. सत्य गुप्ता; खड़ी बोली का लोकसाहित्य; हिंदुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद; प्रथम संस्करण, 1965; पृ. 147

15. श्रीधर मिश्र; भोजपुरी लोकसाहित्य : सांस्कृतिक अध्ययन; हिंदुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद; प्रथम संस्करण, 1971; पृ. 206

16. वही; पृ. 204

17. वही; पृ. 207

18. डॉ. रामनिवास शर्मा; लोकगीतों में राष्ट्रीय चेतना; लोकसाहित्य की प्रासंगिकता; जनभागीदारी समिति, शायकीय महाविद्यालय, मुलताई, जिला बैतूल, म. प्र.; 2009; पृ. 48

19. संतोष कुमार चतुर्वेदी; भोजपुरी लोक–गीतों में स्वाधीनता आंदोलन; पृ. 90

20. सतीनाथ भादुड़ी; ढोड़ाय चरितमानस; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद; संस्करण 2008; पृ. 85

21. श्रीधर मिश्र; भोजपुरी लोकसाहित्य : सांस्कृतिक अध्ययन; पृ. 210

22. सुश्री ललिता चौहान एवं डॉ. एम. एस. चौहान; स्वातंत्र्य समर में लोकगीतों का योगदान; लोकसाहित्य की प्रासंगिकता; पृ. 90

23. डॉ. पूर्णचंद्र शर्मा; हरियाणवी साहित्य और संस्कृति; पृ. 103

24. संतोष कुमार चतुर्वेदी; भोजपुरी लोकगीतों में स्वाधीनता आंदोलन; पृ. 101

25. वही, 105

26. वही; 100–101

27. डॉ. रामनिवास शर्मा; लोकगीतों में राष्ट्रीय चेतना; लोकसाहित्य की प्रासंगिकता; पृ. 48–49

28. डॉ. पूर्णचंद्र शर्मा; हरियाणवी साहित्य और संस्कृति; पृ. 105

29. श्रीधर मिश्र; भोजपुरी लोकसाहित्य : सांस्कृतिक अध्ययन; पृ. 215

30. वही

31. डॉ. पूर्णचंद्र शर्मा; हरियाणवी साहित्य और संस्कृति; पृ. 104

32. डॉ. पूर्णचंद्र शर्मा; हरियाणवी साहित्य और संस्कृति; पृ. 107

33. श्रीधर मिश्र; भोजपुरी लोकसाहित्य : सांस्कृतिक अध्ययन; पृ. 215

– 29, आशुतोष सिटी, पीलीभीत बाईपास रोड, बरेली, उत्तर प्रदेश–243006

❑❑❑

भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य में मूल्यों की अभिव्यक्ति

डॉ. अलका आनंद

आज का भारतीय साहित्य विश्व की किसी भी अधुनातन भाषा में लिखे गए साहित्य की तुलना में विशिष्ट साहित्य है। इस देश के किसी भी भाषा के साहित्य में भारतीय मूल्यों एवं भारतीयता को रेखांकित करना कठिन नहीं है। भारतीय साहित्य बहुआयामी सांस्कृतिक समन्वय का महासागर है जिसमें विविधता की नदियाँ चारों ओर से आकर समाहित होती हैं। भारतवर्ष अनेक भाषाओं का विशाल देश है। उत्तर–पश्चिम में पंजाबी, हिंदी और उर्दू है। तो पूर्व में ओड़िया, असमिया और बांग्ला, मध्य पश्चिम में मराठी और गुजराती है और दक्षिण में तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम। इनमें से प्रत्येक साहित्य का स्वतंत्र और प्रखर वैशिष्ट्य है जो भारतीय सहित्य के मूल्यों की अभिवृद्धि करता है। यही वजह है कि भारतीय साहित्य, साहित्य तथा उसमें से पल्लवित होते हुए मूल्यों की वजह से साहित्य का महासंघ माना जाता है। फॉक्स ने बहुत सही लिखा है कि "साहित्य में जीवन के बारे में लेखक की राय की दरकार नहीं है वहीं जीवन की तस्वीर चाहिए। अर्थात् किसी भी भाषा में रचित हो सकती है और उस भाषा के साहित्यिक मूल्यों को अभिव्यक्त कर सकती है।"[1]

किसी भी भाषा का साहित्य अचानक उत्पन्न नहीं हो जाता। इसकी उत्पत्ति तथा विकास में युगों की प्रवाहित विचारधाराएँ सिमटी रहती हैं। ठीक उसी प्रकार समग्र भारतीय साहित्य परंपराओं के निर्वाह और उनके विकास के लिए सचेष्ट रहा है। इस देश का लोकचित्त पुराकथाओं, नैतिकता और उदात्त जीवन के प्रति आग्रहशील रहा है। रामकथा और कृष्णकथा द्वारा यह प्रायः अनुप्राणित हुआ है। 'रामायण' और 'महाभारत' यहाँ की साहित्यिक कृतियों के मूल आधार रहे हैं। भारतीय लोकजीवन उक्त महाकाव्यों में निरूपित आदर्शों से प्रभावित है। रामायण में करुणा और भावुकता, सरलता और संयम का साम्राज्य है। महाभारत में दर्प और औद्धत्य, उग्रता और तेज का प्राधान्य है। महाभारत में स्वाभिमान का दर्प उसके–पात्रों के रग–रग में भरा है।[2] तमाम भारतीय भाषाओं में रामकथा का संचार और कृष्णकथा के संदर्भो के विनियोग को हम रेखांकित कर सकते हैं। भारत की सभी महत्वपूर्ण भाषाओं में असंख्य राम काव्यों का सृजन हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामी तुलसीदास ने वाल्मीकि के महामानव राम को असीम सौंदर्यमय बना दिया। डॉ. नगेंद्र लिखते हैं– "राम भारत के जन–जीवन में इस प्रकार घुल–मिल गए कि कोई जम्भाई भी लेगा तो राम कहेगा, शोक–सूचक ध्वनि करेगा तो राम–राम कहेगा।"

राम के इस स्वरूप का वर्णन भारत में रचित साहित्य में सर्वत्र देखने को मिलता है। भारतीय साहित्य में अनेक प्रतिनिधि रामायण भी है। इन रामायणों की आत्मा एक है, फिर भी प्रत्येक में अपना–अपना प्रादेशिक वैशिष्ट्य है। अपनी धरती की विशेष महक है। कम्ब रामायण से ज्ञात होता

है कि रामायण के अयोध्या और मिथिला नगरों के वर्णन में तमिलनाडु का पूरा परिवेश प्रतिबिंबित है। रंगनाथ तेलुगु रामायण में विवाह के समय वर–वधू के सिर पर गुड़ जीरा रखने का मंगल विधान करता है। इसी प्रकार भारत की अन्य भाषा में रचित रामायण का अपना–अपना वैशिष्ट्य है। चाहे वह बंगाली रामायण हो, ओड़िया हो अथवा पंजाबी। स्वरूप भेद की दृष्टि से अपभ्रंश में रचित 'पउम चरिउ' भिन्न है।[3]

मर्यादाओं के संरक्षण और कर्मठता के प्रतिपादन को समस्त भारतीय कृष्ण काव्य–गीता, महाभारत को समस्त साहित्य में महत्व दिया गया है। भारतीय साहित्य सामाजिक संबंधों की दृढ़ता और जीवनगत संघर्ष के प्रति संपृक्ति को उजागर करता है। यह दैन्य और पलायन को अस्वीकार करते हुए जीवन की सार्थकता को महत्व देता है। विषाद नहीं कर्मयोग के प्रति इसका झुकाव रहा है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' पूरे भारत के साहित्यकारों के लिए समादृत ग्रंथ है।

भारतीय साहित्य प्रेय से अधिक श्रेय की ओर उन्मुख है। इसमें भौतिकता के प्रति आसक्ति नहीं है। आध्यात्मिक चेतना से यह सर्वदा प्रेरित रहा है। त्याग और तप को भारत में श्रद्धास्पद माना गया है। यही कारण है कि यहाँ ययाति के भोग से अधिक दधीचि के अस्थिदान को गरिमा दी गई है। वि.सं. खांडेकर ने 'ययाति' नामक उपन्यास में भोग की निस्सारता का प्रतिपादन किया है और केदारनाथ मिश्र प्रभात ने अस्थिदान में दधीचि के लोकहितकारी चरित्र को सामने रखा है।

समग्र भारतीय साहित्य में संत वाणियाँ मिलती हैं। दक्षिण के वेमन्ना, महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर एवं नामदेव, हिंदी क्षेत्र के कबीर और पंजाब के नानक और बुल्लाशाह आदि संत जनजीवन को नैतिकता का पाठ पढ़ाते रहे हैं। वे भौतिक ऐषणाओं के स्थान पर चारित्रिक शुद्धता एवं पवित्र विचारों के प्रतिपादन में निरत रहे हैं। हिंदी, उर्दू के कवि सूफी प्रेम को सर्वोपरि मानते हैं। वे इश्क हकीकी के व्याख्याकार के रूप में न केवल आध्यात्मिक प्रेम को सामने लाने वाले रहे हैं बल्कि लोकजीवन को भी प्रेम के सूत्र में बाँधने के लिए प्रयत्नशील प्रतीत होते हैं।

आचार्य शुक्ल ने धर्म का प्रवाह कर्म, ज्ञान और भक्ति को माना है। वे लिखते हैं– "कर्म के बिना वह लूला–लंगड़ा, ज्ञान के बिना अंधा और भक्ति के बिना हृदय विहीन क्या निष्प्राण रहता है।"[4] भारतीय साहित्य की एक मुख्य प्रवृत्ति भक्ति है। यह भक्ति जाति, कुल, गोत्र, ऐश्वर्य आदि की अपेक्षा मानवीयता और उदात्त जीवन पर बल देती है। बंगाल के भक्त कवि चण्डीदास जब 'सबार ऊपर मानुष सत्य, तहार ऊपर नाई' का उद्घोष करते हैं तब भक्ति–चेतना में निहित मानवीय गरिमा व्यक्त होती है। यह तथ्य सख्य भाव की भक्ति में पगे भारतीय कृष्ण काव्य में सर्वत्र लक्षित है। अष्टछाप के कवियों की रागानुगाभक्ति ईश्वर के साथ मनुष्य के रागात्मक संबंधों का साक्षात्कार कराती है।

भारतीय भक्ति काव्य भावना के विगलन, अक्रोध और आस्था की प्रेरिका है। तमिल के 'तिरूक्कुरल' और तुलसीदास की 'विनयपत्रिका' में जो शरणागत भावना, विनम्रता और आत्म–विसर्जन के स्वर मिलते हैं, उन्हें हम 'असम के शंकरदेव' और गुजराती के 'नरसी मेहता' में भी सुन सकते हैं।

भारतीय साहित्य एक सतत विकासशील प्रवाह की तरह है इसमें परंपरा की जड़ता नहीं प्रगतिगत उन्मेष के दर्शन होते हैं। वाल्मीकि की 'रामायण' में सीता निर्वासन और शंबूक वध के जो प्रसंग मिलते हैं वे तुलसी के रामचरितमानस से हटा दिए गए हैं। इसी तरह महाभारत में कर्ण का जो दबा हुआ चरित्र है उसे दिनकर ने 'रश्मिरथी' में और मराठी के शिवाजी सावंत ने 'मृत्युंजय' में नायकोचित भव्यता प्रदान की है। 'महाभारत' के परंपरागत मिथक को धर्मवीर भारती ने 'अंधायुग' में देशकालगत नवीनता से पुष्ट किया है। इसी तरह 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' एवं 'सूरसागर' की राधा के परंपरागत चरित्र को हरिऔध ने 'प्रियप्रवास' में और धर्मवीर भारती ने 'कनुप्रिया' में और जानकी वल्लभ शास्त्री ने 'राधा' में नया आयाम प्रदान किया है। परंपरा को नवीन

मूल्यों से जोड़ने की यह प्रक्रिया समस्त भारतीय साहित्य में लक्षित होती है।

'मनुस्मुति' में धर्म के जो दस लक्षण दिए गए हैं वे सार्वभौम एवं सार्वभौमिक जीवन मूल्यों को मूर्त करते हैं। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह आदि जीवन–मूल्य सभी भारतीय लेखकों के साहित्यिक कर्तृत्व में प्रतिफलित हैं।

जिस तरह एक का व्यक्तित्व दूसरे के व्यक्तित्व से भिन्न होता है, उसी तरह प्रत्येक जाति अपने व्यक्तित्व, आदर्श और विशिष्ट विचारों के कारण पहचानी जाती है। भारतीय साहित्य इतर देशों के साहित्य से जीवन–दर्शन और वैचारिक दृष्टिकोण की भिन्नता के कारण पृथक है। उसका यह अलगाव भौगोलिक नहीं, मूल्यपरक है।

धर्म प्रधान आध्यात्मिकता भारतीय जीवन और साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है। आत्मा की संपूर्णता ही भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का उद्देश्य है। इसी आदर्श के अनुरूप हमारे देश के सामाजिक और राजनैतिक जीवन की रचना हुई है। यहाँ राजनैतिक राष्ट्रीयता से अधिक सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का विकास लक्षित होता है। निश्चय ही भारतीय जीवन में धर्म का संबंध प्रत्येक क्षेत्र से है। यह धार्मिक मूल्य भावना वैदिक–औपनिषदिक साहित्य, आर्ष महाकाव्यों, कालिदास, तुलसीदास, नानक, ज्ञानेश्वर, नरसी मेहता, कम्ब, चैतन्य, शंकरदेव आदि में समान रूप से दृष्टिगत है।

आध्यात्मिक भावनाओं के प्रति झुकाव के परिणामस्वरूप भारतीय साहित्य भौतिकता से अधिक आंतरिकता की ओर उन्मुख रहा है। भोग से अधिक त्याग में इसकी रुचि रही है। ब्राह्मण, जैन और बौद्ध, कबीर पंथी, नानक पंथी आदि की परंपराओं से संबद्ध कृतियों में यह भावात्मक विसर्जनवृत्ति परिलक्षित होती है। भौतिकता के ऊपर अंतर्जगत को प्रतिष्ठा देने वाला भारतीय साहित्य स्वभावतः व्यापकता और नैतिकता का पृष्ठपोषक है।

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता समन्वयवृति है। परस्पर विरोधी विचारधाराओं, आदर्शों, साधनाओं और संस्कृतियों के समन्वय से ही भारतीय मानस का निर्माण हुआ है। समन्वयगत जीवन मूल्य ने हमारे जीवन, धर्म, चिंतन और साहित्य को समान रूप से अनुप्राणित किया है। एकेश्वरवाद, अवतारवाद, मूर्तिपूजा, बहुदेववाद आदि परस्पर विरुद्ध, दृष्टिकोणों के बीच भारतीय लोकजीवन विकसित होता रहा है। विभेदों के मध्य ऐक्य के ज्ञान ने हमें सह अस्तित्व के प्रति उन्मुख किया है। विषमताओं के बीच समता की मूल्यभावना ने हमारे जातीय जीवन और साहित्य को सुनिश्चित दिशा दी है।

कर्म ब्रह्मोदभवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्रभवम।
तस्मात्सर्वगलं ब्रह्म यज्ञे प्रतिष्ठितम्।।

श्रीमद्भगवद्गीता 3/5

भारतीय साहित्य जीवन के प्रति मंगलमय दृष्टिकोण रखता है। लोकहित को सर्वोपरि मानने के कारण यह तत्वतः आदर्शवादी है। पाप की पराजय और पुण्य की जय की धारणा इसकी आदर्शवृत्ति की संपोषिका है। इसी मूल्यधर्मिता के कारण हमारे साहित्य की रचनाओं में दुखांत की विरलता है। सत्यं, शिवं और सुंदर की संपृक्ति के कारण हम यथार्थ की बीभत्सता और भयावहता से प्रायः अलग रहकर साहित्य सृजन के अभ्यस्त रहे हैं। आदर्श की सत्प्रेरणा हमें निराशा से उबारती रही है। भारतीय साहित्य का आस्थामूलक स्वरूप विविध भाषाओं में जिस तरह रूपायित मिलता है, उससे उसकी प्रेरिका शक्ति का परिज्ञान होता है।

ईशावास्यमिंद सर्वं चत् किचं जगत्यां जगत्।
व्येन व्यक्तेन भंजीया मा मृघः कस्यस्पिद् धनम्।।

ईशावास्योपनिषद्

भारतीय साहित्य और कलाओं में जिस तरह की सिद्धि को महत्व मिला है, उसकी सात्विकता और आनंदमयता निर्विवाद है। रस को साहित्यिक मूल्य के रूप में स्वीकार करने वाला भारतीय साहित्य स्वभावतः चिन्मय है।

भारतीय साहित्य सर्वांगीण लोकजीवन के चित्रण के लिए तत्पर रहा है। समग्रता के प्रति इसके अभिनिवेश को बाणभट्ट के शब्दों में 'त्रिलोकी सम्पुंजन' कहा जा सकता है। लोक का संपूर्ण परिचय भारतीय साहित्य का लक्ष्य है। यहाँ वेदों

का अधूरापन लोकज्ञान से दूर करने की परंपरा है। हम लोकधर्मिता को जिस तरह एक साहित्यिक मूल्य के रूप में ग्रहण करते हैं। उसकी सम्यक् अभिव्यक्ति पूरे भारत में दृष्टिगत होती है। यहाँ के श्रेण्य साहित्य में लोकतत्वों की विद्यमानता के साथ–साथ लोकगीतों, लोककथाओं एवं लोकनाट्यों की भी प्राचीन परंपराएँ मिलती हैं। लोक संस्कृति के उपादानों के विनियोगगत संदर्भ में हम समग्र भारतीय साहित्य की एकता का साक्षात्कार कर सकते हैं। विविध भाषाओं के लोकसाहित्य और शास्त्री साहित्य में भारत की लोकवार्ता की प्रतीति हमें भारतीय साहित्य के स्वतंत्र अस्तित्व और पारस्परिक अंतरावलम्बन से परिचित कराती है।

युंग ने जातीय मानस की जो अवधारणा प्रस्तुत की है, उसे हम भारतीय साहित्य के संदर्भ में सही पाते हैं। हमारे लोकचित के पाप–पुण्य, धर्म–अधर्म, शुभाशुभ आदि से संबद्ध जो विधि–निषेध बद्धमूल हैं, वे भारत की विविध भाषाओं की कृतियों में अनायास व्यक्त हुए हैं। इसी तरह लौकिक जीवन के हर्ष–विषाद, महानायकों के प्रति आदर–भाव, अंधविश्वास, रीति–रिवाज भी अखिल भारतीय साहित्य में स्थान पाते रहे हैं। निश्चय ही भारतीय साहित्य विविधता में एकता का सत्यापन करता है। समान जीवन मूल्यों के प्रति आस्था के कारण उक्त चित्तगत ऐक्य अपनी अकृत्रिमता एवं राष्ट्रीय पहचान का परिचायक बनकर उद्भासित होता है।

सारस्वत मोहन मनीषी जी के शब्दों में– "मातृभूमि पितृभूमि पुण्यभूमि पावन है, पावन अपावन न होने पाए जल सी विटल सी अटल सी सुटल सी है। चाँदी के सरोवर में सोने की कमल सी। मंत्रपूत्र घाटियाँ है चँदन सी माटियाँ है, वैदिक ऋचा सी परिपाटियाँ गजल सी ऊँचे–ऊँचे पेड़ ध्यानमग्न ऋषि–मुनियों से हरी–भरी घास बिछी हुई मखमल सी।"

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रैल्फ फॉम, उपन्यास और लोक जीवन, पू.रा., झांसी रोड, नई दिल्ली–110007
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आ. देवी शंकर मिश्र, प्रकाशन केंद्र लखनऊ, पृष्ठ 65
3. डॉ. नगेंद्र, भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय निदेशालय, नई दिल्ली, पृष्ठ 283
4. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, चौड़ाराव मलिक 2050, संस्करण–2009, पृष्ठ 333
5. सहृदय, विशेषांक, भाग–1, पृष्ठ 252

– एस.पी.एम. कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

❑❑❑

मेरी निगाह में फिरता है आज भी शमशेर

डॉ. पुरुषोत्तम कुंदे

शायरी उर्दू कविता की सबसे सशक्त विधा है। उर्दू में शायरों की लंबी फेहरिस्त हर ज़ुबां पर कायम है। आधुनिक हिंदी कविता में ऐसे अनेक कवि शायरी की ओर उन्मुख हुए और उन्होंने कविता के अलावा शायरी में भी विपुल लेखन किया है। इन शायरों में निराला, त्रिलोचन, जानकी वल्लभ शास्त्री सरीखे नाम बहुत ही शिद्दत के साथ उभरते हैं। हिंदी और उर्दू के अनेक क्लासिकल शायर परोक्ष रूप में शिरकत करते हैं। इनमें ग़ालिब, मीर, इकबाल का नाम शीर्ष पर है। चूँकि यह दोआब कवि और शायर हैं। इसलिए शमशेर का लगाव जितना उर्दू के प्रति है, उतना ही हिंदी के साथ है। यथा–

वो अपनों की बातें वो
अपनो की खू खू?
हमारी ही हिंदी, हमारी ही उर्दू
ये कोयल–ओं बुलबुल के मीठे तराने
हमारे सिवा इसका रस कौन जाने। (पृ. 75)

दरअसल शमशेर की ज्यादातर ग़ज़लें समसामयिक भावबोध से उपजी हैं। उन्होंने जितनी सशक्त कविताएँ लिखी हैं, उतनी ही बेहतरीन ग़ज़लें भी। उनकी चित्रकारिता जितनी अनूठी है, उतने ही वे संगीत मर्मज्ञ हैं। इतना ही नहीं उन्हें अनुवाद में तो महारत हासिल है। वाकई शमशेर की प्रतिभा बहुआयामी है। शमशेर की ग़ज़लियत को डॉ. रंजना अरगड़े ने 'सुकून की तलाश' शीर्षक किताब में विस्तृत कैनवास दिया है। शमशेर ने शेर, ग़ज़ल, नज़्म, कव्वाली, सॉनेट, कता आदि उर्दू के विविध रूपों में कलम चलाई है। उनकी ग़ज़लों में उर्दू शायरी संरचनागत नज़ाकत बनकर प्रस्तुत होती है। बानगी के तौर पर 'मीर' की मौजूदगी निम्नवत है–

हर जिनके ख्वाहां मिले बाजारे जहाँ में
लेकिन न मिला कोई खरीदारे मुहब्बत

मीर अपने दौर के बाजार को प्रस्तुत करते हैं। यही प्रभाव ग्रहण कर शमशेर ने लिखा है–

इल्मों–हिकमत, दीन–ई माँ,
मुल्को–दौलत?, हुस्नो इश्क।
आपको बाजार से जो कहिए ला देता हूँ मैं।
(पृ. 16)

शमशेर ने यह ग़ज़ल प्रायः सन् 1943 में लिखी है। मीर का प्रभाव यहाँ स्पष्टः लक्षित होता है। चूंकि मीर पुरानी दिल्ली के रहने वाले थे। अतः अपने समय के साथ प्रतिबद्ध यह शायर दिल्ली के तत्कालीन हालात और परिवर्तनों को गहराई से महसूस करता है। यही स्थिति शमशेर की ग़ज़ल में भी बयान होती है। अपने समय में दिल्ली के हालात उन्होंने निम्नवत बयाँ किए हैं। यथा–

होंट गोया हैं सूखे पत्तों से
खामुशी चीखती है, आँखों से। (पृ. 76)

उपर्युक्त शेर न सिर्फ अपने युग की संवेदना को प्रस्तुत करता है बल्कि एक ऐसा चित्र भी प्रस्तुत करता है, जिसमें लोगों की बेबसी है।

दरअसल शमशेर ने यह ग़ज़ल बहुत ही संकेतात्मक ढंग से लिखी है, जो धीरे से तत्कालीन राजनीति की ओर इंगित करती है। तुर्कमान गेट पर अनेक मकान मलबे का ढेर बन गए। परिणामतः पुलिस और लोगों के बीच मुठभेड़ हुई, पुलिस द्वारा गोलियों की बौछार भी हुई।

इस बर्बरता को संकेतात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। शमशेर के इस शेर में मीर की उपस्थिति गौरतलब है–

नाज़ुकी उसके लब की क्या कहिए
पंखुड़ी इक गुलाब की सी है।

अतः पहले जिस संरचनागत प्रभाव को मैंने रेखांकित किया है, वास्तव में वह यही है। शमशेर की ग़ज़ल के बारे में मान्यता है कि "किसी विषय की व्याख्या करने का इसमें अवकाश नहीं। एक मार्मिक संकेत और बस, दूसरा मार्मिक संकेत बस।" शमशेर की शायरी में यही विचार मौजूद है। उनकी शायरी का मूलाधार प्रेम की पीर है। शमशेर की शायरी में प्रेम की विभिन्न छटाएँ हैं। बानगी के तौर पर देखिए–

इश्क की शायरी है खाक,
हुस्न का जिक्र है मज़ाक,
दर्द में गर चमक नहीं,
रूह में गर जिला नहीं। (पृ. 20)

शमशेर की शायरी की यह खासियत है कि उनका हर एक शेर अपने आप में पूरी नज़्म है। उन्हें अल्फाज़ों की कमी नहीं है, उन्हें कम शब्दों में बड़ी बात करने में हमेशा ही सुकून मिलता रहा है। उनकी कोशिश रही है कि हकीकत को ग़ज़ल में अधिक सक्षमता के साथ अभिव्यक्ति मिले। कहीं–कहीं रूमानियत से युक्त अंदाज में भी शमशेर की ग़ज़लियल मुखर हुई है। प्रेम में आहत होने के पश्चात् उसे बहुत प्रामाणिकता के साथ शमशेर जैसा शायर ही अभिव्यक्त कर सकता है– यथा

दर्द को पूछते थे वो
मेरी हँसी थमी नहीं,
दिल को टटोलते थे वो,
मेरा जिगर हिला नहीं।

इश्क और दर्द का गहरा रिश्ता है। शमशेर की शायरी दर्द का वह कोना है, जिसमें हर प्रेमी सुकून की तलाश करता है। वस्तुतः प्रेम मनुष्य को इंसान बनाता है। इसीलिए शमशेर इस उजास में बैठे हैं कि प्रेम असफल भी हो जाए तो इनसानियत का वहन करता है।

किसी संवेदनशील शायर और एकनिष्ठ प्रेमी को ताज्जुब इसलिए भी है कि उसके दर्द को कभी सहानुभूति का मरहम नहीं मिला। बावजूद इसके, एहसान तो खूब जताया गया, यथा–

एक फाहा भी मेरे जख्म पे रक्खा न गया,
और सर पे मेरे एहसान दवा का बाँधा
(पृ. 21)

शमशेर की शायरी की कसावट उर्दू तर्ज पर हुई है। यही कारण है कि उनका इश्क संबंधी स्वतंत्र फलसफा है। शायरी और उनकी वैयक्तिक जिंदगी का अनन्य संबंध है। यद्यपि हर एक उर्दू शायर ग़ज़ल के मक्ते में स्वयं को समेटता है। अर्थात् स्वयं के नाम का उल्लेख करता है। तथापि शमशेर भी इसके लिए अपवाद नहीं हैं, यथा–

बहुत नाम है एक शमशेर भी है,
किसे पूछते हो किसे हम बताए।

शमशेर की यह खूबी है कि उन्होंने ग़ज़ल के मानदंडों को क्षति न पहुँचाते हुए सृजन किया है। वस्तुतः शमशेर सौंदर्य के चितेरे शायर हैं। उनकी पैनी सौंदर्य दृष्टि के कारण ही प्रेमिका की अदाओं को उन्होंने शायरी में आबद्ध किया है, यथा–

वो जुल्फों में सब कुछ छुपाए हुए हैं,
अंधेरा लपेटे उजाला पड़ा है,
× × × × × × ×
बहुत गम सहे हमने 'शमशेर' उस पर
अभी तक गमों का कसाला पड़ा है। (पृ.25)

इतने सारे गम सहने के बावजूद भी शमशेर के मन में अपने इश्क के प्रति गहरी आस्था शेष है। अपने दुश्मनों की फेहरिस्त में वह शख्स भी शामिल है जिसने शायर शमशेर को बहुत सताया है। बानगी के तौर पर कुछ शेर गौरतलब हैं यथा–

वो दुश्मन मेरा इतना अच्छा है क्यों
जो अपना ही नहीं है वो अपना है क्यों
मुझे बादशाहत नहीं चाहिए
मगर तू ही कुल मेरी दुनिया है क्यों

तुम्हें याद करता हूँ एकांत में
जुनूँ मेरा पहले से अच्छा है क्यों
तुम्हें मुझसे मिलना गवारा नहीं
मुझे और जीना गवारा है क्यों

शमशेर का इश्क के बारे में जो अनुभव है, उन्होंने उसी आधार पर शायरीनुमा बयान दिया है। उन्हें उस शख्स की तलाश है जो हमेशा साथ निभा सके। अपनी गहरी संवेदना को वे शायरी में अभिव्यक्त करते हैं। साथ ही ग़ज़ल के तमाम संरचनागत अंगों का भी ध्यान रखते हैं। इसलिए उनके ग़ज़लों की कसावट और अधिक सशक्त बनी है। उन्होंने रदीफ, काफिए का पूरा ध्यान रखा है, जैसे–

शमशेर कुछ नहीं जहान में
इक दिल ढूँढ़ता हूँ, उसी बेखबर को मैं।
(पृ 37)

यहाँ शायर बेखबर को ढूँढ़ना चाहता है। इसी से उनकी शायरी में रहस्य भावना मुखर होती है। उनकी कविता में पनपी 'बेठोस चाँदनी' हो या वह सलोना ज़िस्म'। ग़ज़ल में बेखबर को ही तो ढूँढ़ रहे हैं। शमशेर महज इश्क के शायर नहीं हैं। अपने युगीन संदर्भों को भी ग़ज़लों में वाणी दी है। चूँकि यह स्वाभाविक भी है क्योंकि कोई भी कलाकार अपने युगबोध को दरकिनार कर सृजन नहीं कर सकता है। अगर कोई ऐसा करने का प्रयास भी करता है, तो वह कभी कालजयी रचनाकार नहीं हो सकता है। मतलब एक अच्छे रचनाकार के लिए यह जरूरी है कि वह अपने समय या युग से भी प्रतिबद्ध रहे। आज़ादी के बाद जो मोहभंग की स्थितियाँ पैदा हुईं शमशेर उसे भी अपनी फनकारी में ढालते हैं–

राह तो एक थी हम दोनों की,
आप किधर से आए–गए!
हम जो लुट गए पिट गए,
आप जो राजभवन में पाए गए। (पृ.33)

शमशेर की शायरी की यह विशेषता है कि इसमें न सिर्फ इश्क की बंदगी का आलाप है अपितु समसामयिक विसंगतियों का भी यथार्थ चित्रण है। भारत में धार्मिक एवं सांप्रदायिक दंगों की राजनीति अनेक वर्षों से हो रही है। एक ओर भारत की ताकत सांस्कृतिक विविधता एवं बहुभाषिकता में है, दूसरी ओर जातिगत भेद, विद्वेष से पनपते दंगे बहुत बड़ी कमजोरी हैं। शमशेर एक नज़्म में बहुत सार्थक टिप्पणी करते हैं, यथा–

जो धर्मों के अखाड़े हैं,
उन्हें लड़वा दिया जाए!
जरूरत क्या कि हिंदुस्तान पर
हमला किया जाए। (पृ. 71)

असल में, हिंदू–मुस्लिम संघर्ष आज़ादी के पूर्व था और आज़ादी के बाद भी यह कायम है। शमशेर की शायरी से यह बातें ओझल नहीं हुई हैं। इसी कारण उनकी कलम ने व्यंग्यात्मक प्रतिरोध भी जताया है। इससे उनकी अदाकारी और अधिक माकूल हुई है। शमशेर ने अपने समकालीन कलाकारों पर भी शायरी की है। अब सवाल उठ सकता है कि वे अपने समकालीन कलाकारों पर लिखकर क्या जताना चाहते हैं? दरअसल यह प्रतिबद्धता करुणा से उपजी है। इसी कारण शमशेर अत्यंत भावुक अभिव्यक्ति को अंजाम दे सके हैं। एक ग़ज़ल के कुछ शेर देखिए–

सुने हैं दर्द भरे गीत मैंने बच्चन के
सुना है मैंने सुमन का तराना मस्ताना!
सुनी है मैंने तड़पती हुई नरेंद्र की नज़्म
विसालों हिज्र रंगी फसाना मस्ताना!
मेरी निगाह में फिरता है आज भी शमशेर
शबाब का वही काफिर जमाना–मस्ताना।
(पृ.44)

स्पष्ट है कि प्रत्येक शेर में अलग–अलग रचनाकारों की विशेषताओं को उद्घाटित किया है। दरअसल उन्होंने उल्लेख्य रचनाकारों की रचनाधर्मिता को उजागर किया है। इसी तरह जब मूर्धन्य कवि मुक्तिबोध की मृत्यु हुई तब उन्होंने अत्यंत संवेदनशील नज़्म लिखी है। एक शेर गौरतलब है–

जमाने भर का कोई इस कदर अपना न हो जाए
कि अपनी जिंदगी खुद आपको बेगाना हो जाए। (पृ.63)

जाहिर है कि शमशेर की शायरी महज प्रेमी–प्रेमिका की गुफ़्तगू तक सीमित नहीं है बल्कि इसमें करुणा से उपजी आर्त पुकार है।

अंततः कह सकते हैं कि शमशेर हिंदी और उर्दू के दोआब शायर हैं। उनकी ग़ज़लों की विषयवस्तु बहुआयामी है। निःसंदेह कहा जा सकता है कि एक ओर उनकी काव्यगत अभिव्यक्ति नए–नए रूप लेकर प्रस्तुत होती है, तो दूसरी ओर उनकी ग़ज़ल परंपरागत परिपाटी का दामन थामकर विकसित हुई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

सुकून की तलाश : डॉ. रंजना अरगड़े, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

– प्रभारी प्राचार्य, न्यू आर्ट्स, कॉमर्स एंड साइंस कॉलेज, शेवगाँव, जिला–अहमदनगर, महाराष्ट्र–414502

❑❑❑

रामदरश मिश्र की कविता : अनुभव की बहुरंगी और आत्मीय दुनिया

डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी

छायावादोत्तर विभिन्न काव्यांदोलनों के तीव्र प्रवाह में बहे बगैर अपनी जमीन से जुड़े रहकर नित नवीन पथ का संधान रामदरश मिश्र की कविता के परिसर को व्यापक और बहुआयामी बनाता है। छायावादी संस्कार वाला मिश्र जी का आरंभिक भावुक मन प्रकृति की छवि से लेकर मानवीय सुषमा तक उड़ान भरता हुआ जब मार्क्सवादी दृष्टि से संवलित होता है तब वह प्रयोगवादी काल–खंड में भी जीवन–बोध की रचनाएँ करता है। व्यष्टि से लेकर समष्टि के सुख–दुख और अभाव की पीड़ा से लेकर संघर्ष के उल्लास तक को अपनी कविता का विषय बनाता है। नई कविता को परिवेश के अनुभव का सेतु मानते हुए गाँव, कस्बा अथवा शहर में जिए हर क्षण पर अपनी संवेदनात्मक दृष्टि टिकाता है। विचारों के विदेशी चिथड़ों से बना आधुनिकता का कोट पहनने की अपेक्षा अपनी ठाठ फकीरी को सर्वोत्तम मानता है। अंतरराष्ट्रीय चेतना का साहित्यकार कहलाने की दौड़ में गमले का फूल बन जाने के खतरे से परिचित वह अपने को खास जमीन में उगा हुआ पेड़ कहता है– *मैं गमले का फूल तो नहीं/कि एक सुरक्षित कमरे से/दूसरे कमरे में रख दिया जाऊँ/मैं तो पेड़ हूँ एक खास जमीन से उगा हुआ।* (रामदरश मिश्र रचनावली, पृष्ठ V)। मिश्र जी पर क्षेत्रीयता, देशीयता अथवा सतही होने का आरोप लगे तो लगे लेकिन उन्हें अपनी इस जमीन को छोड़कर पराए आकाश में टंगना स्वीकार्य नहीं है। दूर सागर पर भटकना अथवा चिकने पत्थरों के बीच जी सकना उनके लिए कठिन है और इसीलिए वे अपनी खास जमीन पर अक्सर लौट आते हैं– *यह धूल/ यह रेत/ ये खेत/ ये कच्चे रास्ते/ ये मिट्टी के मकान/ मुझसे लिपटकर मुझे गंदा कर देते हैं/ तुम्हारी मैली पगडंडियों से तुम्हारे पास।* (वही, पृष्ठ X)। कहना न होगा कि इसी जमीन ने मिश्र जी को अनुभव की बहुरंगी और आत्मीय दुनिया प्रदान की है जिससे संश्लिष्ट सामाजिक जीवन की सर्वाधिक सक्षम कलात्मक अभिव्यक्ति संभव हुई है।

रामदरश मिश्र की कविता समय–साहचर्य की उपज है। वह विभिन्न आंदोलनों के झंडे के नीचे नहीं आई लेकिन समय के साथ गतिमान होती हुई नए–नए अनुभवों, मूल्यों, प्रश्नों और शिल्पगत मुहावरों से सहज जुड़ती हुई अपनी जमीन और मानवतावादी दृष्टि से खिसके बिना परिवर्तन की नवता को अपने में आत्मसात् करती रही। यही कारण है कि 'पथ के गीत' से लेकर 'दिन एक नदी बन गया' तक की यात्रा में उनकी कविता नए–नए रंग धारण करती गई है। उनका हर काव्य संग्रह दूसरे से कहीं न कहीं भिन्न है तो इसका कारण बदलता हुआ समय, बदलता हुआ अनुभव और बदलती हुई समझ है। इसीलिए उनके पास जीवन के ठोस और वैविध्यपूर्ण अनुभवों का एक भरा–पूरा संसार है। जिसमें एक ओर भाव–संवेदनाओं के शीतल और पारदर्शी निर्झर हैं

तो दूसरी ओर विचार और विवेक के उन्नत शिखर। एक ओर कल्पना की उड़ान के लिए उन्मुक्त आकाश है तो दूसरी और यथार्थ के मरूस्थल का दुर्गम विस्तार। एक ओर प्रकृति का मनोहर संसार है तो दूसरी ओर मानव–मन की जटिलता का पारावार। मिश्र जी की काव्य–चेतना का वस्तु–जगत धीरे–धीरे मनस्तत्व की ओर गतिमान हुआ है तो इसमें भी समय की बदलती धारा की ही भूमिका है।

मिश्र जी की कविता का आरंभिक चरण भावावेग की कविताओं का है। जिसमें सौंदर्य के प्रति आकर्षण, रोमांस, कौतूहल, जिज्ञासा और प्रश्नाकुलता की भरमार है। छायावादी कवियों की भाँति अतिशय कल्पनाशीलता और वायवीयता भी है। वैसे तो 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ', 'पक गई है धूप', 'कंधे पर सूरज' तथा 'दिन एक नदी बन गया' जैसे काव्य संग्रहों में भी प्रकृति विविध रूपों में उपस्थित है लेकिन उसके प्रति कौतूहल और जिज्ञासा का जो भाव उनके प्रथम काव्य संग्रह 'पथ के गीत' में है वैसा उनमें नहीं है। मिश्र जी की कविता की यही विशेषता उन्हें छायावादी कवियों के सन्निकट लाती है। प्रसाद, पंत निराला और महादेवी की भाँति उस पार के संसार के बारे में जानने की अभिलाषा उनमें भी जगाती है–

दूर पर्वत–पंथ पर जब साँझ घिरती धूल से भर
दिवस ढल जाता वनों में चीड़ के तरू पात मरमर
पूछता तब मैं स्वयं से पंथ के उस पार क्या है?
मूक चोटी से निरंतर झर रहा है एक निर्झर
इन निराशा के क्षणों में पंथ मिल जाता न वन में
नव किरण की राह सी तब कौन छा जाती नयन में।। (वही, पृष्ठ 9)

'पथ के गीत' का आरंभ 'चल रहा हूँ' शीर्षक गीत से हुआ है जिससे यह ध्वनित है कि चलना ही जिंदगी है। मिश्र जी को विश्वास है कि उर्मियों के बंधनों में भी निरंतर बढ़ने से ही युग का जागरण गतिमान होगा। कहना न होगा कि उनकी काव्य–चेतना का यह एक महत्वपूर्ण प्रस्थानक है जिसे लेकर वे अपनी काव्य–यात्रा के हर मोड़ पर विद्यमान रहते हैं। इससे ही निराशा में आशा और अनास्था में आस्था की किरण जगमगाती दिखाई देती है। जीवन को एक पहेली मानते हुए भी मिश्र जी अन्य चिंतकों, दार्शनिकों, तत्वज्ञानियों की भाँति उसका रहस्यावरण भेदने की अपेक्षा जीवन–संघर्ष तथा अविराम कर्म–साधना पथ पर बढ़ते रहने को ही महत्व देते हैं। इसे ही वे 'जिंदगी' के रूप में परिभाषित भी करते हैं। उनका मानना है कि तूफानों से लड़ने वाला जीवन कभी हारता नहीं है। इसी विश्वास से वे फूल अथवा शूल की परवाह किए बगैर अपने पाँव आगे बढ़ाते रहे हैं–

रेत पर लिखता गया हूँ मौन अंतर की कहानी
घाटियों में सो रहा रव बाँध झंझा की जवानी
राह पर चलना अगर तो प्रीति क्या है भीति क्या है?
फूल हो या शूल हो मैं पाँव धरता जा रहा हूँ"
(वहीं पृष्ठ 5)

'जिंदगी की राह पर,' 'अभय जीवन', 'जीवन कभी न हारा', 'सबने जीवन को दान दिया' आदि कविताओं में जीवन के बारे में सोचने की दृष्टि मिश्र जी को उनके परिवेश के जीवन से ही प्राप्त हुई है। जाहिर है उनका आरंभिक जीवन, दुःख अवसाद, अभाव और गरीबी का रहा है। पग–पग पर उन्हें विघ्न–बाधाओं तथा समस्याओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है लेकिन उनका जुझारू मन संघर्ष–पथ पर आगे बढ़ते हुए उन सबको अपने अनुकूल बनाने में सफल हुआ है–

संघर्षों का जीवन मेरा, पुण्य न जाना पाप न जाना
पथ पर शूल मिले अनजाने, मैंने छूकर फूल बनाया
जिसको तुम सागर कहते हो, मैंने हँसकर कूल बनाया
तट पर मौन खड़े रहने वालों क्या जानो जीवन क्या है?
जिस पग को तुम समझ न पाए उसको मेरी भूल बनाया

मैंने तो चलने के पथ पर प्रतिक्षण प्रति स्वर को अपनाया
किरणों में वरदान, तिमिर के चरणों में अभिशाप न जाना। (वही, पृष्ठ 77)

रामदरश मिश्र की कविता का सीधा संबंध जीवन से है– खासकर सामाजिक जीवन से। सामाजिक जीवन–यथार्थ और उसके मूल्यों में उनकी गहरी आस्था रही है। समतामूलक समाज की स्थापना और वर्ग–भेद मिटाने की आकांक्षा से प्रेरित होकर ही उन्होंने मार्क्सवाद की ओर अपना झुकाव किया। वहाँ से ऊर्जा ग्रहण की लेकिन उसे उपजीव्य नहीं बनाया बल्कि जीवन को समझने की एक दृष्टि के रूप में अपने चिंतन में शामिल किया। चूँकि उन्होंने मार्क्सवादी दर्शन को वस्तु के रूप में नहीं बल्कि अंतर्दृष्टि के रूप में अपनाया इसीलिए उनकी कविता पर मार्क्सवाद कभी हावी नहीं हुआ– "मैं मार्क्सवादी हूँ किंतु मार्क्सवाद दृष्टि बनकर जीवन को देखने–समझने में मेरी मदद करता है, वह विचारधारा के रूप में मेरी कविता पर लदता नहीं है। इसलिए मैं उससे आतंकित भी नहीं हूँ, उसमें कैद भी नहीं हूँ।" (रामदरश मिश्र रचनावली, खंड–ग्यारह, पृष्ठ 231)। उनका यह भी मानना है कि कविता विचारों से नहीं अनुभवों से बनती है। अनुभवों के लिए मिश्र जी के पास गाँव से लेकर महानगर तक का परिवेश है। खेत–खलिहान, नदी–झरने से लेकर जिंदगी की भागमभाग और आपाधापी का रेगिस्तान है। स्वाधीनता–प्राप्ति के लिए संघर्ष करते हुए मूल्यधर्मी समय से लेकर राजनीति से दूषित और जटिल होते गए समय तक फैला हुआ एक सुदीर्घ काल–बोध है। लोक–संपृक्ति के स्वरों में समाहित लोक–जीवन की विभिन्न छवियाँ हैं–

पिछले पहरों में गूँज उठे खेतों में हलवाहों के स्वर
नीहार–जाल सा गया हमारा भिनसारे का स्वप्न बिखर
बज उठी घंटियाँ बैलों की, भीगीं निशि में भैरवी जगी
मेरे तंद्रिल सपनों में भी वे ही स्वर काँप रहे थर–थर
ढल रहा याद ज्यों अलस चाँद, बीते वियोग की व्यथा लिए
चक्की के स्वर पर काँप रहा यह ग्राम–वधू का करूण गीत
खुल पड़ा चाँदनी का शतदल झर पड़ा सुरभि सा स्वर्ण शीत।"
(रचनावली, खंड–1, पृष्ठ 70)

रामदरश मिश्र की कविता लोक धर्मी है। लोक के विभिन्न तत्वों से उनकी कविता का संसार निर्मित हुआ है। यह बात अलग है कि नागार्जुन आदि प्रगतिशील कवियों की भाँति उसका रंग प्रगाढ़ नहीं है। विस्तृति और अभिव्यक्ति की सपाटता भी नहीं है। मिश्र जी की कविता में लोक–जीवन और उसका संघर्ष अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता लेकर आया है लेकिन उनकी कविता के भीतर प्रवेश करते ही पाठक उस जमीन को पा लेता है जिस पर कविता का भवन निर्मित हुआ है। जाहिर है मिश्र जी किसी आंदोलन से न तो जुड़े और न ही उसके प्रवर्तक बने। प्रवक्ता बनना भी उन्हें स्वीकार्य नहीं था। इसलिए उनकी कविता में वह मुखरता नहीं है जो किसी आंदोलन के झंडाबरदारों में रही है। किंतु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि वे अपनी युगधारा से अप्रभावित रहे हैं। लोक उनकी काव्य–यात्रा में सहयात्री है। वह उनकी काव्य–चेतना को खाद–पानी देता है। विचारों को संवेदनाओं से जोड़ने में मददगार बनता है। वह उनके लिए मुहावरों का खजाना जुटाता है। ऐसा इसलिए संभव हुआ है कि उनके जीवन का एक बड़ा लंबा समय लोक–दिवाली की उत्सवता से सराबोर हुआ है। यही कारण है कि महानगर के बदलते परिवेश, बदलते प्रश्नों और मूल्यों तथा आपाधापी और भागमभाग के बीच उनका रचनाकार लोक जीवन से ऊर्जा और रस ग्रहण करता रहा है। लोक का आँचल ही छाया और विश्राम देता रहा है। उसकी स्मृति उन्हें उनके बचपन में पहुँचाती रही है–

लगता है
अब भी मैं बच्चा हूँ
अपने गँवई गरीब मित्रों से खेल रहा
डूब रहा तीसी–सरसों के फूले वन में

धूसर सड़कों पर कुत्तों के संग लोट रहा
भागता मदरसे से छिप–छिपकर
भूख से तड़पते चेहरे अब भी ताजा हैं
सपनों में आते हैं मरे हुए मित्र अभी
लगता है अब भी मैं क्वाँरा हूँ
कस्तूरी मृग सा आकुल सौरभ के पीछे
हरसिंगार झरता है
हरकली महकती है
चाँदनी बरसती है
अब भी मन के भीतर। (वही, पृष्ठ 131)

वातानुकूलित कमरों से झाँककर 'लोक' को अपनी कविता का विषय बनाने का जो फैशन चला है उसमें स्वाभाविकता, सहजता और विश्वसनीयता के लिए क्या उतनी ही संभावना होगी जितनी लोक को अपने में जीने से संभव है? जिसने भूसे की बछिया से गाय का पेन्हाना नहीं देखा होगा। उसकी कल्पना में वह दृश्य उपस्थित कैसे होगा? और अगर अंतःचक्षु से हो भी जाए तो क्या उसकी अभिव्यक्ति सक्षमता वैसी ही होगी जैसी मिश्र जी की कविता 'उपलब्धि' से संभव हुई है। 'पेन्हाने' और 'बिसुकने' शब्दों के माध्यम से उन्होंने जीवन की व्यर्थता की सटीक अभिव्यक्ति की है। यहाँ भूसे की बछिया का प्रयोग अद्‌भुत है–

भूसे की बछिया से
पेन्हाती हुई गाय सी मेरी रातें
अपने को निचोड़–निचोड़कर
कुछ और बिसुंक गई। (वही, पृष्ठ 122)

सर, सरिता, सिंधु, बादल की जितनी और जिस रूप में आवृत्ति रामदरश मिश्र के यहाँ है उतनी और उस रूप में आवृत्ति उनके किसी अन्य समकालीन के यहाँ नहीं है। इसका कारण भी उनका 'लोक' से जुड़ाव ही है। 'लोक' के बिना रचना को सार्थक नहीं मानने वाले मिश्र जी के जीवन में नदी, नालों, ताल–तलैयों के लिए जो जगह है उसे उनकी रचनाओं में देखा जा सकता है। खेती–किसानी में जल की जो भूमिका है, जल से उत्पन्न जो समस्याएँ हैं, अतिवृष्टि और अनावृष्टि की जो मार है उसे मिश्र जी ने आम आदमी की संवेदना से जोड़कर सामान्यीकृत कर दिया है। 'पानी के प्राचीर' और 'जल टूटता हुआ' उपन्यासों में भी उन्होंने जल और उससे संबंधित विभिन्न समस्याओं को ही केंद्र में रखा है। कछार–जीवन से जुड़े हुए उनके सुख–दुख के अनंत अनुभवों के केंद्र में जल भी है जिसके बारे में उनका स्वयं का कहना है– "पानी का भी मेरे लेखन में केंद्रीय बिंब बन जाना अत्यंत स्वाभाविक था। मेरा गाँव कछार में बसा है। जो दो–दो नदियों से घिरा है और जहाँ हर साल बाढ़ आती थी। नदियों के अतिरिक्त अनेक छोटे–बड़े नाले बहते रहे हैं। तमाम ताल–तलैया, गड्ढ़े, पोखर पानीमय होकर हमारे जीवन से जुड़े रहे हैं। बरसात में यह कछार आकाश से लेकर धरती तक पानीमय हो उठता था। पानी के अनेक रंग–रूप थे– मूसलाधार पानी, रिमझिम पानी, पखवारे तक लगातार बरसता पानी, उमस को चीरकर ठंडक की फुहार बन झरता पानी, लगातार बरसता हुआ नंगी देह में कंपन भरता पानी, खपरैलों से चूता पानी, फिर नदी में उफनता पानी, बाँध तोड़कर नदी नालों में फैलता पानी, फिर बाढ़ बनकर फसलों को निगलता पानी। पानी पानी....। यही पानी आँखों में पानी बन जाता था जिसमें प्रतिबिंबित होने लगते थे कछार की भूख, अभाव, दरिद्रता, पीड़ा के कितने ही छिन्न–भिन्न चित्र।" (वही, पृष्ठ XII)। यही कारण है कि उनकी रचना में पानी विभिन्न भूमिकाओं में दृश्यमान है।

'पावसगीत', 'सावन की साँझ, 'शरद के बादल', 'बादल चले जा रहे', 'बदरवा रे', 'बादल घेर घेर मत बरस' 'बादरवा बरसे', 'यायावर बादल', 'रात भर बारिश' आदि गीतों/कविताओं में रामदरश मिश्र ने वर्षा की विभिन्न छवियाँ तथ मुद्राएँ अंकित की हैं। कहीं बादलों की कालिमा और भयंकरता डराने की भूमिका में है तो कहीं जेठ की तपती धरती को आशा बँधाने की भूमिका में। कहीं विरह की टीस बढ़ाने के लिए उनका उद्‌दीपन के रूप में चित्रण है तो कहीं तरु, तृण, लता, गुल्म को नवजीवन देने के संदर्भ में उनका वर्णन हुआ है। 'बादल और सागर' शीर्षक गीत में आषाढ़ का पहला बादल समुद्र से तिरता हुआ भूभाग की ओर

आते हुए सागर से पानी भर लेने का आग्रह करता है। इसके लिए वह जो कारण गिनाता है उससे धरती से अंबर तक भीषण गर्मी की दारूण व्यथा–कथा तो व्यंजित होती ही है मानसून के पहले बादल से चराचर की अपेक्षा और आशा की पूर्णता का विधान भी रचता हुआ दृष्टिगत होता है–

भरने दो पानी, भरने दो पानी
देख क्षितिज की ओर चिता सी जलती है
प्यासी चिनगारी
जलते जीवित प्राण, मचलते धुएँ उठ रहे
बारी–बारी
पश्चिम् से पूरब तक झक–झक छींट रहा
आग समीरण
उन्मुख लोचन कहती 'आ घन' देख रही नभ
धरती रानी
भरने दो पानी। (वही, पृष्ठ 61)

तपती धरती और प्यासे आसमान के बीच उठते आषाढ़ के पहले बादलों की ओर आशा भरी निगाहों से देखती और हाथ उठाकर बुलाती कृषक–बालिकाओं का सहज–स्वाभाविक चित्र खींचने में– *कृषक बालिकाएँ खेतों में आज न हँस–मुख रहती होंगी/ 'आओ जलधर आओ जलधर' हाथ उठाकर कहती होंगी* (पृष्ठ 61) मिश्र जी की सफलता का कारण उनका लोक का अविभाज्य अंग होना रहा है। उन्होंने अनावृष्टि और अतिवृष्टि की भीषण त्रासदी देखी है। बादलों का अत्यधिक कृपालु होना भी संकटदायी है। पानी अत्यधिक बरसने की स्थिति में एक ओर कवि का हृदय काँपता है तो दूसरी ओर खेत में धान काँपते हैं। पेड़–पौधे, पंछी सब काँपते हुए से प्रतीत होते हैं इसीलिए मिश्र जी का बादलों से आग्रह है–

बादल घेर घेर मत बरस कि मेरे लाज–बसन
डूबे
रह–रह काँपे हिया हवा में, खुले खेत में धान
आँखों में परदेशी काँपे, रोम–रोम में बान
याद का बाँध उठा है टूट कि बिरहा के ये
छन डूबे
काँप रहे हैं फूल कदम के, काँपे पियर कनेर
नीब–शिखा पर पंछी काँपे, मेड़ पर झरबेर
लोटती काली छाहों बीच कि मेरे गोर सपन
डूबे। (वही, पृष्ठ 240)

सूरज और धूप भी रामदरश मिश्र की काव्य–संवेदना के केंद्रीय बिंब है। 'कंधे पर सूरज' उनका काव्य संग्रह है। सूरज के प्रति उनकी रागात्मकता का कारण भी उनका लोक–जीवन से जुड़ाव ही है। उन्होंने यह स्वीकार किया है – "सूर्य कहीं बचपन से ही मेरे भीतर धँस चुका था। किसान का पुत्र होने के कारण मैं सूरज का साथी बन गया था। खेतों, खलिहानों की दुनिया में सूरज मेरे साथ–साथ चलता था। रोशनी देकर फसलों को पकाता हुआ भी और खेत खलिहान में काम करते समय मेरे सिर पर चढ़कर जलाता हुआ भी। जो रोशनी देगा वह जाएगा भी। यह जलाता हुआ सूरज किसानी जिंदगी के लिए अपरिहार्य सत्य और सौंदर्य बन गया था।" (वही, पृष्ठ 11) इसीलिए कंधे पर उगा हुआ सूरज उनके लिए जीवन–मूल्यों का विधायक भी है। चूँकि वह उनके भीतर से उगा है इसीलिए वे उसे फेंक नहीं सकते – *कितनी बार चाहा कि/कंधे पर से पटक दूँ इस सूरज को/लेकिन हर बार लगा/ कि यह सूरज ऊपर से बैठा नहीं है/ कंधे पर लगा है मेरे ही भीतर से/ और मैं इसे नहीं/ कहीं अपने को ही लगातार ढो रहा हूँ।* (वही, पृष्ठ 376)। कहना न होगा कि रामदरश मिश्र इस सत्य के सूरज को अपनी सर्जना में लगातार ढोते रहे हैं।

'पक गई है धूप' में अनुभूति की अखंडता भिन्न–भिन्न रूप धारण कर उभरी है। इस काव्य संग्रह के तीन खंड हैं– 'होने न होने', 'समय जल सा', और 'मेरा आकाश'। पहले खंड में संक्रांत अनुभव की कविताएँ हैं, जिसमें पारस्परिक सहयोग, कटाव और टकराहट सभी कुछ है जिसे आज का हर संवेदनशील व्यक्ति ढोने के लिए अभिशप्त है। दूसरे खंड में वस्तु–जगत और मन के बीच के तनाव को व्यक्त करने का प्रयास है। व्यापक फलक पर लिखी गई तीसरे खंड की कविताओं की अनुभतियों में सामाजिक यथार्थ का प्रतिबिंबन

है। जाहिर है – 'पक गई है धूप' काव्य संग्रह सन् 1960 के बाद का है। यह मोह भंग और उससे उपजी अनास्था, अस्वीकार टूटन–घुटन, पलायन तथा यौन स्वेच्छाचार वाली काव्य–प्रवृत्ति का दौर है। समय–साहचर्य के कारण इन प्रवृत्तियों से मिश्र जी का यह काव्य संग्रह अप्रभावित नहीं रह सका है लेकिन मोह भंग के नाम पर यौन प्रसंगों से संदर्भित अश्लीलता, जिज्ञासा और निषेध में रस लेने की प्रवृत्ति यहाँ नहीं है। इस संग्रह की कविताओं में अभिव्यक्त, टूटन, घुटन, निराशा, अकेलापन और अस्वीकार बोध सामाजिक जीवन संदर्भों का है, जिसमें मूल्यों का निषेध नहीं मूल्यों के टूटने की पीड़ा है। रिश्तों में गरमाहट की जगह घुस आए अपरिचय से मानव–मूल्यों का क्षरण चिंता का विषय है। आमने–सामने मकान तो हैं लेकिन बीच में सड़क पारकर आत्मीयता का संसार रचने की फुर्सत किसी को नहीं है– *आमने–सामने मकान/ बीच में एक सड़क है/ मकान रोज देखते हैं एक–दूसरे को/ किंतु सड़क पार नहीं करते/ सड़क से गुजरते हैं लोग/ जिन्हें न सड़क जानती है न मकान।* (वही, पृष्ठ 260)।

महानगरीय सभ्यता की त्रासदी तो यह है कि कोई भी किसी को उसके असली नाम से नहीं पुकारता। ऐसे में अपना असली नाम भूल जाना भी अस्वाभाविक नहीं है– *अब कोई भी मुझे/ मेरे नाम से नहीं पुकारता/ असली नाम से/ मगर मेरा असली नाम/ ओह, वह तो अब/ मुझे भी नहीं मालूम।* (वही, पृष्ठ 268)

'महानगर में बसंत', 'गलियाँ और सड़कें', 'और एक दिन', 'कहाँ है समाज', 'भाग्यशाली' आदि कविताओं में महानगरीय जीवन की त्रासदियों की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है। 'लाशों के बीच–जीवित होने की पीड़ा' शीर्षक कविता में नगर अपनी विद्रूपता, संत्रास, भय, पीड़ा, ठगी और अजनबीयत के साथ उपस्थित है–

कचहरियाँ बाजार–सी बजबजा रही हैं
न्याय–कक्षों की दीवारों पर
क्रॉस पर टँगी हैं
सत्य, अहिंसा और न्याय की ऋचाएँ
छाया में, चारों ओर
कुरसियों पर तख्तों पर
मुरदे बिछे हैं
जिनके बीच से
जीवित होने की पीड़ा लिए
गुजरते हैं कुछ लोग
मुरदों के हाथ फैले हैं
जिनमें चुपचाप नोट ठूस कर
अभ्यस्त लोग आगे सरक जाते हैं।
(वही, पृष्ठ 256)

अपने अनुभवों को मानवतावादी दृष्टि से सृजित करने वाले रामदरश मिश्र बेहतर मनुष्य और बेहतर समाज की संकल्पना के कवि हैं। इसीलिए वे जीवन और समाज में व्याप्त हर प्रकार की कमजोरियों, न्यूनताओं, भ्रष्टाचारों तथा कुरूपताओं का विरोध करते हैं। उनकी यह प्रवृत्ति परवर्ती रचनाओं में क्रमशः बढ़ती गई है। 'दिन एक नदी बन गया', 'जुलूस कहाँ जा रहा है', 'आग कुछ नहीं बोलती', 'बारिश में भीगते बच्चे' तथा 'ऐसे में जब कभी' काव्य संग्रहों में युगजीवी यथार्थ के सही अंकन और अव्यवस्था पर प्रहार के लिए व्यंग्य का सहारा लिया गया है। लध्वाकारीय कविताओं में विसंगतियों और विडंबनाओं के प्रति आक्रोश और तल्खी का लावा अधिक धधका है। 'दिन एक नदी बन गया' संग्रह की 'नदी बहती है' कविता अपने आकार में लघु होते हुए भी भ्रष्टाचार की चरम अभिव्यक्ति की कविता है– *हमेशा आकाश से झरती है एक नदी/ और हमेशा ऊपर ही ऊपर कोई पी लेता है/ धरती प्यासी रहती है/ और कहने को आकाश से नदी बहती है।* (वही. पृष्ठ 455)।

इसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि संपन्नता और विपन्नता के बीच की खाई और चौड़ी हुई है। अमीर और अधिक अमीर तथा गरीब और अधिक गरीब हुआ है। इतना ही नहीं अमीरों द्वारा उसकी गरीबी का मजाक भी उड़ाया जाता है। हद तो तब हो जाती है जब दुर्गंधयुक्त वातावरण में कच्ची दीवार की टूटी छाया में कुत्ता–बकरी के साथ

रहने को अभिशप्त गरीब बेचारा सामने के राजमार्ग से गुजरते हुए हाथी–घोडों के जुलूस का जयगान करने के लिए विवश होता है–

बजबजाती हवाओं के बीच/ कच्ची दीवार की टूटी छाया/ उसके तले/ उसी तरह बैठा हुआ वह/ उसके साथ एक कुत्ता एक बकरी/ और उसका साया/ सामने के राजमार्ग से/ बार–बार गुजरते/ हाथी–घोड़ों के जुलूस की/ वह जय बोलता है। (वही, पृष्ठ 460)।

मिश्र जी की कविताएँ यथार्थ कथन तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि वे अन्याय और अत्यचार के विरूद्ध प्रतिरोध की चेतना जगाने का कार्य भी करती हैं। इसी संदर्भ में उन्हें हमसे अच्छी धूल लगती है क्योंकि उसमें दमन के विरोध का साहस है– *कोई जितनी ही तेजी से कुचलता है/ वह उतना ही ऊँचे उठती है/ और दूर तक पीछा करती है मधुमक्खियों की तरह/ हमसे तो अच्छी यह धूल ही है न/ जो हर दमन का प्रतिरोध करती है।* (वही, पृष्ठ 476)।

मिश्र जी की प्रतीकाश्रित अभिव्यंजना कभी–कभी सीधी ललकार बन जाती है। 'आग कुछ नहीं बोलती' संग्रह की इन पंक्तियों में धनपशुओं के प्रति यही भाव व्यक्त हुआ है– *चारों ओर का जल समेटकर/ अगाध बने/ अपनी गहरी चुप्पियों में डूबे सरोवर/ तुम यकायक थर्रा क्यों उठे?/ मैंने तो एक छोटी सी कंकड़ी फेंकी थी।*

रामदरश मिश्र की कविता में अनुभव–वैविध्य तो है ही अभिव्यंजना पद्धति की विविधता भी है। उन्होंने अगर लध्वाकारीय कविताएँ लिखी हैं तो उनकी कुछ लंबी कविताओं ने भी उनके कवि सामर्थ्य को प्रमाणित किया है। उन्होंने छांदस रचना द्वारा अपनी काव्य–प्रतिभा का श्रेष्ठ निदर्शन किया है तो मुक्त छंद में भी अपने अनुभवों और विचारों को प्रकट करने में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की है। अगर उन्होंने श्रेष्ठ गीतों की रचना की है तो ग़ज़ल की दुनिया में भी अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया है। इसके बावजूद उन्होंने कभी भी छलांगे लगाकर शिखर पर पहुँचने की कोशिश नहीं की लेकिन धीरे–धीरे ही सही उनकी रचनात्मक श्रेष्ठता ने उनको उस जगह पहुँचाया अवश्य– *जहाँ लोग पहुँचे छलाँगें लगाकर/ वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे–धीरे।*

– एन.जी. 22, टाइप–5, नयागाँव, चक्करगाँव, पोर्टब्लेयर, अंडमान–744112

❑❑❑

नागार्जुन : व्यक्तित्व तथा कृतित्व

डॉ. केशव राम शर्मा

नागार्जुन का जन्म बिहार प्रदेश के दरभंगा जिले के 'तरउनी' ग्राम के एक रूढ़िवादी मैथिल ब्राह्मण परिवार में 1911 ई. में हुआ था। आप चार वर्ष की अवस्था में मातृहीन हो गए थे। दुर्भाग्य से इनके पिता अत्यंत दरिद्र, रूढ़िवादी, संस्कारविहीन तथा कठोर स्वभाव के व्यक्ति थे। जीवन के कठोर संघर्षों ने इनके व्यक्तित्व को शुद्ध स्वर्ण की भाँति निखार दिया है। केवल लेखनी के बल से ही इन्होंने अपने परिवार को भी सँभाला और अपनी रचनाधर्मिता को भी निभाया। एक उत्कृष्ट साहित्यकार के साथ ही ये स्नेही पिता तथा आत्मीयजनों के सच्चे हितैषी रहे हैं। नागाबाबा के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए इनके मित्र प्रो. शिव कुमार मिश्र 'भस्मांकुर' की भूमिका में लिखते हैं–

"जीवन की कंटकाकीर्ण पगडंडियों पर साहसपूर्वक विचरण करते हुए वे अपने व्यक्तित्व और रचनाकार, दोनों को शान के साथ जीवित रख सके हैं। मेधावी, प्रत्युत्पन्नमति और सहज स्फूर्त प्रतिभा के धनी, उनकी एक–एक बात उनके अंतर की कोमलता और वज्र–कठोर दृढ़ता के साथ–साथ उनकी अद्भुत पैनी बुद्धि का प्रमाण देती है। विद्रोह उनके स्वभाव और चरित्र में मूर्तिमान है।"

कृतित्व

पं. वैद्यनाथ मिश्र, उपनाम–यात्री, नागार्जुन तथा नागाबाबा मैथिली तथा हिंदी के शीर्षस्थ लेखकों में अग्रणी हैं। संस्कृत भाषा पर भी आपका अच्छा अधिकार है। संस्कृत में आपका लघुकाव्य 'धर्मालोकशतकम्' सिंहली–लिपि में प्रकाशित है। आपके अन्य लघुकाव्य 'देश–दशकम्' 'कृषक–दशकम्' तथा 'श्रमिक–दशकम्' का प्रकाशन देवनागरी लिपि में हुआ है। अपनी मस्ती में जब ये काव्य पाठ करते थे, तो सुधी श्रोतागण मंत्रमुग्ध हो जाते थे।

मैथिली भाषा में आप ने 'चित्रा', 'विशाखा' तथा 'पत्रहीन नग्न गाछ' काव्य कृतियाँ लिखी हैं। इनमें से 'पत्रहीन नग्न गाछ' नामक काव्य संकलन के लिए कवि को 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार मिला था। इनके मैथिली उपन्यास 'पारो', 'नव तुरिया' तथा 'बलचनमा' कवि को मैथिली के शीर्षस्थ लेखकों में आदरणीय स्थान प्रदान कराते हैं।

हिंदी में नागाबाबा ने कवि तथा कथाकार दोनों रूपों में समान ख्याति अर्जित की है। इनके प्रसिद्ध उपन्यास– 'रतिनाथ की चाची', 'नई पौध', 'बाबा बटेसर नाथ', 'वरुण के बेटे', 'दुःख मोचन', 'कुंभीपाक' तथा 'उग्रतारा' हैं। यों तो आपका कथा–साहित्य बहुत संपन्न है तथापि इनकी 'रतिनाथ की चाची' तथा 'उग्रतारा' जैसे सुंदर चरित्रों की सृष्टि सदैव अविस्मरणीय रहेगी।

आपकी प्रसद्धि काव्यकृतियों में 'युगधारा', 'सतरंगे पंखो वाली', 'प्यासी पथराई आँखें' तथा 'भस्मांकुर' अत्यंत श्रेष्ठ हैं। कुछ लघु काव्य संकलन– 'प्रेत का बयान', 'खून और शोले', 'शपथ',

भाषा ISSN 0523-1418

'चना जोर गरम' आदि की भी अपनी विशिष्टताएँ हैं। आपकी अनेक कविताओं तथा कुछ उपन्यासों का विदेशी भाषाओं में भी अनुवाद हो चुका है।

नागाबाबा की अनेक कविताएँ अभी भी अप्रकाशित हैं। प्रकाशकों की स्थिति ऐसी है कि कोई भी काव्य संकलन छापने को प्रस्तुत नहीं है। दुःखी होकर 1959 ई. में इन्होंने 'सतरंगे पंखों वाली' काव्य संकलन का स्वयं प्रकाशन कराया था। लेखक तथा प्रकाशक के दुहरे दायित्वों का निर्वाह कठिन कार्य है। फलस्वरूप कवि को हानि उठाते हुए प्रकाशन कार्य बंद करना पड़ा था। इस संकलन की 'सतरंगे पंखों वाली', 'यह तुम थी', 'सिंदूर–तिलकित भाल', 'कालिदास' आदि कविताएँ विशेष चर्चित हैं।

इसके पश्चात् प्रकाशित होने वाले 'प्यासी पथराई आँखें' काव्य संकलन में सामाजिक यथार्थ का सजीव चित्रण है। "वे लोहा पीट रहे हैं तुम मन को पीट रहे हो" तथा "आओ रानी हम ढोएँगे पालकी, यही हुई है राय जवाहर लाल की" जैसे सशक्त व्यंग्य हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि कर रहे हैं।

तदनंतर प्रकाशित 'भस्मांकुर' कवि की प्रौढ़तम तथा प्रियतम रचना है। इसके छपने से कुछ समय पूर्व नागाबाबा ने अपने मित्र डॉ. शिव कुमार मिश्र को लिखा था– "एक हजार पंक्तियों की अत्यंत सुंदर कविता लिखी है। राजकमल वाले छाप रहे हैं। छपने पर भेजूँगा।" कवि के इस कथन में छिपी हुई प्रसन्नता स्वाभाविक है। यह लघु खंडकाव्य बहुत ही सशक्त रचना है। इसमें असमय में वसंत के आविर्भाव से लेकर काम–दहन तक का और बाद में आश्वासन देने वाली आकाशवाणी का बहुत ही संक्षिप्त कथानक है, जिसमें कवि की प्रतिभा ने अद्भुत आकर्षण भर दिया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि तीन–तीन भाषाओं में कवि की रचनाओं का विपुल भंडार है। नागार्जुन की गद्य तथा पद्य में समान गति है और सभी विधाओं में इन्होंने अच्छी ख्याति अर्जित की है। साहित्यिक कसौटी पर कसने के लिए काव्य के भावपक्ष तथा कलापक्ष का विवेचन आवश्यक है। अतः अब हम उसी ओर अग्रसर हो रहे हैं।

भावपक्ष

नागार्जुन के काव्य का भावपक्ष वैविध्यपूर्ण तथा बहुत ही अनुपम है। कहीं उनका सौंदर्य–बोध विविध भाव छवियों का अंकन करता है, तो कहीं वे मानवीय संघर्षों का चित्रण करते हैं। कहीं शोषितों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हैं, तो कहीं पूंजीपतियों और भ्रष्ट राजनेताओं को आड़े हाथों लेते हैं। कवि का रसात्मक बोध, सौंदर्य भावना, राष्ट्रप्रेम, प्रकृति–चित्रण तीखे व्यंग्य आदि इनके काव्य की श्रेष्ठता के उद्घोषक हैं।

1. रसात्मक बोध

यद्यपि नागार्जुन ने प्रायः सभी रसों की सुंदर व्यंजना की है तथापि शृंगार रस इनको विशेष प्रिय है। हिंदी में हास्य रस का प्रायः अभाव है। इनकी प्रिय रचना 'भस्मांकुर' में भी यद्यपि शृंगार और करुण रसों की प्रधानता है तथापि हास्य रस का भी अच्छा प्रतिनिधित्व है। एक उदाहरण प्रस्तुत है–

सखा वसंत कामदेव को समझा रहा है–

तुम जाओ, बूढ़े का करो इलाज
भाभी को चाहे ले जाओ साथ
मगर इन्हें तुम रखना अपने पास
मत करना उस खूसट का विश्वास
पकड़ लिया यदि शिव ने रति का हाथ
सोचो, गौरी का होगा क्या हाल?

संयोग शृंगार का भी एक उदाहरण दृष्टव्य है–

मुझे देखकर मुसकाते हैं आप
चटुल दृगों में प्रीति गई है व्याप
झुक–झुक सूंघ रहे हैं लीला–पद्म
शिथिल पड़ा मम व्रीड़ा–विगलित हाथ
थाम लिया है प्रिय ने फिर चुपचाप
लगी उभरने उद्दीपन की छाप
मन में थिरकन, तन में है रोमांच
पलकों पर जमकर बैठा संकोच
उठ पाती है ऊपर कहाँ निगाह...

2. सौंदर्य–भावना

कवि सौंदर्य का उपासक होता है। नागार्जुन भी इसका अपवाद नहीं हैं। आपकी कविताओं में मानवीय रूप का सौंदर्य, प्राकृतिक सौंदर्य,

भाव–सौंदर्य सभी का सुष्ठु समावेश है। पार्वती के सौंदर्य की एक झलक देखिए–

रविकर विकसित कमल–कोश उपमान
चित्रकार–तूली–उन्मीलित रूप
नव यौवन से सुविभाजित अवदात
भुवन मोहनी स्मिति, सौंदर्य–प्रभात
उमा, पार्वती, त्रिभुवन शोभा–धाम
× × × × ×
वयः संधि का तरल–मृदुल प्रतिमान
रोम–रोम से फूट रहा लावण्य

3. देश–प्रेम और लोक–मंगल की भावना

नागाबाबा के हृदय में अपने देश, समाज और देशवासियों के प्रति प्रगाढ़ स्नेह है। वे मातृभूमि के सच्चे पुजारी हैं–

खेत हमारे, भूमि हमारी, सारा देश हमारा है,
इसीलिए तो हमको इसका चप्पा–चप्पा
प्यारा है।

देश की भावात्मक एकता की ओर संकेत करते हुए वे सभी महापुरुषों को संपूर्ण देश की अमूल्य निधि स्वीकार करते हैं। इस संबंध में उनका व्यंग्य देखिए–

लाला लाजपत राय की प्रतिमा मद्रास में
सुभाष नहीं पड़ेंगे लखनऊ में सत्यमूर्ति
सुभाष और जे. एफ. सेन गुप्त क्या सीमित
रहेंगे
भवानीपुर और शाम बाजार की दुकानों तक
तिलक नहीं निकलेंगे पूना से बाहर।

4. प्रकृति–चित्रण

भारत के प्रायः सभी कवि न्यूनाधिक प्रकृति –प्रेमी हैं। नागार्जुन के काव्य में प्रकृति के कोमल तथा कठोर दोनों रूपों का सुंदर चित्रण है। आलंबन, उद्दीपन, आलंकारिक, पृष्ठभूमि का चित्रण आदि अनेक रूपों में इनका प्रकृति–चित्रण अनूठा है। 'भस्मांकुर' में वसंत का चित्रण देखिए–

मुदित विटप–समुदाय, सरस आमूल
पोर–पोर, टहनी–टहनी उद्भिन्न
अगणित टूसे मना हरे उल्लास।

5. व्यंग्य की प्रधानता

नागार्जुन अपनी सपाट बयानी तथा तीखेपन के लिए जाने जाते हैं। इनके व्यंग्य बहुत ही सटीक, स्वाभाविक, सशक्त तथा तीखे होते हैं। गांधी जी की हत्या के विरोध में लिखे गए 'शपथ' लघुकाव्य में कवि का विक्षोभ भरा है। गांधी–भक्तों को इनके व्यंग्य असह्य हो गए तो नागार्जुन को कारावास दिया गया और इस रचना की कुछ कविताओं पर भी बिहार सरकार ने रोक लगा दी थी। इसी प्रकार 'प्रेत का बयान' और 'चना जोर गरम' में भी राजनीति के खलनायकों और आज के सामाजिक जीवन पर तीखे व्यंग्य हैं। गरीबी के विषय में देखिए–

ओ रे प्रेत!
कड़क कर बोले नरक के मालिक यमराज–
सच–सच बतला
कैसे मरा तू
भूख से अकाल से?

वे आर्थिक विषमता के लिए कांग्रेस–शासन पर दोषारोपण करते हुए कहते हैं–

पेट–पेट में आग लगी है, घर–घर में है
फाका।
यह भी भावी चमत्कार है, कांग्रेस महिमा
का।।
लाज–शरम रह गई न बाकी, गांधी जी के
चेलों में।
फूल नहीं लाठियाँ बरसती, राम–राज्य की
जेलों में।

पूंजीपतियों की शोषित प्रवृत्ति पर उनका व्यंग्य प्रस्तुत है–

जमींदार है, साहूकार है, बनिया है, व्यापारी
है,
अंदर–अंदर विकट कसाई, बाहर खद्दरधारी
है।

एक प्राथमिक विद्यालय की स्थिति देखिए–

घुन खाए शहतीरों पर की, बारहखड़ी विधाता
बाँचे,
फटी भींत है, छत चूती है, आले पर बिसतुइया
नाचे,
लगा–लगा बेबस बच्चों पर, मिनट–मिनट में
पाँच तमाचे,
इसी तरह से दुखरन मास्टर, गढ़ता है आदम
के साँचे।

पंचवर्षीय योजनाओं पर कवि का प्रहार–

आजादी की कलियाँ फूटी, पाँच साल में होंगे फूल
पाँच साल कम खाओ भैया, गम खाओ
दस–पंद्रह साल
अपने हाथों से झोकों यों, अपनी आँखों में तुम धूल।।

6. वस्तु–संगठन

कवि वस्तु–संगठन में सिद्धहस्त है। 'रतिनाथ की चाची' तथा 'बलचनमा' जैसे उपन्यासों की लोकप्रियता तो इसकी परिचायक है ही खंडकाव्य 'भस्मांकुर' भी इस दृष्टि से अत्यंत सफल रचना है। इसके कथानक में स्वाभाविकता, सरसता, सजीवता और रोचकता का ऐसा समावेश है कि साधारण पाठक भी इसे सहज ही हृदयंगम कर लेता है। पौराणिक कथानक में कहीं भी जटिलता अस्वाभाविकता का व्यर्थ का विस्तार नहीं है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नागार्जुन की कविता का भावपक्ष रस, भाव, लोकमंगल की कामना, राष्ट्रप्रेम, प्रकृति–चित्रण, कथा–संगठन आदि की दृष्टि से अत्यंत सफल है। व्यंग्य इनका प्रखर अस्त्र है जो सभी रचनाओं में भावों की उथल–पुथल मचा देता है।

कलापक्ष

साहित्य के सम्यक् विवेचन के लिए भावपक्ष के साथ कलापक्ष पर भी प्रकाश डालना आवश्यक होता है। नागार्जुन के काव्य में इन दोनों का मणिकांचन संयोग है। कलापक्ष के प्रमुख तत्वों का विश्लेषण प्रस्तुत है।

1. भाषा

नागाबाबा की भाषा में विविधता है। पवन कुमार मिश्र के शब्दों में– "नागार्जुन संस्कृत, पालि, प्राकृत, मैथिली और भोजपुरी की विराट्–विपुल शब्द–संपदा लेकर खड़ी बोली में आए हैं। शब्दों का ऐसा विराट भंडार हिंदी के कम ही लेखकों के पास है।" इनकी खड़ी बोली भाषा अत्यंत सजीव परिमार्जित तथा परिष्कृत है। इसमें सभी शब्द–शक्तियों, तीनों गुणों, तीखे व्यंग्यों, मुहावरों तथा लोकोक्तियों का सुंदर समावेश है। कुछ मुहावरे देखिए– तीसों दिन दीवाली है, जान में जान आना, बूढ़े का करो इलाज इत्यादि।

2. शैली

आप के काव्य में मुक्तक तथा प्रबंध दोनों प्रकार की शैलियों का सुष्ठु प्रयोग है। लघु से लघु कविता से लेकर एक हजार पंक्तियों तक की कविताओं में आपकी शैली पात्रानुरूप, रसानुरूप होते हुए, कथ्य के अनुरूप वर्णनात्मक, भावात्मक, विश्लेषणात्मक आदि रूपों में सफलता के साथ विद्यमान है। चित्रात्मक शैली का एक उदाहरण दृष्टव्य है–

अर्द्धनिमीलित नेत्र, पलक निस्पंद
अचपल मणिगोलक नासाग्रनिबद्ध
मेरुदंड अति उन्नत, कटि थिरमूल
निहित गोद में पाणि युगल उत्तान
सद्यः विकसित शुचि राजीव समान...

3. छंद

आपने हिंदी के परंपरागत कवित्त, सवैया, बरवै, दोहा, चौपाई आदि छंदों से लेकर आधुनिक मुक्त छंद का भी सफल प्रयोग किया है। मुक्त छंद के विषय में कवि के दृष्टिकोण पर प्रकाश डालते हुए डॉ. शिव कुमार मिश्र लिखते हैं– "मुक्त छंद में सफलतापूर्वक रचना तभी की जा सकती है जब रचयिता को परंपरागत छंदों का गहरा ज्ञान हो। निराला का मंतव्य भी यही था और तभी निराला और नागार्जुन के मुक्त छंद अपनी लय और अपने प्रवाह को स्थिर रख सके हैं, सफल बन सके हैं।" नागार्जुन ने तुलसी और रहीम के प्रिय बरवै छंद की भी 'भस्मांकुर' में सुंदर प्राण–प्रतिष्ठा की है।

4. अलंकार

नागाबाबा के साहित्य में अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग है। वे केवल चमत्कार उत्पन्न करने के लिए नहीं अपितु भाव–सौंदर्य के साधक हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि वे साध्यरूप में प्रस्तुत न होकर साधनरूप में प्रयुक्त हुए हैं। उपमा का प्रयोग देखिए–

घिसे हुए पीतल–सी पांडुर
पूस मास की धूप सुहावन।

इनके काव्य में प्रतीक–योजना बिंब–विधान तथा संवाद–योजना भी उत्तम है। इस प्रकार साहित्य के दोनों पक्षों के अध्ययन से स्पष्ट है कि इनका काव्य सरल हृदय की भावुकता तथा पाण्डित्य के सुंदर समन्वय से ओत–प्रोत है। एक ओर भावों की सुंदर सरिता का वेग झलकता है, तो दूसरी ओर उसकी प्रस्तुति का सौंदर्य पाठक को मंत्रमुग्ध कर देता है।

अंत में बहुत कष्ट के साथ लिखना पड़ रहा है कि ऐसे रससिद्ध कवीश्वर का भी पर्याप्त साहित्य अभी तक अप्रकाशित है। यदि इनका साहित्य समग्ररूप में प्रकाशित होकर सहृदय जनों को सुलभ हो सके, तभी इनके साहित्य का उचित मूल्यांकन संभव है, जो एक सुखद स्वप्न मात्र ही है।

– पूर्व उपाचार्य, बी–59, सड़क सं.–3, इंदिरा निकेतन, उत्तरी छज्जूपुर, दिल्ली–110094

❑❑❑

रेणु के मैला आँचल में ग्रामीण यथार्थ

शिव प्रकाश दास

हिंदी साहित्य में प्रेमचंद ने उपन्यास को जिस तरह एक ग्रामीण शैली की ओर मोड़ा, वह शैली उपन्यास के लिए बिलकुल नई थी। प्रेमचंद के पहले तक हिंदी उपन्यास तिलस्म, ऐय्यारी और जासूसी की दुनिया में रमा हुआ था। गोपालराम गहमरी, देवकीनंदन खत्री जैसे रचनाकार हिंदी उपन्यास की दिशा और दशा तय कर रहे थे, ऐसे में प्रेमचंद का जन्म एक क्रांतिकारी घटना कही जा सकती है। प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास को तिलस्म और जासूसी से निकालकर उसे ग्राम्य जीवन के साथ राष्ट्रीय चेतना की ओर उन्मुख किया। उपन्यास जो मध्यमवर्गीय जीवन का महाकाव्य कहा जाता है, उसे प्रेमचंद ने एक विस्तृत फलक दिया। प्रेमचंद ने उपन्यास के माध्यम से ग्राम्य जीवन का एक ऐसा चित्र खींचा जो भारतीय समाज व्यवस्था में शोषित, पीड़ित और दलित जन की आवाज बनकर उभरता है। उनके द्वारा लिखा गया 'गोदान' भारतीय किसान जीवन का महाकाव्य कहा जाता है। अगर भारतीय इतिहास को जानना है तो हमें प्रेमचंद के लिखे उपन्यासों से गुजरना ही होगा।

प्रेमचंद ने जिस ग्राम्य जीवन की चर्चा अपने उपन्यासों में की, जिस ग्रामीण जीवन का चित्र खींचा, वह उनके बाद बिल्कुल सूना दिखलाई पड़ने लगता है, ऐसे में फणीश्वरनाथ रेणु का हिंदी साहित्य में आना और भारतीय ग्रामीण जीवन पर उनके द्वारा 'मैला आँचल' लिखा जाना, एक अभूतपूर्व घटना प्रतीत होती है। जिसे स्वयं रेणु एक आँचलिक उपन्यास कहकर विभूषित करते हैं। इस उपन्यास में रेणु जी ने समूचे भारतवर्ष के ग्राम्याँचलों को मेरीगंज के माध्यम से जीवंत कर दिया है। वह 'मैला आँचल' की भूमिका में ही लिखते हैं–

"यह है मैला आँचल, आँचलिक उपन्यास। कथाँचल है पूर्णिया।"[1]

घोषित रूप में यह उपन्यास हिंदी का पहला आँचलिक उपन्यास है, जिसे स्वयं रेणु ने ही आँचलिक उपन्यास कहा है। आँचलिक उपन्यास सामान्यतः उसे कहा जाता है जिसमें किसी व्यक्ति के नायकत्व के स्थान पर किसी अंचल विशेष के नायकत्व की स्थापना की जाती है। इस उपन्यास के केंद्र में पूर्णिया जिले का मेरीगंज गाँव है जिसके इर्द–गिर्द 'मैला आँचल' की सारी कथा घूमती रहती है। ग्राम्य अंचल की सारी विशेषता जैसे जेहालत, अंधविश्वास, भोलापन, तिकड़म, माटी की महक, लोक–संस्कृति, गाँव का राग–द्वेष, आपसी सौहार्द इत्यादि जिस समग्रता के साथ उद्धृत हुई है वह स्वयं में अद्वितीय है। मेरीगंज के माध्यम से रेणु ने संपूर्ण भारत के स्वरूप का बड़ा ही मनोरम चित्रण किया है। इस क्षेत्र का वर्णन करते हुए रेणु लिखते हैं–

"इसमें फूल भी है शूल भी, धूल भी है गुलाल भी, कीचड़ भी है चंदन भी, सुंदरता भी है कुरूपता भी– मैं किसी से भी दामन बचाकर निकल नहीं पाया।"[2]

यह किसी भी चीज से दामन बचाकर न निकल पाना ही रेणु की अपनी खासियत है, जो रेणु को रेणु बनाती है। 'मैला आँचल' के लेखन में रेणु ने जिस निष्ठा के साथ अपने लेखकीय कर्तव्यों का निर्वाह किया है वह अतुलनीय है। रेणु ने व्यक्ति जीवन के स्थान पर समाज को अपनी कथा का केंद्र बनाया है। इस उपन्यास की दृष्टि यथार्थवादी है, जिसमें कहीं–कहीं आदर्श की भी झलक दिखलाई दे जाती है। रेणु ने जिस मेरीगंज गाँव को कथा के लिए चुना है वह मेरीगंज गाँव पूरे भारत के सभी पिछड़े गाँवों का प्रतिनिधित्व करता दिखलाई देता है। वह पिछड़े गाँव का प्रतीक है। इस उपन्यास के संबंध में डॉक्टर बच्चन सिंह लिखते हैं–

"फणीश्वरनाथ रेणु के मैला आँचल (54) के प्रकाशन के साथ हिंदी में आँचलिक उपन्यासों की शुरुआत होती है। यह दूसरी बात है कि इसकी ऊँचाई को लाँघ पाना किसी अन्य आँचलिक उपन्यास के लिए संभव नहीं हो सका।"[3]

रेणु का यह लेखन के प्रति समर्पण ही उन्हें एक नई ऊँचाई प्रदान करता है। इनका अधिकतर समय गाँव में गुजरा है इसलिए भारतीय गाँव का जितना सहज और भावनात्मक रूप प्रस्तुत करने में वह सफल हुए हैं उतना अन्यत्र कोई नहीं। देहाती जीवन के मर्म और पीड़ा को बड़ी संजीदगी से इन्होंने अपने उपन्यास 'मैला आँचल' में प्रस्तुत किया है। ग्रामीण जीवन से जुड़े होने के कारण ही गाँव के यथार्थ और सत्य की व्यापक पड़ताल करने में सफल हो पाते हैं। इनकी चेतना और सृजनशीलता गाँव की माटी में पली बढ़ी है इसलिए गाँव का सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप भी इनकी नजरों से छूट नहीं पाता। ग्राम्य जीवन के हर रूप को इन्होंने आत्मसात कर लिया है जिसका परिणाम हमें मैला आँचल के रूप में दिखलाई पड़ता है। मैला आँचल की इसी विशेषता की ओर रेखांकित करते हुए डॉ. बच्चन सिंह लिखते हैं–

"मैला आँचल का वैशिष्ट्य मेरीगंज गाँव के आसपास के अंचल यानी नदी, नालों, खेतों–खलिहानों, ताड़ के विरल वनों, कमलों से सुशोभित पोखरों के कलात्मक वर्णनों में नहीं है बल्कि इनके साथ जीवन यात्रा में गिरते–पड़ते टूटते–बनते, जीते–मरते जन समुदाय में है जिसे लेखक ने अपनी दृष्टि से निर्मित किया है। ऐसा जीवंत संश्लिष्ट और गत्यात्मक चित्र न तो रेणु के गुरु सतीनाथ भादुड़ी के 'ढ़ोढ़ाय चरित मानस' में मिलेगा और न ताराचंद बंदोपाध्याय में।"[4]

'मैला आँचल' का मेरीगंज सभी तरह के लोगों का एक ऐसा समन्वय है जहाँ सभी प्रवृत्तियों के लोग एक–साथ निवास करते हैं। मठ का धर्म भ्रष्ट महंत सेवादास, स्नेह में डूबी कमला, लक्ष्मी जैसी कर्तव्य परायण स्त्री, बावनदास जैसा देशभक्त, आदर्श को अपनाकर मेरीगंज को अपनाने वाला डॉ. प्रशांत, चुगलखोर सुमिरतदास, अंधविश्वासी जोतखी काका, अवसरवादी बालदेव, क्रांति का प्रेरणास्रोत कालीचरण, शोषण का मुख्य कर्ताधर्ता तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद आदि जैसे लोग केवल मेरीगंज में ही नहीं अपितु पूरे देश के सभी गाँवों में देखने को मिल जाएँगे। अतः मेरीगंज में जो धड़कता है वह पूरे देश के गाँव की धड़कन है। यह सभी पात्र देश के सभी गाँवों में देखने को जरूर मिल जाते हैं, जिनमें आए दिन टकराहट भी होती रहती है।

गाँव के संबंध में एक धारणा है कि गाँव के लोग बड़े सीधे–सादे और सज्जन होते हैं। यह धारणा रेणु तक आते–आते टूटने लगती है। रेणु अपने उपन्यास 'मैला आँचल' में आदर्श का छौंका नहीं लगाते। वह यथार्थ को यथार्थ के रूप में ही रखते हैं। गाँव का महिमा मंडन या एक आदर्शवादी चरित्र उन्हें सोहाता है, गाँव में घट रही हर घटना को वह एक सूत्र में पिरोते हैं, जिससे 'मैला आँचल' लगातार निखरता जाता है। इसी संदर्भ में डॉक्टर प्रशांत ममता को एक खत लिखते समय इन गाँव वालों के चरित्र का उद्घाटन करते हुए लिखता है–

"गाँव के लोग बड़े सीधे दिखते हैं, सीधे का अर्थ यदि अपढ़, अज्ञानी और अंधविश्वासी हो तो वास्तव में सीधे हैं वे। जहाँ तक सांसारिक बुद्धि का सवाल है, वे हमारे और तुम्हारे जैसे लोगों को दिन में पाँच बार ठग लेंगे और तारीफ यह कि तुम

ठगी जाकर भी उनकी सरलता पर मुग्ध होने के लिए मजबूर हो जाओगी।"[5]

गाँवों में असंख्य ऐसे दृश्य भरे पड़े हैं जहाँ गाँव के कुछ लोगों के द्वारा उनकी छोटी सोच और वितृष्णा से भरी मानसिकता का पता चल जाता है, 'मैला आँचल' उपन्यास भी इससे अछूता नहीं है। मलेरिया सेंटर खुलवाने आए सरकारी कर्मचारियों को मिलिट्री के लोग समझकर गाँव के लोग डर जाते हैं और मान बैठते हैं कि बालदेव के कारण ही आज गाँव में पुलिस आई है। इसलिए गाँव के लोग सुराजी बालदेव को रस्सी से बाँध कर उन कर्मचारियों के समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं। एक दृश्य देखें–

"यादव टोली के लोगों ने ख़बर सुनते ही बलिया उर्फ बालदेव को गिरफ्तार कर लिया। भागने न पाए। रस्सी से बाँधो! पहले ही कहा था कि एक दिन सारे गाँव को बंधवाएगा।"[6]

तहसीलदार विश्वनाथ प्रताप का चरित्र भी किसी से छिपा नहीं है गाँव के शोषण का वह या उस जैसे लोग जीते जागते चरित्र हैं, जिनके कारण मेरीगंज या उस जैसे और गाँवों की दुर्गति हो रही है। तहसीलदार के पास एक हजार बीघा जमीन है। गाँव की इज्जत बचाने के नाम पर वह संथाल लोगों को बाहरी बताकर उन पर हमला करवाता है। वह गाँव के लोगों की अज्ञानता का लाभ उठाकर अपना गोदाम भरता है। सादे कागज पर किसानों से अंगूठा लगवाकर धीरे–धीरे सभी की जमीन हड़प लेता है। उससे बड़ा अवसरवादी भला और कौन हो सकता है। तहसीलदारी में लाभ न देखकर कांग्रेस का कार्यकर्ता बन जाता है और वहाँ से पैसा कमाने लगता है। जब तक गाँव में विश्वनाथ प्रसाद जैसे लोग रहेंगे, गाँव का जो रूप निखरकर सामने आएगा वह मेरीगंज जैसा ही हो सकता है। विश्वनाथ प्रसाद के काइयाँपन को इन पंक्तियों में देखा जा सकता है–

"हिसाब लगाकर देख लो पूरे पचास रुपए का सामान है। यह रुपया एक हफ्ता के अंदर ही अपने टोले और लोबिन के टोले से वसूल कर जमा कर देना। तुम लोगों के चलते।"[7]

भारतीय ग्राम वर्ण–व्यवस्था के कारण जाति के नाम पर बँटे हुए हैं। मेरीगंज एक बड़ा गाँव है। इस गाँव में बारहों वर्ण के लोग रहते हैं। मेरीगंज में ब्राह्मण, राजपूत, कायस्थ, यादव के अलावा ततमा, गहलोत, पासवान, टोलियाँ, धानुक, कुर्मी, कोयरी आदि का अपना टोला है। यह टोले हमेशा एक–दूसरे को नीचा दिखाने के लिए अग्रसर रहते हैं। जाति के आधार पर पूरा गाँव अपने स्वार्थ सिद्धि में लगा रहता है। तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद, ठाकुर रामकृपाल सिंह, गाँव के लोगों को लूटते हैं। पूरे गाँव में जातिगत हिंसा होती रहती है। सभी लोग अपनी जातिगत उच्चता को लेकर आपस में लड़ते हैं। इसका फायदा राजपूत, कायस्थ और यादव जाति के क्रमशः रामकृपाल सिंह, विश्वनाथ प्रसाद और खेलावन यादव जैसे लोग उठाते हैं। इन तीनों ने गाँव को तीन दलों में बाँटकर रख दिया है। लोगों को आपस में बाँटकर यह तीनों अपना उल्लू सीधा करते हैं और एक–दूसरे के विकास में रोड़ा बनकर खड़े हो जाते हैं।

जाति का ज़हर मेरीगंज में इस प्रकार फैला है कि जाति आदमी से बड़ी हो जाती है। कबीर ने कहा था– जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान। पर धरातल कुछ और ही बयाँ करता है। परिचय पूछने से पहले लोग जाति पूछना ज्यादा पसंद करते हैं। डॉक्टर प्रशांत भी इन सवालों से बच नहीं पाता। उसे भी जाति के तीखे प्रश्नों का सामना करना पड़ता है। डॉक्टर प्रशांत इस जाति पर विचार करने लगता है–

"नाम पूछने के बाद ही लोग यहाँ पूछते हैं– जात? यहाँ तो हर आदमी जाति पूछता है। प्रशांत हँसकर कभी कहता है– जाति? डॉक्टर!..... जाति बहुत बड़ी चीज़ है जात–पात नहीं मानने वालों की भी जाति होती है। सिर्फ हिंदू कहने से ही पिंड नहीं छूट सकता। ब्राह्मण हैं? कौन ब्राह्मण! गोत्र क्या है? मूल कौन है? शहर में कोई किसी से जात नहीं पूछता। शहर के लोगों की जाति का क्या ठिकाना! लेकिन गाँव में तो बिना जाति के आपका नहीं चल सकता।"[8]

सीधे–सादे गाँव के लोग ब्राह्मणों द्वारा फैलाए गए अंधविश्वास के प्रति बहुत ज्यादा आशावादी

होते हैं। वह विज्ञान और आडंबर में से ढोंग–पाखंड और आडंबरों को जितना महत्व देंगे, उतना महत्व विज्ञान को नहीं। ब्राह्मणों के द्वारा फैलाए गए प्रपंच को समझ नहीं पाते हैं और आजीवन उसके चंगुल में उलझे रहते हैं। परिणाम यह निकलता है कि ब्राह्मणवाद फलता–फूलता रहता है। विज्ञान के आने के बाद भी ब्राह्मणवाद लगातार उसे नकारता रहा है। उसे अपना दुश्मन समझता है। अस्पताल के प्रति जोतखी जी का रवैया ठीक नहीं है वह मेरीगंज में अफवाह फैलाता है। जोतखी जी का विश्वास है कि–

"डॉक्टर लोग ही रोग फैलाते हैं, सुई भोंक कर देह में ज़हर दे देते हैं, आदमी हमेशा के लिए कमजोर हो जाता है। हैजा के समय कूपों में दवा डाल देते हैं, गाँव का गाँव हैजा में समाप्त हो जाता है। काला बुखार का नाम पहले लोगों ने कभी नहीं सुना था? पूरब मुलुक कामरू कामेच्छा हासाम से कालाबुखार वालों का लहू शीशी में बंद करके यही लोग ले आए थे। आजकल घर–घर काला बुखर फैल रहा है। इसके अलावा बिलैती दवा में गाय का खून मिला रहता है।"[9]

मेरीगंज में अंधविश्वास का यह आलम है कि जब चाहे तब किसी भी स्त्री को डाइन बताकर उस पर जुर्म किया जाता है। घटना कुछ भी हो लोग किसी न किसी डाइन की करतूत बताने में चूकते नहीं हैं। सदियों से स्त्रियों के ऊपर इसी तरह का अत्याचार होता रहा है, यौन शोषण व डायन बताकर उसकी आबरू से खिलवाड़ मेरीगंज में आम सी बात लगती है। जो महिला यौन शोषण का विरोध करती है उसके साथ शक्तिशाली लोगों के द्वारा कुछ ऐसी ही अनहोनी तय कर दी जाती है जिसमें पिसते हुए महिला अपनी इहलीला समाप्त करने को मजबूर हो जाती है। डायन घोषित महिला के साथ कैसा व्यवहार किया जाता है यह किसी से छिपा भी नहीं है। तरह–तरह की अफवाह फैलाई जाती हैं, ऐसी ही अफवाह गणेश की नानी के बारे में पूरे मेरीगंज में फैली हुई है। अफवाह का यह एक रूप देखें जिस पर कभी विश्वास नहीं किया जा सकता, फिर भी मेरीगंज के लोग विश्वस्त हैं–

"पारवती की माँ थी। डाइन है! तीन कुल में एक को भी नहीं छोड़ा। सबको खा गई। पहले भतार को, इसके बाद देवर–देवरानी, बेटा–बेटी सबको खा गई। अब एक नाती है उसको भी चबा रही है।"[10]

रेणु ग्रामीण यथार्थ का चित्रण करते हुए गाँव की हर नब्ज को टटोलते हैं, ठोक बजाकर देख लेते हैं, कौन सा घड़ा कैसा है। धर्म के नाम पर मठों में होने वाले शोषण को बड़े ही मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया है। धर्म के नाम पर दासियों का यौन शोषण महंतों के जैसे जन्मसिद्ध अधिकार हो गया था। मंदिर के महंत सेवादास द्वारा अबोध बालिका लक्ष्मी दासिन के ऊपर किया जाने वाला यौन शोषण हृदय विदारक है। खेलावन यादव महंत की काली करतूतों का भंडाफोड़ करते हुए कहता है–

"महंथ जब लछमी को मठ पर लाया था तो वह एकदम अबोध थी, एकदम नादान।.... कहाँ वह बच्ची और कहाँ पचास बरस का बूढ़ा गिद्ध। रोज रात में लछमी रोती थी, ऐसा रोना कि जिसे सुनकर पत्थर भी पिघल जाए।.... रोज सुबह लछमी दूध लेने बथान पर आती थी उसकी आँखे कदम के फूल की तरह फूली रहती थीं। रात में रोने का कारण पूछने पर चुपचाप टुकुर–टुकुर मुँह देखने लगती थी... ठीक गाय की बाछी की तरह जिसकी माँ मर गई हो।"[11]

इस तरह हम देखते हैं कि फणीश्वरनाथ रेणु अपने उपन्यास 'मैला आँचल' के द्वारा ग्राम्य जीवन का कोना–कोना झाँक आते हैं। गाँव की बनी बनाई परिपाटी के भीतर कितना कुछ घट रहा है उसकी पड़ताल करने में रेणु पीछे नहीं हटते। ग्राम्य जीवन में शोषण के सभी रूपों से वह हमें परिचित करवाते हैं। अंधविश्वास, ढोंग–पाखंड की आड़ में किस प्रकार भोले–भाले लोगों का शोषण हो रहा है उसे भी रेणु रेखांकित करते हुए चलते हैं। धर्मांधता की जगह वह आधुनिकता पर जोर देते हैं जिससे लोग शिक्षित होकर अपने बंधन से मुक्त हो सकें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रेणु फणीश्वरनाथ, मैला आँचल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–1975, पृष्ठ–6
2. रेणु फणीश्वरनाथ, मैला आँचल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–1975, पृष्ठ–6
3. सिंह बच्चन, आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–1999, पृष्ठ–345
4. सिंह बच्चन, आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–1999, पृष्ठ–346
5. रेणु फणीश्वरनाथ, मैला आँचल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–1975, पृष्ठ–53
6. वही, पृष्ठ–9
7. वही, पृष्ठ–10
8. वही, पृष्ठ–51
9. वही, पृष्ठ–19
10. वही, पृष्ठ–103
11. वही, पृष्ठ–26

– शोधार्थी, 2–के.बी.एम. रोड, पोस्ट–बैद्यवाटी, जिला–हुगली, पश्चिम बंगाल

❑❑❑

लोकदेवता धर्मराज और उनके देवान

अंबिकेश कुमार मिश्र

प्राचीन काल में संस्कृति की दो धाराएँ विकसित हुईं, लोक और शिष्ट। मैथिली दोनों के मध्य की संस्कृति है यानी लोक–वेद की। यहाँ की संस्कृति भारत की समृद्धतम सांस्कृतिक इकाइयों में से एक है। मिथिला ने जो अपने ज्ञान और वैभव का परचम लहराया, सब इसी लोक की देन है। यहाँ की लोक–संस्कृति में लोक आस्थाओं तथा विश्वासों का विशिष्ट स्थान है। जादू–टोना, मृतकों की पूजा, लोकदेवता आदि संस्कृति की विरासत है। लोकआस्थाओं में पूज्य देवताओं को पूजने का अपना विधान और पूजा स्थान है।

यहाँ पौराणिक और वैदिक देवताओं के अलावा ग्रामदेवता या लोकदेवता (पूजित लोकनायक) का अपना क्षेत्रीय इतिहास है, जिसका संबंध उस पूरे क्षेत्र से होता है जहाँ लोकदेवता पूजे जाते हैं।

मिथिला में कुलदेवता, लोकदेवता, ग्रामदेवता का पूजा विधान शास्त्रसम्मत तथा लोकमत दोनों की परिधि में आता है। लोकसम्मत धारणाओं में जहाँ तक प्रकृति पूजा या सामाजिक नायकों के पूजने का विधान है वो काल खंडों में किसी आस्था या डर के कारण प्रारंभ हुआ और आज भी प्रचलन में है। जिसका कोई वैज्ञानिक कारण नहीं दिखता है।

मिथिला में देवता

मिथिला में लोक आस्था में अनेक वैदिक–अवैदिक देवता स्थापित हैं। जो अलग–अलग गुण, बोध, शक्ति और स्वभाव वाले हैं। कोई सौम्य तो कोई रौद्र। यहाँ तक कि एक ही देवता को कोई समाज रौद्र स्वभाव वाला मानकर पूजता है तो दूसरा उसी देवता को सौम्य स्वभाव वाला मानकर। देवताओं के गुण, शक्ति और स्वभाव के हिसाब से ही उनका पूजा विधान है। किसी को खीर–पूड़ी रुचती है तो किसी को रोट।

देवताओं का विभाजन अगर किया जाए तो उन्हें कुलदेवता, ग्रामदेवता, जातिदेवता, व्यवसाय देवता, नदी देवता के रूप में रखा जा सकता है। मृतात्माओं के रूप में लोकनायकों के पूजे जाने का भी विधान है जो जातिदेवता, ग्रामदेवता और कुलदेवता के रूप में समूचे मिथिला में पूजे जाते हैं। मिथिला में पूजित कुलदेवता के उद्‌भव तथा किसी विशेष कुल के द्‌वारा किसी विशेष कुलदेवताओं के पूजे जाने के कारण को समझना दुरूह कार्य है। यहाँ पूजित कुछ देवता वैदिक हैं तो कुछ का उल्लेख ना तो पुराण में मिलता है ना लोक साहित्य में। कुछ का उल्लेख लोकगाथाओं में है। जहाँ वे नायक के रूप में देखे जा सकते हैं। मिथिला में धर्मराज जो कि अधिसंख्य मैथिल घरों के कुलदेवता के रूप में पूजित हैं वैदिक माने जाते हैं। वैसे मिथिला में धर्मराज नाम से सिर्फ वैदिक धर्मराज नहीं पूजे जाते अपितु कुछ लोकनायकों को भी धर्मराज की उपाधि मिली है। लोकगाथाओं में धर्म के प्रति इनके त्याग की वो वजह दिखती है, जिसके कारण ये सभी लोकनायक

धर्मराज के रूप में पूजे जाते रहे हैं और रहेंगे। बहुत से ऐसे देवता भी हैं जिनके संदर्भ में कोई पुष्ट जानकारी नहीं मिल पाती।

मिथिला में प्रत्येक गाँव में ग्राम देवताओं को पूजे जाने का विधान है। इनकी पूजा दैनिक होती है और विशिष्ट वार्षिक पूजा भी होती है। पूजित देवताओं का अपना गह्वर होता है जहाँ निर्धारित तिथि को भाव का आयोजन देखा जा सकता है। भाव में देवता भगत के ऊपर आते हैं और लोगों का उपचार करते हैं। लोकआस्थाओं में गजब की ताकत का प्रमाण भगत के द्वारा बताए उपचारों के सफल परिणामों के रूप में देखा जा सकता है। ग्रामदेवता के रूप में ब्रह्म की पूजा की जाती है जिनका संबंध ब्रह्मा से नहीं होता बल्कि वह ग्राम से ही होता है। जहाँ ब्रह्म की पूजा होती है उसे मैथिली में डीहबार या डीह कहा जाता है। सभी देवताओं को पूजे जाने के लिए एक विशिष्ट पूर्वनिर्धारित स्थान होता है जहाँ देवताओं को दैनिक या तय दिन के आधार पर पूजा जाता है। जैसे ग्रामदेवताओं की पूजा गह्वरों, मंदिरों या किसी खुले स्थान पर पाकरी, आँवला, पीपल, बरगद, अशोक आदि के पेड़ों के नीचे होती है। कुलदेवता या गृहदेवता की पूजा रसोईघर में या पूजाघर में पीड़ी या सीरा बनाकर की जाती है। सीरा बनाने के लिए पवित्र नदियों के मिट्टी का प्रयोग शास्त्रों में निर्दिष्ट है। मिथिला के समाज में गोसाउनी घर, रसोई घर के साथ ही होता है। वैसे तो कुलदेवताओं की पूजा दैनिक होती है, लेकिन कुछ की पूजा तय दिनों के हिसाब से। यहाँ हिंदू परिवारों या मंदिरों में कुलदेवता के संग देवताओं में ना सिर्फ हिंदू बल्कि मुस्लिम संतों, नायकों को भी पूजा जाता है जिसमें बालपीर, सैयद, मीरा साहब, मीरा सुल्तान आदि शामिल हैं। ये कब हुए और कब से पूजे जाने लगे इसका कोई ठोस सबूत नहीं पेश किया जा सकता।

कुल देवता की अवधारणा

मिथिला के सभी जाति–वर्गों के अपने कुल देवता हैं। यहाँ कुलदेवता या देवी के रूप में ज्वालामुखी, दक्षिणेश्वरी काली, शीतला, काली, चित्रसुंदरी, अन्नपूर्णा, सोखा, उमा, चामुंडा, तारा, ललिता, नारायणी, भद्रकाली, धर्मराज, नृसिंह कारिख आदि देवताओं को पूजा जाता है। कुलदवेताओं को पूजे जाने का कारण अपने कुल को संगठित करना और जोड़ना है। प्राचीन समय में जब लोग पलायन करते थे तो आपसी संबंध एवं पहचान के लिए अपने लिए अपने परिवार के लोगों में एक देवता का निर्धारण करते थे, जो बिछड़ने के बाद भी पहचान में सहासक होता था। पूजे जाने वाले देवताओं को आधार बनाकर लोग अपने वंश की पहचान कर सकते थे, ऐसा विद्वानों का मानना है। मिथिला लोक के अध्ययन में ये आसानी से दिखती है कि यहाँ के लोग शिव के ऊपर शक्ति को प्राथमिकता देते हैं। और यही कारण है कि यहाँ सभी लोगों के कुलदेवता नहीं होते, लेकिन कुलदेवियाँ सभी की होती हैं। मिथिला में शक्ति की प्रधानता ही वह कारण है कि यहाँ के लोग अपने देवताओं के पूजने के निर्धारित गृह को गोसाउनी घर कहते हैं।

यहाँ अवैदिक देवताओं के पूजने के पीछे सिर्फ आस्था नहीं अपितु एक डर भी कारण है। शीतला को लोग बीमारी से बचाने वाली देवी के रूप में पूजते हैं तथा नदियों को शायद बाढ़ की आक्रमकता के डर से पूजे जाने का विधान हो! नायकों में सलहेस, कारिख, लोरिक, मीरा आदि पूजनीय हैं। जाति देवताओं के रूप में वीर–लोरिक दीना–भाद्री, छेछन महराज, मोतीदाई, गांगो देवी , दुलरा दयाल, कृष्णा और हाथी सुबरन, अमर बाबा, गरीब बाबा, लालवन बाबा, ससिया महराज अन्यान्य देवताओं की पूजा सभी जातियों में होती है। यहाँ सभी देवता सिर्फ इसलिए पूजनीय हैं क्योंकि वे देवता हैं।

मिथिला में धर्मराज–

मिथिला में पूजित धर्मराज के संबंध में सूचनाओं को एकत्रित करने के क्रम में धर्मराज खुद एक उलझे हुए देवता बनकर उभरते हैं, जिनका संबंध लोक और वेद दोनों से है। जहाँ कई विद्वान इन्हें वैदिक यम मानते हैं तो कई लोक देवता के रूप में देखते हैं। यह कह पाना दुरूह है कि

धर्मराज के रूप में पूजित देवता वैदिक यम नही हैं। वैसे मिथिला लोकसाहित्य के अध्येता महेंद्र नारायण राम की माने तो मिथिला में कारिख पंजियार को भी धर्मराज के रूप में पूजा जाता है तथा इनके गह्वर को धर्म का गह्वर कहा जाता है। लेखक का यह मत लोक अध्ययन के आधार पर ही है। इस तरह मिथिला में लोक देवता के रूप में कारिख भी पूजनीय हैं इसमें कोई संशय नहीं। शंकरदेव झा ने अपने लोक अध्ययन के आधार पर कहा कि अपने यहाँ धर्मराज के रूप में वैदिक यम के अलावा हनुमान, कारिख, ज्योति के साथ–साथ अन्य लोकदेवताओं को भी पूजे जाने का विधान आदिम से है। महेंद्र नारायण राम की माने तो मिथिला में धर्मराज कोई एक देवता मात्र नहीं बल्कि एक संप्रदाय अभिहित है जिसके लोक नायकों और देवताओं को भी धर्मराज उपमान के साथ पूजा जाता रहा है। मिथिला शोध संस्थान के एक शोध में डॉ. अवनींद्र कुमार झा ने मिथिला में पूजित धर्मराज को वैदिक माना है।

धर्मराज मिथिला के अलावा भी संपूर्ण भारत में पूजे जाते हैं और इनकी लोककथाएँ सभी जगह सुनाई जाती हैं। राजस्थान में धर्मराज और पोम्पा बाई की कथा प्रचलित है। वैसे तो धर्मराज सभी जगह पूजित हैं लेकिन जो मान–सम्मान एक भाई को अपनी बहन के यहाँ मिलता है वही सम्मान धर्मराज को मिथिला में मिलता है। धर्मराज ना सिर्फ कुलदेवताओं के रूप में मान्य हैं, बल्कि ये त्योहारों में भी अपने को काबिज किए हुए हैं। यही कारण है कि यहाँ यम द्वितीया को भ्रातु द्वितीया के रूप में मनाया जाता है। इसी दिन यम अपनी बहन यमी से मिलने उसके घर गए थे और खुश होकर वरदान में उन्होंने यमुना की बात मानते हुए कहा कि "जो व्यक्ति यम द्वितीया को यमुना में स्नान कर उसी घाट पर 'फरे' बनाकर खाए उसकी आत्मा को मृत्यु के बाद यमराज कोई तकलीफ नहीं देंगे।" इस कहानी का उल्लेख भविष्य महापुराण और पद्म पुराण में भी है।

मिथिला के क्षेत्रों में जब भ्रातु द्वितीया मनाते हैं तो बहने निम्न श्लोक पढ़ती हैं–

यमुना नोतलनी यम के, हम नोतै छी भाई के जहिना यमुना जल बढ़ए तहिना भायक ओरदा बढ़ए।

(अर्थात्–यमुना ने जैसे यम को निमंत्रित किया वैसे ही मैंने अपने भाई को निमंत्रित किया है, मेरे भाई की आयु यमुना के जल के बढ़ते अनुपात में बढ़े।)

यम और यमी के बहुत संदर्भ पुराणों में मिलते हैं। पुराणों की माने तो यम और यमी शनि की तरह ही सूर्य की संतान हैं। जहाँ शनि जीवित अवस्था में मनुष्यों के बुरे कर्मों का दंड देते हैं वहीं यम मृत्यु के बाद। 'यमो यच्छतीत सतः' अर्थात् यम को यम इसीलिए कहा जाता है क्योंकि यह प्राणियों को नियंत्रित करते हैं। आत्मा की शुद्धिकरण कर्म का संपादन धर्मराज के हाथों ही होता है। निरू, चंद्रमणि भाष्य(10/11) के अनुसार यम प्राण को कहते हैं क्योंकि यह जीवन प्रदान करता है। यमराज को धर्मराज इसीलिए कहा जाता है क्योंकि वो अपने सहायक लिपिक चित्रगुप्त और पत्नी धुमोरना की सहायता से धर्म का संचालन करते हैं। धर्मराज को धर्मराज क्यों कहा जाता है इसके संदर्भ में ऋग्वेद के दसवें मंडल के यम–यमी सूक्त का संदर्भ लेते हुए मन्मथनाथ गुप्त ने अपनी पुस्तक (स्त्री पुरुष संबंधों का रोमांचकारी इतिहास, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2005, पृष्ठ 52) में कहा है कि यम ने अपनी बहन यमी का प्रणय निवेदन ठुकरा कर स्थापित लोकधर्म का पालन किया। अतः वे धर्मराज कहलाए।

यम और चौदह सहायक देवता

जैसाकि धर्मराज के संबंध में पहले से पता है कि ये लोक से भी हैं और वेद से भी। लेकिन हम दोनों को एक साथ मिला लेते हैं ताकि समझने में कोई दुविधा ना हो। अब हमें यहाँ उन 13 देवताओं के बारे में जानना है जो कुलदेवताओं के सांग हैं। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि यह सभी सांग देवता बदलते रहते हैं। कहीं कारिख धर्मराज के रूप में पूजे जाते हैं तो कहीं धर्मराज के सांग देवताओं में। मिथिला के सभी परिवारों में 14 देवान की पूजा होती है जहाँ एक मुख्य देवता या

कुलदेवता होता हैं और अन्य 13 सहायक। जैसाकि पहले ही मैंने कहा कि पूजित सहायक देवता परिवर्तनीय हैं और ये परिवर्तन गाँव, समाज, जाति, कुलदेवता और कुल पर निर्भर करता है। मिथिला लोक के अध्येता शंकरदेव झा ने चौदह देवान को सूचीबद्ध किया है, जिसमें उन्होंने कुलदेवता के अलावा– गहिल, वामति देवी भगवती, फेकूराम बालपीर, मीरा, कालिका, हनुमान, भैरव, विषहरा, धर्मराज, साहेब खबास, गोविंद, सोखा संभुनाथ एवं जलपा (ज्वालमुखी) को रखा है। वहीं महेंद्र नारायण राम ने यह कहते हुए सहायक देवान को सूचीबद्ध किया कि यह परिवर्तित होते रहते हैं। उन्होंने सूची में सोखा, गोरिल अन्हेरबाट गोआर, गहिल, बामति, देवी दुर्गा, जालपा, दीनानाथ, मीशा, गंगा और अन्य को रखा। यहाँ एक बात बताना आवश्यक है कि मिथिला लोकगाथाओं में सूर्य को भी धर्मराज के रूप में स्थापित किया गया है। और धर्मराज के रूप में पूजित कारिख और उनके पिता और पुत्र सभी सूर्य के अनुयायी हैं। ऐसा लोकगाथाओं में दिखता है। मधुबनी जिला के ननौर निवासी दीनानाथ झा 'दीन' ने चौदह देवान की एक अपूर्ण सूची दी, जिसमें उन्होंने कारी, मीरा, दतुला, बालापीर, लखतलाल पांडे, ज्योति पंजियार, शीतला तथा अमीक माय का नाम गिनाया। अमीक माय के संबंध में अभी तक मुझे कोई जानकारी नहीं मिल पाई। कारी को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि ये खबास हुए हैं उनके यहाँ भाव में कारी खबास का आह्वान होता है। व्यक्तिगत मेरा मानना है कि जहाँ लखतलाल पांडे पूजे जाते हैं वहाँ जलपा भी पूजी जाएँगी। उन्होंने कहा कि अमीक माय और बालापीर की पूजा घर के बाहर अलग से होती है और उनका भोग भी अलग से लगता है। कहीं–कहीं पंच भगिनी विषहरा, त्रिपुरसुंदरी को भी कुलदेवी की सहायक देवी के रूप में पूजा जाता है। कहीं–कहीं नृसिंह भी पूजे जाते हैं।

मिथिला में धर्मराज की पूजा की तिथि एवं विधि

पूजा– मिथिला का हरेक समाज अपने पूर्वजों की मान्यतानुसार पूर्व संस्कारों का निर्वहन करते हुए कुलदेवता को पूजते हैं। कुलदेवता में धर्मराज की पूजा कहीं नित्य होती है तो कहीं सप्ताह के तय दिनों में। वैसे ज्ञात सूचनाओं के आधार पर ये लिखा जा सकता है कि मिथिला में ज्वालामुखी और धर्मराज की पूजा सिर्फ पुरुष ही करते हैं (अपवाद भी हो सकता है)। कहीं–कहीं तो अशौच में यमराज को पूजने का विधान है। धर्मराज की दैनिक पूजा के साथ–साथ वार्षिक पूजा का विधान है, जो यहाँ घड़ी के नाम से लोक प्रचलित है। लोकमतों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर घड़ी के संदर्भ में भी अनेक मत दृष्टिगोचर होते हैं। कहीं–कहीं यह वर्ष में दो बार मनाया जाता है तो कहीं–कहीं वार्षिक। कहीं–कहीं नहीं भी मनाया जाता है। किसी–किसी गाँव में घड़ी माघ के वसंत पंचमी के बाद बुद्धवार को और सावन के नागपंचमी के बाद बुद्धवार को मनाया जाता है।

भोग– जहाँ तक नैवेद्य की बात है धर्मराज को लड्डू, खाजा और अन्य मिठाई के साथ–साथ कटहल, दलिपुड़ी, रोट, खीर आदि का भोग लगाया जाता है। मैथिली मचान के माध्यम से शैलेंद्र मोहन झा ने बताया कि धर्मराज को लगाए भोग गह्वर के बाहर नहीं निकाले जाते हैं। परिवारों के खा लेने के बाद बचे हुए प्रसाद को उसी घर के किसी कोने में मिट्टी के नीचे दबा दिया जाता है। धर्मराज की पूजा कहीं–कहीं सामूहिक होती है तो कहीं–कहीं लोग व्यक्तिगत खीड़ा बनाकर उन्हें पूजते हैं। कहीं–कहीं धर्मराज की पूजा में लोग काँटों पर चलते हैं तथा अन्य माध्यमों से खुद को शारीरिक दंड देते हैं। धर्मराज की पूजा का ये विधान पूजित धर्मराज को गरूड़ पुराण के यमराज के साथ जोड़ता है।

भित्ति चित्रों में धर्मराज– मिथिला में धर्मराज के गह्वरों में भित्ति पर धर्मराज को चित्रित किया जाता है कहीं वे सफेद रंगों से बनाए जाते हैं तो कहीं लाल या अन्य रंगों से। चित्र में उन्हें हाथ में दंड और भैंसा के साथ दिखाया जाता है। जो कहीं ना कहीं यम से इन्हें जोड़ता है। धर्मराज की पूजा के दौरान उनके निम्मित वस्त्रों से कहीं–कहीं उनके प्रतीकात्मक भित्ति चित्राों को ढक दिया

जाता है, जिसका अर्थ वस्त्र को धर्मराज के ऊपर चढ़ाने से है।

मैथिली लोकगीतों में धर्मराज– अन्य प्राँतों की तरह मिथिला के लोकगीतों में धर्मराज को गाया जाता है और क्यों ना गाया जाए वे कुलदेवता भी तो हैं। जैसाकि सभी को ज्ञात होगा कि लोकगीतों के अध्ययन से बहुत सी बातें सामने निकलकर आती हैं और यह एक तरह का सामाजिक इतिहास ही होता है क्योंकि यह वर्षों से एक दूसरे के कंठों में सफर करते हुए आते रहते हैं।

मैथिली में धर्मराज का एक गीत है–

जाहि दिन धर्म जनम भेल गोसा,

सोने ठोपे बरिसल मेघ।
साहेब एक जग जनमल।।1
दीप जोहइते बातीयों ने पाओल गोसा,

मोती मानिक भए गेल इजोत।
साहेब एक जग जनमल।।2
हसुंआ जोहइते पासिने ने पाओल गोसा,
सोने छूड़ी छीलहनार।
साहेब एक जग जनमल।।3
मुनहर धर्म जनम लेल गोसा,
बसहर छीलह नार।
साहेब एक जग जनमल।।4
तोहे आमा बैसल सोइरि साठि,
आमा हमें धर्म टेकब संसार।
साहेब एक जग जनमल।।5
दूरे रहू, दूरे रहू रे दगरीन,
दगरीन मोहि जुनि हे छीलहनार।
साहेब एक जग जनमल।।6
अढ़ाई हे दिन केर काबू धर्मराज गोसा,
मीरा मांगए सबुज कमान।
साहेब एक जग जनमल।।7
नार छीलिए छीलि गोसा,
पाग बान्हू गोसा पुरइन छत्र धराय
साहेब एक जग जनमल।।8

इस गीत में धर्मराज के जन्म को संदर्भित किया गया है कि कैसे उनके जन्म से सभी कुछ सही होने लगा। इसमें धर्मराज के सहायक मीरा का भी प्रसंग आया है जहाँ कहा गया है कि अढ़ाई दिन के गोसाई धर्मराज से उनके सहायक चौदह देव में से एक मीरा उनसे तीर–कमान माँग रहे हैं। अगर ये मीरा सुलतान हैं तो यह गीत कारिख से भी जुड़ सकता है।

एक दूसरा गीत है–

तोहरे भरोसे धर्मा इहो पथ चढ़लहूँ
सेहो पंथ भेल कुपंथ हो
हो धर्मा सेहो पंथ भेल कुपंथ

कोन नैया उगे हो धर्मा?
कोने नैया डूबत?
हो धर्मा कोने नैया उतरब पार हो?

धर्मक नैया उगे हो धर्मा
पापक नैया डूबे।
हो साचक नैया उतरब पार हो
हो धर्मा साचक नैया उतरब पार हो।

कथिक नैया हो धर्मा?
कथि के खबकरुआरि?
कोने विधि उतरव पार हो धर्मा?
हो धर्मा कोने विधि उतरव पार हो?

चानन के चेबी–चेबी नैया बनाएन
हौ धर्मा सांचे के खबकरुआरि।
ताहि नैया चढ़ींएता मोर धर्मबाबू
हो धर्मा आबि जेतए चौदहो देवान हो।

भनहि विद्यापति सुनु बाबू धर्मा
हो धर्मा सदए राखव रक्ष्यापाला हौं–2।।

इस गीत के गायन में लेखन का श्रेय विद्यापति को दिया गया है। ये विद्यापति ने लिखा है या किसी और ने नहीं कहा जा सकता लेकिन महिलाएँ इसे उन्हीं के नाम से गाती हैं। उपर्युक्त गीत में कहा गया है कि धर्म के मार्ग पर चलते हुए कितनी भी बाधाएँ आएँ लेकिन हमें सदा वही मार्ग चुनना चाहिए।

चौदह देवान – जैसाकि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि मिथिला में मुख्य कुलदेवता के अलावा अन्य तेरह देवताओं की पूजा चौदह देवान के रूप में की जाती है। चौदह देवान को सभी लोग पूजते हैं या नहीं यह भी एक बृहद् शोध का विषय है। चौदह देवान गाँव समाज के आधार पर बदलते रहते हैं कुछ विद्वानों की सूची में निम्नलिखित देवताओं को चौदह देवान के रूप में पूजनीय दिखाया गया है। इसमें कुछ वैदिक हैं, पौराणिक हैं और कुछ लोकगाथाओं से सबंधित हैं तो कुछ का कोई श्रोत नहीं दिखता–1. फेकूराम 2. कालिका 3. गहिल 4. विषहरा 5. ज्वालामुखी (जलपा) 6. देवी धुमोरना (धर्मराज की पत्नी) 7. देवी दुर्गा 8. ब्रह्म 9. मीरा साहब 10. बालापीर 11. अमीक माय 12. हनुमान 13. धर्मराज 14. कारिख पंजियार (लोक धर्मराज) 15. ज्योति पंजियार 16. सोखा शंभुनाथ 17. भवानी 18. भैरव 19. गोविंद 20. वामती 21. साहेब खबास 22. कारी 23. अन्हेरबाट गोआर 24. गोरिल 25. दीनानाथ 26. नरसिंह और अन्य।

जैसाकि आप सभी जानते हैं चौदह देवान में कारिख पंजियार की लोकगाथा सुनने को मिलती है और ये धर्मराज के रूप में भी पूजे जाते हैं। इनके गह्वर को धर्म का गह्वर कहा जाता है। लोकगाथा में कारिख सूर्योपासक हैं, ना सिर्फ कारिख बल्कि उनके पिता ज्योति पंजियार और पुत्र कामदास भी सूर्योपासक ही हैं। महेंद्र नारायण रसम ने अपनी पुस्तक (मैथिली लोकमहागाथा कारिख पंजियार) में इन्हें परोल चौरका माना है। यह स्थान जनकपुर से प्रायः 10–15 किलोमीटर दूर है। जहाँ अभी भी ज्योति और कारिख का मूल गह्वर है। यह स्थल सूरजाहा संप्रदाय को मानने वाले लोगों के लिए धर्म स्थल के रूप में मान्य है। नेपाल का ही उसराडीह परोल क्षेत्र का दूसरा प्रमुख स्थान है जहाँ ब्राह्मण वेशी इंद्र ने ज्योति का घंमड तोड़ा था और श्राप भी दिया था ज्योति 12 वर्ष तक के लिए दीब्रा भीड़ बन गए थे। पीछे तेजस्वी पुत्र कारिख ने केदली वन जाकर श्रापित पिता का उद्धार किया था। प्रफुल्ल कुमार सिंह 'मौन' "मैथिली लोकगाथाक नेपालीय संदर्भःस्थिति ओ संरक्षण" में लिखा है कि केदली वन प्रयाण करते समय माँ लिकमावती से इस बनवास की पुष्टि की है– "हमारा लिखल जे अम्मा केदली बनवास"।

सैराधार जो वर्तमान में नेपाल में पड़ता है, वहीं स्नान कर इसी नदी के किनारे कारिख ने सूर्य का गह्वर बनाया था, जिसे बली मोहम्मद के पुत्र मीरा सुल्तान ने नष्ट–भ्रष्ट कर दिया। लेकिन कारिख ने अपने पौरुष के प्रभाव से इसे पुनः स्थापित कर दिया। फलतः मीरा सुलतान कारिख के अनुयायी बन गए। यह धार्मिक सद्भावना का विलक्षण उदाहरण है। मीरा सुलतान को दिकपाल भी कहा जाता है।

कारिख पंजियार की गाथा में राजा गोनर की राजधानी, सेंधुबन पहाड़, अंगुलीदती नदी, नारायणपुर के बैजू कुम्हार, उदयपुर के गोविंद पंजियार, विजयपुर, कालीदह आदि का प्रसंग आया है। जो नेपाल और बिहार के इर्द–गिर्द फैले हैं। सेंधुवन पहाड़ नेपाल में है जहाँ अन्हेरबाट गोआर गाय पाला करते थे। अन्हेरबाट गोआर भी कहीं–कहीं चौदह देवान में पूजे जाते हैं। अन्हेरबाट गोआर कारिख गाथा के पात्र हैं– "सेंधुवन पहाड़ में बसैयए अन्हेरबाट गुअरबा ओहो चरबै सोना लाख गाय"

गाथा में ज्योति की माँ का नाम लिकमावती है और पिता का नाम निर्मल पंजियार। पत्नी थी अमरावती। ये इंदुमाली के शिष्य थे जो सूर्य के सेवक थे। ज्योति की माँ ने एक शर्त के अंतर्गत उन्हें सूर्य को सौंप दिया था। पीछे ज्योति देवताओं की अवहेलना कर उसरडीह जोतने लगे। दीनानाथ ने समझाने का प्रायास किया और उनके ना मानने पर श्राप दे दिया।

कुष्ट रोग लेकर ज्योति भटकने लगे इसी क्रम में अपने गंगिया डोम के यहाँ गए तो उसके सात सौ सूअर मर गए। चंपावती (बहन) के यहाँ गए तो उसका बेटा मर गया। हलुआइ मित्र उदयपुर निवासी गोविंद के यहाँ गए तो उसका भी बेटा स्वर्ग सिधार गया। थककर वह केदली वन चले गए और फिर पुत्र के हाथों उनका उद्धार हुआ। लोकगाथाओं में सूर्य की उपस्थिति का प्रभाव और

धर्म के रास्ते पर चलने की सीख ही इस गाथा का उत्स है। लोकगाथाओं में अमरीतावती कारिख पंजियार की पत्नी के रूप में दिखती हैं।

वैसे चौदह देवान में बालापीर ऐसे पात्र हैं जिनके संदर्भ में लोक साहित्य या गाथाओं में कुछ सुनने पढ़ने को नहीं मिलता। वैसे इनके संदर्भ में बातचीत के क्रम में शंकरदेव झा ने बताया था कि ये दुर्गा के सेवक थे और इन्होंने किसी राजा के प्रकोप से लाखों गायों और स्त्रियों को बचाया था। इन्हें कहीं–कहीं सैयद भी कहा जाता है। एक पुस्तक 'कनक्वेस्ट एंड कम्युनिटी : दी आफ्टर लाइफ ऑफ़ वारियर सेंट गाज़ी मियां' (लेखक : शाहिद अमीन) में बालापीर के संदर्भ में कुछ कहा गया है। इस पुस्तक में यह माना गया है कि उत्तर भारत में जो बालापीर हैं वे गाजी मियां ही हैं। इस पुस्तक में उन्हें बहराइच (उत्तर प्रदेश) का बताया गया है साथ ही कहा गया है कि ये गो रक्षक थे तथा ग्वालों की स्त्रियों और गाय को किसी दुष्ट राजा से इन्होंने बचाया था। एक बार शिकार के क्रम में हिंदू राजा नुरचंद/लोरचंद की त्याज्य पत्नी ने इन्हें और इनके साथ पंच पीर को भोजनपान करवाया था। जिसका नाम अमीना सती बताया गया है। पुस्तक में कहा गया है कि इन्हें नेपाल का क्षेत्र पंसद था।

चौदह देवान में शामिल लख़तलाल पांडे के संबंध में एक किवदंती है कि ये लगमा–कसरर के आस–पास के किसी गाँव के थे। पारिवारिक कलह से तंग हो तंज की वजह से घर से बाहर निकले और दैवीय प्रेरणा से ज्वालामुखी को लाने का विचार कर नग्रकोटी (हिमाचल) चले गए। जहाँ भैरव की मदद से ज्वालामुखी का पता मिला। बदले में भैरव ने शर्त मांगी की ज्वालामुखी के साथ उन्हें भी पूजा जाए। लखत ने इस बात को स्वीकार कर लिया और दैवयोग से ये जलपा को लगमा–कसरर ले आए। जहाँ से ये पूरे मिथिला में पूजनीय हुईं।

चौदह देवान में जो ब्रह्म हैं। उनका संबंध ग्राम से ही होता है। हनुमान, धर्मराज, कालिका, दुर्गा, दीनानाथ, गंगा, भैरव, विषहरा, देवी भवानी, नृसिंह आदि देवता लोकप्रचलित हैं। सोखा, गोरिल, गोविंद सभी कारिख पंजियार लोकगाथा के पात्र हैं। इन्होंने धर्म का निर्वहन किया, अतः पूजनीय हैं। वामती, मीरा साहब, फेकूराम भी लोकगाथा के नायक हैं।

फेकूराम के संबंध में जो गाथा है उसमें इनका जन्म कानू कुल में हुआ तथा ये सात सौ बाघों से लड़ते हुए मारे गए। प्रचलित गाथा के अनुसार इनकी चिता स्वतः जल उठी और उसमें इनके मित्र दयाराम और मनसाराम (तेलियों के जाति देवता) ने तथा इनकी पत्नी सती सोनमती ने आत्मदाह कर लिया।

मीरा साहब की लोकगाथा में मीरा योद्धा और सूबेदार थे तथा औलिया वीर फौदाई के सेवक थे। उनके पास एक घोड़ा था 'हंसराज' तथा एक चतुर पत्नी थी 'कना' जो जयपुर के राजा मियां झमझम की पुत्री थी। लोकगाथा में इनके पूर्वज कई पुस्तों से नुनजागढ़ की लड़ाई में हारते और अपने प्राण गंवाते आ रहे थे। मक्का के औलिया वीर ने इन्हें आर्शीवाद दिया था कि ये युद्ध जीतेंगे। लोकगाथा में इन्होंने अपने पूर्वजों का बदला लेने के लिए 52000 सैनिकों के बल पर नुनजागढ़ को जीता और अपने पूर्वजों का बदला लिया। इनकी लोकगाथा बहुत ही रोचक और दिलचस्प है। जहाँ विलाप, जादू, छल–प्रपंच, विनय रौब, स्नेह सब कुछ है। गाथा में अनेक जगह पर चर्चा हुई है– डीलरीगढ़ जहाँ के सूबेदार खुद मीरा साहब थे। ये क्षेत्र 14 कोस तक फैला था। तेलियागढ़ जहाँ के संरक्षक तेली अगरमस्त थे जिसकी पत्नी जादू जानती थी। मीरा ने यहाँ भी लड़ाई लड़ी थी। दधियागढ़, कासिमपुर बाजार, जयपुर लाहगढ़ गोरबगढ़, सुजागढ़ आदि जगह कथा में आए हैं। दधियागढ़, लाहगढ़, सुजागढ़ और गोबरगढ़ इन सभी जगह मीरा ने युद्ध किया और नुनजागढ़ पर विजय प्राप्त की। दक्षिण–पूर्व चंपारण में मीरा दुसाध जाति के कुलदेवता के रूप में पूजे जाते हैं। इनकी पूजा में इन्हें 10 जोड़े रोटी का भोग लगाया जाता है। मिथिला की लोकगाथा के अलावा भी बहुत सारी गाथाएँ है जिनका संबंध मीरा साहब से है लेकिन अभी के लिए बस इतना ही।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कनक्वेस्ट एंड कम्युनिटी : दी आफ्टर लाइफ ऑफ़ वारियर सेंट गाज़ी मियां, शाहिद अमीन।

2. पंचलोक देवता, लेखक : महेंद्र नारायण राम, नवारंभ प्रकाशन।

3. मिथिला की लोक–संस्कृति स्वरूप एवं सौंदर्य, लेखक : महेंद्र नारायण राम, नवारंभ प्रकाशन।

4. मैथिली लोक संस्कृति, संपादक–रामभरोस कपडि 'भ्रमर', प्रकाशन–जनकपुर ललितकला प्रतिष्ठान, जनकपुर।

5. मिथिला शोध संस्थान, शोध पत्रिका, संपादक– प्रफुल्ल कुमार सिंह 'मौन', प्रकाशक– मिथिला शोध संस्थान, दरभंगा।

6. दी पॉपुलर रिलिजन एंड फोक–लोर ऑफ़ नार्थन इंडिया, डब्लू क्रुक प्रकाशन–अर्चिबल्ड कांस्टेबल एंड को., 1896।

– ग्राम–सतघरा, मधुबनी, बिहार–847224

❑❑❑

'नो' मीन्स 'नो'

डॉ. संध्या वात्स्यायन

कहा जाता है कि यदि स्त्रियाँ आर्थिक रूप से मज़बूत होंगी तो स्वयं के फैसले लेने में सक्षम होंगी। सीमोन द बोउआर ने 'द सेंकेंड सेक्स' में लिखा है– "औरत की पहली लड़ाई अर्थ की दुनिया से शुरू होती है।"[1] वहीं प्रभा खेतान के अनुसार – "पैसे कमाने से स्त्री निर्णय लेना सीखती है और निर्णय की क्षमता उसके संघर्ष को मजबूत करती है।"[2] तो दूसरी तरफ महादेवी वर्मा का यह कहना है– "समाज ने स्त्री के संबंध में अर्थ का ऐसा विषम विभाजन किया है कि साधारण श्रमजीवी वर्ग से लेकर संपन्न वर्ग की स्त्रियों तक की स्थिति दयनीय ही कही जाने योग्य है।"[3] एक तरह से यह कहा जा सकता है कि बाजार ने एक तरफ स्त्री को अपने पैरों पर खड़ा होना सिखाया तो दूसरी तरफ उसके लिए नए–नए बंधन बनाता गया। जिसे जाने–अनजाने स्त्री स्वीकारते चली जा रही है। वैश्वीकरण ने हाशिए पर खड़े लोगों को केंद्र में ला दिया। स्त्री उसी केंद्र का हिस्सा है। तमाम तरह की आत्मनिर्भरता के बावजूद स्त्री के प्रति नज़रिया नहीं बदला। बाज़ार ने स्त्री मुक्ति का ऐसा छद्म पैदा किया जिसका अंतिम लक्ष्य 'उपभोग' है। 'उपभोग' उन्हें पंगु बना रहा है और कई नई तरह की चुनौतियाँ उनके सामने ला रहा है। यह मुक्ति मन की मुक्ति से ज्यादा 'देह मुक्ति से जुड़ी है। देह पर अधिकार निस्संदेह किसी भी स्वतंत्र व्यक्ति का मौलिक अधिकार है, जिसे किसी को छीनने का हक नहीं है। चाहे देह पुरुष की हो या स्त्री की। मुश्किल यह है कि देह की चुनौतियाँ सबसे अधिक स्त्री के सामने ही हैं। उसकी प्राकृतिक बनावट ही उसकी सबसे बड़ी चुनौती है। यह देह 'सृजन' करती है और बेहद सुंदर दिखती है। संभवतः ब्रह्मांड की सर्वाधिक सुंदर रचना कह सकते हैं। पर सुंदरता का यह मानदंड कब 'सेक्स' या 'देह उपभोग' में बदल गया, समझ से परे है। स्तनपान कराती स्त्री सुंदर है या 'सेक्स सामग्री' यह कौन तय करेगा। मुझे तो लगता है कि स्तनपान कराती स्त्री का चित्र सबसे सुंदर माना जाता है। पर वहाँ भी कई दृष्टियाँ 'सेक्स सामग्री' को ढूँढ़ लेती हैं। राजकपूर 'राम तेरी गंगा मैली' में इसी सुंदरता और सेक्स सामग्री के बीच के अंतर को बखूबी प्रस्तुत करते हैं। आप राम तेरी गंगा मैली की नायिका या माँ का स्तनपान कराते बच्चे का चित्र ध्यान करें तो पाएँगे कि वह कितना मार्मिक एवं सुखद दृश्य है, परंतु अगले ही क्षण वहाँ कुछ दृष्टियाँ उस दृश्य में कुछ अलग ही ढूँढ़ लेती हैं। यह अंतर क्यों और कैसे आया! और कमाल की बात यह है कि इस सुंदरता की परख करने वाला पुरुष है और उसमें सेक्स ढूँढ़ने वाला भी पुरुष। स्त्री के प्रति पुरुष की सुंदरता का बोध रिश्तों को भी तार–तार कर देता है। पुरुष की यही दृष्टि स्त्री को मुक्त भी करती है और उसे प्रताड़ित भी करती है। यह प्रताड़ना इतनी अधिक है कि संभवतः स्त्री मुक्ति की दिशा कहीं–कहीं

पुरुष विरोध में चली जाती है। यह स्त्री विमर्श का एकांगी पक्ष है, परंतु उसका कारण स्त्री–प्रताड़ना का लंबा इतिहास है। साहित्य का एक बड़ा हिस्सा स्त्री को 'देह' के रूप में दिखाता रहा है। वात्स्यायन का 'कामसूत्र' – जो कि अधिकांश हिंदी साहित्य में इसी भाव–भंगिमाओं एवं चेष्टाओं का आधार है – से लेकर लोक समाज में प्रचलित साहित्य तक स्त्री का रूप बहुत गरिमामय नहीं रहा। कामसूत्र में कई जगह स्त्री को महज़ पुरुष को आकर्षित करने का ज़रिया ही बनाया गया है। बलात्कार, यौन–शोषण के जितने भी केसेज हैं उनमें अधिकांश आरोपी जान–पहचान के ही होते हैं। अब कौन अपना है, कौन पराया, यह स्त्री कैसे समझे। जिस मित्र के साथ वह विश्वास से पार्टी मनाने जाती है, वह कितना भरोसेमंद है! 'पिंक' फिल्म इसी भरोसे और स्त्री–देह प्रताड़ना के इसी पहलू को उजागर करती है। यह बताती है कि औरत की 'नो' का अर्थ है 'नो'। यह उस धारणा पर चोट करती है जिसमें माना जाता रहा है कि स्त्री की 'ना' में भी 'हाँ' है। यह फिल्म यह भी बताती है कि 'धन' या 'अर्थ' ही विकास का आधार नहीं है। अमीर अच्छा हो आवश्यक नहीं, गरीब बुरा हो जरूरी नहीं। मन की अच्छाई धन से नहीं तौली जाती। यह फिल्म पुरुष की सुंदरता का बोध तथा सेक्स सामग्री के बीच की दृष्टि को पारिभाषित करती है। स्त्री केंद्र में है, प्रताड़ित है, परंतु उस प्रताड़ना के विरुद्ध खड़ी होती है– यही स्त्री मुक्ति का सच्चा रास्ता है। एक पुरुष दीपक सहगल समाज के अन्य उन पुरुषों से वैचारिक लड़ाई लड़ता है जो स्त्री को महज़ उपभोग मानकर चलते हैं। यह लड़ाई प्रताड़ित स्त्री मीनल अरोड़ा के सहास के बिना संभव नहीं हैं। पुरुष स्त्री का विरोधी नहीं है और न ही स्त्री पुरुष की विरोधी–इस फिल्म का उद्देश्य यही है। यह फिल्म पुरुष मानसिकता के साथ–साथ मीनल जैसी स्त्री के प्रति प्रशासन का नज़रिया तथा न्यायपालिका की सीमाओं को भी दिखाती है।

कई देशों में 'पिंक' शब्द 'गाली' के लिए इस्तेमाल होता है। इस शब्द का इस्तेमाल वेश्या के संदर्भ में किया गया है, जिसे खरीदकर उसकी इच्छा–अनिच्छा की परवाह किए बगैर उस पर शारीरिक–शोषण किया जाए। यह एक तरह की यौन हिंसा है। यह फिल्म उस पुरुष नज़रिए का विरोध करती है– जिसका नज़रिया स्त्री को केवल और केवल 'योनि' के रूप में देखता है। सिमोन द बोउआर की 'स्त्री–उपेक्षिता' पढ़ें तो पाएँगे कि स्त्री के प्रति यौन हिंसा का कितना भयानक इतिहास रहा है। योनि–मतलब–सम्मान, योनि मतलब –संपत्ति। पारिवारिक झगड़े हों, सांप्रदायिक झगड़े हों, इतिहास बताता है कि सबसे ज़्यादा हमले स्त्रियों पर बलात्कार के रूप में आए। इसे 'तथाकथित' शत्रु के सम्मान एवं संपत्ति की क्षति के रूप में देखा जाता रहा है। स्त्री पर हमला कर पारिवारिक एवं सांप्रदायिक बदले लिए जाते रहे हैं, कुछ हद तक दुकान लूटने जैसा। इतिहास में ऐसी लूट का ज़िक्र जहाँ भी आया भयानक तरीके से आया। इसे मध्यकालीन पुरुष मानसिकता से जोड़कर देखना चाहिए जहाँ विजित दूसरों की संपत्ति को लूट लेता है, आग लगाकर जला देता है। 'पिंक' फिल्म में बलात्कार नहीं है, बलात्कार प्रयास हैं प्रयास है कि सहमति बन जाए। कमरा बंद है। सहमति–असहमति की मामूली लकीर खिंची है– दोनों के बीच। बात तब बढ़ जाती है जब पुरुष की मध्यकालीन मानसिकता खुलकर सामने आती है और एक मॉडर्न लड़की उस मानसिकता से खुद को बचाती है, टकराती है और फिल्म के अंत तक उस मानसिकता को लगभग नंगा कर देती है। इस नंगेपन का खुलना आवश्यक है। 'पिंक' यही करती है। कोर्ट रूम की बहस निरंतर उन्हीं सवालों का हिस्सा है जो कि सदियों से स्त्री–हिंसा के साथ जुड़े रहे हैं। कोर्ट रूम के ये सवाल–जवाब जोनाथन काप्लन की ड्रामा फिल्म 'द एक्यूज्ड' से काफी प्रभावित हैं।

आज स्त्रियाँ समाज के हरेक क्षेत्र में कार्य कर रही हैं, राजनीति, बैंकिंग, ब्यूटी पेज़ंट, प्राइवेट सेक्टर, मल्टीनेशनल कंपनी, सरकारी, गैर सरकारी आदि में उसने अपने लिए एक जगह तो बनाई ही है। परंतु इन सबके बावजूद भी वे अभी तक

स्वाधीन नहीं हो पाई हैं। समाज में ऐसी भी स्त्रियाँ जो सेक्स वर्कर या वेश्यावृत्ति के माध्यम से अपनी आय कमाती हैं। इस पेशे में कभी वे खुद तो कभी समाज द्वारा लाई जाती हैं। समाज में स्त्रियाँ स्वयं को सुरक्षित महसूस नहीं कर पाती हैं। आए दिन उनके साथ होने वाली घटनाएँ उन्हें डराती हैं, कहीं ईव टीज़िंग की घटना, तो कहीं सरेआम छेड़–छाड़, तो कहीं बलात्कार, कहीं मर्डर आदि। साहित्य स्त्रियों के इन सब पहलुओं को उठाता चलता है। जीवन की इसी घटना को दर्शाती 'पिंक' फिल्म समाज को यह सोचने पर विवश करती है कि क्यों इन आम लड़कियों को जो घर से दूर रहकर सामान्य रूप से जीवन जीना चाहती हैं तो उन्हें जीने नहीं दिया जाता? केट मिलेट के अनुसार – "हमारा समाज पितृसत्तात्मक है। यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है, यदि कोई ध्यान दे कि सेना, उद्योग, प्रौद्योगिकी, विश्वविद्यालय, विज्ञान, राजनीति, कार्यालय, वित्त संक्षेप में समाज में शक्ति के सभी अंग, पुलिस के दमनकारी बल सहित सब पूर्णतः पुरुषों के हाथ में हैं।"[4] पुरुष ने उसे एक 'वस्तु' के रूप में ही स्वीकारा है। बाज़ार ने उसे 'कमोडिटी' माना है जिसकी उसने एक नई छवि पेश की जिसमें वह केवल एक आकर्षक देह के सिवा कुछ नहीं है। क्योंकि सारे शोषण की जड़ देह है, इसलिए शायद स्त्री ने भी अपनी मुक्ति इस 'देह' से मुक्ति को ही मान लिया है। मृदुला गर्ग कहती हैं– "बाज़ारवादी संस्कृति देह के प्रदर्शन को विज्ञापन का माध्यम बनाती है, देह से मुक्त नहीं करती, उसे खरीदती है।"[5] वहीं प्रभा खेतान के अनुसार– "चूँकि संस्कृति उसे एक 'चीज' मानती है अतः वह खुद भी अपनी देह को 'वस्तु' में ही आँकती है, उसे सजाती संवारती है। यहाँ तक कि बचपन से वृद्धावस्था तक वह दूसरों की नज़र से ही स्वयं को तोलने की इतनी आदी हो जाती है कि देह में ही उसके कर्तव्य की इतिश्री हो जाती है।"[6] नाओमी वुल्फ भी 'ब्यूटी मिथ' में सुंदरता के नए मानकों को स्त्री के खिलाफ पाती है– 'ब्यूटी मिथ' एक नया नियंत्रण है जो स्त्री के खिलाफ और पूंजीवादी उद्योग को टिकाऊ और आकर्षक बनाता है।"[7] पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्रियों के प्रति किस तरह की मानसिकता होती है, यह फिल्म उसे उजागर करती है। स्त्री का कोई और रूप उसे स्वीकार्य क्यों नहीं होता?

'पिंक' फिल्म स्त्रियों के प्रति व्याप्त गलत धारणाओं एवं असमान व्यवहार को उजागर करती है। महानगरों में रहने वाली तीन कामकाजी लड़कियों की कहानी कहती यह फिल्म न केवल स्त्रियों के चरित्र को बताती है बल्कि पुरुषों के चरित्र के कई पहलुओं को भी दिखाती है। महानगरों में रहने वाली महिलाओं की वास्तविकता को यह फिल्म बड़े ही सीधे–साधे अंदाज़ में बयाँ करती है। यह फिल्म उन लोगों के मुँह पर करारा जवाब है जो लड़कियों के पहनने–ओढ़ने पर पाबंदी लगाते हैं। उन्हें क्या पहनना चाहिए, कहाँ जाना चाहिए, किससे बात करनी चाहिए, कैसे बात करनी चाहिए, इन सबको फिल्म में दीपक सहगल (अमिताभ बच्चन) द्वारा व्यंग्य के माध्यम से दिखाया गया है। लड़कियों के संदर्भ में यह सारी बातें हमारा समाज तय करता है। दीपक सहगल ने उन्हें रूल्स के माध्यम से एक–एक कर उठाया है किस तरह यदि एक लड़की, लड़के से हँस–हँस कर बात करे, तो लड़के उसे 'हाँ' मान लेते हैं। एक लड़की को, लड़के के साथ अकेले टॉयलेट तक कभी नहीं जाना चाहिए, वह सेफ नहीं है। एक लड़की को, एक लड़के के साथ बैठकर शराब नहीं पीनी चाहिए, वरना लड़का उसे सोने के लिए 'हाँ' समझ बैठता है। शराब एक लड़की के चरित्र को डिसाइड करती है। लड़की का 'ना' या 'नहीं' कहना अपने आप में पूरा समझा जाना चाहिए। यदि वह 'नहीं' कहती है तो उसे 'नहीं' समझना चाहिए। उसके साथ ज़ोर ज़बरदस्ती नहीं की जानी चाहिए। चाहे वह सेक्स वर्कर हो, लड़की हो, या फिर पत्नी ही क्यों न हो।

इस फिल्म का मैसेज – 'सेव गर्ल' नहीं बल्कि 'सेव बॉय' है। यह फिल्म पुरुषों की दोहरी मानसिकता को दिखाती है। राजबीर (अंगद बेदी) जिसके पिता का राजनैतिक बैकग्राउंड काफी मज़बूत है, जिसके कारण वह एक ज़िद्दी, बिगड़ा

अमीर लड़का और स्वभाव से गुस्सैल है, अपनी बहन के बारे में अच्छी राय रखता है जबकि मीनल (तापसी पन्नू) के बारे में घटिया। 'पिंक' समाज के एक ऐसे वर्ग को भी छूती है, जो हार मानकर बैठती नहीं है। मीनल, फलक और एंड्रिया ऐसे ही किरदार हैं जिनके मन में डर भी है, घबराहट भी है, राजबीर जैसे मनचलों को लेकर। फिर भी वे ज़िंदादिली से अपने हक के लिए आवाज़ उठाती हैं। जिसमें उनका साथ दीपक सहगल (अमिताभ बच्चन) देते हैं। इनका केस लड़ते हुए वे बताते हैं कि स्त्री एक 'देह' नहीं है। यह शरीर उस स्त्री का है, उसकी मर्ज़ी के बिना उसे कोई नहीं छू सकता। यह समाज एक ओर नारी को शरीर और बुद्धि से सजग बनाने में प्रयासरत है, तो दूसरी ओर, सौंदर्य प्रतियोगिताएँ स्वयं नारी को वस्तु बनाने पर तुली हैं। इसकी सही पहचान न होने के कारण युवतियाँ वस्तु बनती जा रही हैं। उन्हें यह पता ही नहीं कि उनका शोषण हो रहा है, पर वे इसकी परवाह किए बगैर इस कीचड़ में धँसती ही चली जा रही हैं। उसकी वजह 'उपभोग' है जिसकी ज़रूरत 'ड्रग्स' की लत से कम नहीं है।

नारी सशक्तिकरण के इस दौर में स्त्री सुरक्षित नहीं है। चाहे वह गाँव की हो अथवा शहर की! उत्तर–पूर्वी राज्य की स्त्रियाँ महानगरों में कितनी असुरक्षित हैं इसे एंड्रिया के माध्यम से 'पिंक' में दिखाया गया है। एक समय था जब स्त्रियों के पहनावे को लेकर बातें नहीं उठती थीं, परंतु आज कुछ अलग ही देखने को मिलता है– "समाज की निचली सीढ़ी पर खड़ी महिलाओं के शरीर ढके देखने वालों का मन प्रसन्न हो रहा है। उधर संपन्न घरों की लड़कियों के शरीर से वस्त्र गायब होने लगे हैं– वे अर्धनग्न या लगभग नग्न स्थिति में दिखने लगी हैं।"[8] यह स्थिति उन्हें मात्र भोग्या ही बना रही है। 'पिंक' पुरुष पात्रों के ज़रिए समाज की उस दकियानूसी मानसिकता को दिखाता है, जो स्त्री–पुरुष के बीच मित्रता को केवल एक ही नज़र से देखता है उसे केवल शारीरिक संबंध ही उनके बीच समझ आता है। आज महिलाओं के पुरुष मित्रों की संख्या बढ़ी है। दफ़्तर, क्लब, पार्टियों में उनका मिलना–जुलना हो ही जाता है, जो एक साधारण बात है। पर इन स्थितियों को भोगती हुई महिलाएँ भी पुरुष का परिचय अपने 'मित्र' रूप में नहीं करवा पाती। हमारे समाज में स्त्री–पुरुष की मित्रता वही पुरानी मानसिकता पर टिकी है। इसकी आधुनिक परिभाषा समाज को स्वीकृत नहीं है। मित्रता के नाम पर ही मीनल ठगी गई। अपने क्लास फ्रेंड के कहने पर वह अपनी तीनों सखियों के साथ रॉक शो में गई और वहाँ घटी घटना ने उनके जीवन में उथल–पुथल मचा दी।

'पिंक' फिल्म प्रताड़ना के विरुद्ध खड़ी स्त्री के खिलाफ, खड़े समाज एवं प्रशासन पर भी प्रश्न चिह्न लगाती है। पुलिस का रवैया, (एफआईआर दर्ज करते समय लापरवाही), सोसाइटी का रवैया (मकान मालिक का मकान छोड़ने को कहना)।

'पिंक' उत्तर–पूर्व की स्त्रियों के प्रति एक खास तरह के रवैये को भी उजागर करती है। उत्तर भारत में उत्तर–पूर्व की लड़कियों को लेकर यह रवैया क्यों है। इस पर विचार बहुत आवश्यक है। हमारे समाज में श्रम करती स्त्री 'ईज़िली एवलेबल' है। अब देखिए महाकवि निराला 'वह तोड़ती पत्थर' में श्रमरत स्त्री का सौंदर्य उसके श्रम में देखते हैं। जबकि कुछ उसकी मजबूरी देखते हैं तो कुछ उसकी चरित्रहीनता। क्योंकि वह घर से बाहर है और रोज़ी–रोटी की ज़रूरत को दर्शाती है। पुरुषों से मिलती है। हर तरह के पुरुष से मिलती है, प्रेम भी करती है। खुलेआम हँसना हमारे समाज के तथाकथित सौंदर्यशास्त्र में चरित्रहीनता का परिचायक माना गया है। उत्तर–पूर्व की स्त्रियाँ श्रमशील हैं, घर में बैठे रहना उन्हें स्वीकार्य नहीं। पहनावा, बातचीत सब में 'खुलापन'। यह 'खुलापन' हमारे कई 'संस्कृति कर्मियों' को खलता है और उन्हीं के परिवेश में पले–बढ़े सपूत आए दिन कोई न कोई ऐसा कारनामा कर बैठते हैं जो स्त्री हिंसा से जुड़ा हुआ होता है। राजबीर ऐसा ही सपूत है, जो मीनल, एंड्रिया और फलक को अपने उसी सौंदर्यशास्त्र से परखता है जो स्त्री के चरित्रवान एवं चरित्रहीनता का प्रमाण–पत्र रखता

है। एंड्रिया के माध्यम से फिल्म पुरुष की उसी सोच को दर्शाती है। जहाँ उनके पहनावे, बातचीत में वैसी बंदिशे नहीं दिखलाई पड़ती हैं जैसी कि उत्तर–भारत की स्त्रियों में दिखती हैं। एंड्रिया का यह कहना कि वह 'मेघालय' से है और उस पर शोषण भारत की अन्य स्त्रियों की तुलना में कहीं अधिक होता है। पुरुष की यह सोच किस कारण है? इसे भी 'पिंक' के ज़रिए देखा व समझा जा सकता है। लड़की के चरित्र को उनकी स्कर्ट की लंबाई से तोलने वाले समाज के ठेकेदारों को दीपक सहगल ने बहुत कोसा। तो वहीं 'फलक' के माध्यम' से 'पिंक' ने बताया कि किस तरह बार–बार पीयूष मिश्रा (वकील) के बोलने पर कि उन्होंने पैसे–लिए, वह पैसे न लेते हुए भी स्वीकार कर लेती है। यहाँ वह एक मैच्योर चरित्र के रूप में हमारे समक्ष आती है।

'पिंक' में बहुत–सी बातें उभरकर आती हैं जो लड़कों की सोच को बखूबी दिखाती हैं– मसलन वो लड़कियाँ वैसी हैं, वो लड़कियाँ ठीक नहीं है, राजबीर का यह कहना कि इन जैसी लड़कियों के साथ तो ऐसा ही होना चाहिए। इसी सोच को दिखाता है। राजबीर जैसे लड़कों की नज़र में ये लड़कियाँ ऐसी हैं जिनके साथ वे लोग पार्टी कर सकते हैं, ज़बरदस्ती से किसी भी हद तक जाने को तैयार हो जाते हैं और जब लड़कियाँ एक हद तक जाकर मना कर देती हैं तो यह उन लड़कों को बरदाश्त नहीं होता और वे उन्हें सीधे 'प्रॉस्टिट्यूट' की श्रेणी में खड़ा कर देते हैं, उन्हें धमकाते हैं, उन्हें गाली देते हैं।

वहीं दूसरी तरफ पुलिस का बिंदास अंदाज़ भी इसी सोच को दिखाता है। 'धमकी–गाली क्या चीज़ है, फ्री की है, ले लो'... रिपोर्ट तो मैं लिख लूँगा, लेकिन मैडम वो लड़के ऐसे गंदे थे तो आप वहाँ गए ही क्यों, आप खुद वहाँ कमरे में गए, दारू पी, मस्ती की, खुद की मर्ज़ी से ही तो आप वहाँ गए, आपको वो लड़के ज़बरदस्ती थोड़े ना ले गए थे, अब ये बिंदी वाले मोर्चा लेकर आएँगे, मोमबत्तियाँ जलाएँगे और कहेंगे कि शहर में लड़कियाँ सेफ नहीं हैं। सारी ज़िम्मेदारी पुलिस की है। यहाँ यह बात सोचने पर विवश करती है कि क्या केवल लड़कियों को ही सोच–समझकर और विवेक से काम लेना चाहिए। पीयूष मिश्रा का यह कहना कि जबसे लॉ एंड ऑर्डर ने दहेज, घरेलू हिंसा और स्त्रियों के लिए कानून बनाए, तब से इन स्त्रियों ने इसका दुरुपयोग ही किया है। पुरुष की दकियानूसी सोच को ही बताती है।

महिलाएँ यदि रात की शिफ्ट में काम करती हैं, तो उन्हें भी समाज हिकारत भरी नज़रों से देखता है। उस पर यदि वे माता–पिता से अलग, अकेली रह रही हों, तो उनकी सोच ही पूरी बदल जाती है। महिलाएँ यदि देर से घर आती हैं तो वे केवल एक ही जगह से आ सकती हैं। 'पिंक' में भी ऐसा ही दिखाया गया है। पुलिस भी उसका ही साथ देती है, जिसका पॉलिटिकल फैमिली से ताल्लुक होता है। इन तीनों कामकाजी लड़कियों का जीवन बिल्कुल भी सामान्य नहीं रह जाता है। दीपक सहगल द्वारा मीनल का केस लड़ा जाना यह बताता है कि समाज में सभी पुरुष एक जैसे नहीं होते हैं। दीपक सहगल द्वारा कोर्ट रूम में यह भी बताया जाता है कि स्त्रियों के 'नो' को 'नो' ही समझा जाना चाहिए। 'नो' केवल एक शब्द नहीं है, यह अपने आप में पूरा वाक्य है।

कहीं–कहीं फिल्म, फिल्म से अधिक विमर्श ज़्यादा लगती है। विशेषतः दीपक सहगल का अदालत में बहस, जो कहीं–कहीं सटीक तो कहीं–कहीं महज़ बहस बन जाती है। अंत फिल्म के उद्देश्य के तहत ही होता है। मीनल अरोड़ा और उसकी फ्रेंड्स बरी की जाती हैं। अर्थात् आरोपी बरी और तथाकथित प्रताड़ित पुरुष सज़ायाफ्ता माने जाते हैं। यह बहस साहित्यिक, राजनैतिक एवं सामाजिक हलकों में काफी सालों से चलती आ रही है– कि 'नो' मीन्स 'नो' वह चाहे सामान्य लड़की हो, वेश्या हो या बीवी हो। फिल्म इसी बहस को सार्थक रूप देती है और यही इस फिल्म की उपलब्धि भी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. स्त्री विमर्श और नेपथ्य राग, कमलेश कुमारी, पृ. 14, प्रकाशक– नई किताब, प्रथम संस्करण, 2014

2. स्त्री विमर्श और नेपथ्य राग, कमलेश कुमारी, पृ. 14, प्रकाशक– नई किताब, प्रथम संस्करण, 2014

3. स्त्री विमर्श और नेपथ्य राग, कमलेश कुमारी, पृ. 14, प्रकाशक– नई किताब, प्रथम संस्करण, 2014

4. स्त्री विमर्श और नेपथ्य राग, कमलेश कुमारी, पृ. 12, प्रकाशक– नई किताब, प्रथम संस्करण, 2014

5. स्त्री विमर्श और नेपथ्य राग, कमलेश कुमारी, पृ. 15, प्रकाशक– नई किताब, प्रथम संस्करण, 2014

6. स्त्री विमर्श और नेपथ्य राग, कमलेश कुमारी, पृ. 15, प्रकाशक– नई किताब, प्रथम संस्करण, 2014

7. स्त्री विमर्श और नेपथ्य राग, कमलेश कुमारी, पृ. 15, प्रकाशक– नई किताब, प्रथम संस्करण, 2014

8. मात्र देह नहीं है औरत, मृदुला सिन्हा, पृ. 132, सामायिक प्रकाशन, सं. 2009

– एसोसिएट प्रोफेसर, अदिति महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

❑❑❑

कोई "कहाँ तक कहे युगों की बातें"

डॉ. सुमित्रा महरोल

बहुविध स्तर पर सिसकते कराहते बिहार राज्य की सवाक तस्वीर है कथाकार मिथलेश्वर की आत्मकथा का दूसरा भाग "कहाँ तक कहें युगों की बातें"। समकालीन जीवन की प्रामाणिक व जीवंत धड़कनें इस कृति में समाई हैं। जीवन के नाना क्षेत्रों में भीतर तक पैठ जमाए भ्रष्टाचार का निर्भीकता से उल्लेख कथाकार ने इस कृति में किया है। चाहे वह उच्च शिक्षा का क्षेत्र हो, चाहे प्राथमिक शिक्षा पर काबिज माफिया राज का, चाहे वह बिहार राज्य की रेल व्यवस्था हो, चाहे सरकारी चिकित्सालयों की कुव्यवस्था से लेकर प्राइवेट अस्पतालों में पाँव पसारते अनाचार का, चाहे वह माता–पिता द्वारा तय किए जाने वाले वैवाहिक संबंधों के दौरान कन्या पक्ष की स्थिति का स्वाभाविक चित्रण हो; सभी प्रसंगों में समकालीन यथार्थ के उजले धुंधले पक्ष अपने पूरे सरोकर और संवेदनशीलता के साथ पाठकों के समक्ष आए हैं, और यह सभी कुछ रचनाकारों के जीवन के विविध प्रसंगों के माध्यम से चित्रित हुआ है, कुछ भी आरोपित नहीं, कहने या बताने के लिए कुछ नहीं कहा गया है, बल्कि निरंतर घटित होते जीवन के साथ यह सब कुछ अनायास ही बहता चला आया है।

कितनी बड़ी विसंगति है कि उच्च शिक्षा की बड़ी उपाधियों में से एक पी.एच.डी. की डिग्री भी बिहार राज्य में गहन अध्ययन, चिंतन एवं परिश्रम से नहीं बल्कि बहुधा धन से अर्जित की जाती है। धन से उपाधि खरीदने वाले व्यक्तियों का चरित्र, मूल्य व सोच कैसी होगी इसका अनुमान लगाया जा सकता हैं। विडंबना यह है कि इन जैसों को ही देश की युवा पीढ़ी को दिशा एवं शिक्षा देने का कार्य सौंपा गया है। जो स्वयं दिशाहीन हैं वह इस गुरुतर कार्य का निर्वाह किस प्रकार करते होंगे यह चिंतनीय है। आत्मकथा में एक सीन पर लेखक कहता है– "इस दौरान शोध कार्यों का जैसा व्यापक अवमूल्यन देखा था, उसने शोध से मेरे मन की दूरी और बढ़ा दी थी। विश्वविद्यालय के कुछ पेशेवर शिक्षकों ने इसे व्यवसाय का रूप दे दिया था। वे विभिन्न विश्वविद्यालयों से शोध प्रबंधों की प्रतियाँ किसी भाँति ले आते। फिर उसका शीर्षक बदल अपने किसी छात्र का नया शोध बना देते। इसमें बिना कुछ लिखे पढ़े उस छात्र के नाम किसी और का शोध प्रबंध परिवर्तित शीर्षक से टाइप हो जाता। फिर विश्वविद्यालयों की प्रक्रियाओं के तहत उसे पी.एच.डी. की उपाधि भी हासिल हो जाती। हालाँकि इसके लिए उसके पेशेवर शोध निदेशक उससे मोटी रकम लेते। विश्वविद्यालय स्तर पर यह धंधा इतना विकसित हो चुका था कि थोक के हिसाब से शोध प्रबंध टाइप होते तथा पी.एच.डी. की उपाधियाँ उसी संख्या में प्रदान की जातीं। ऐसे में कहीं कोई वास्तविक शोध प्रबंध तैयार भी होता तो वह नक्कारखाने में तूती की आवाज बन जाता। यह

कथन चरितार्थ होने लगा था कि खोटे सिक्कों की भरमार में वास्तविक सिक्कों की पहचान क्या।"

(पृष्ठ 50, 51)

प्राथमिक शिक्षा में फैले माफिया राज का पता लेखक को तब चलता है जब टीचर ट्रेनिंग करने के दस वर्ष बाद उनकी पत्नी रेणू प्राथमिक शिक्षिका के रूप में नियुक्त होती हैं। इस प्रसंग में नियुक्ति पत्र पाने से लेकर, नियुक्त होने और नियुक्त होने के बाद विभिन्न स्थानांतरणों का संदर्भ वस्तुस्थिति से पाठक को परिचित कराता है। राज्य के शिक्षा विभाग द्वारा जारी किए गए नियुक्ति पत्र के अनुसार जिस विद्यालय में रेणु जी को नियुक्त किया गया था उसका कोई अस्तित्व ही नहीं था। संबंधित विभाग अपनी इस भयंकर चूक पर शर्मिंदा व जवाबदेह होने के स्थान पर अपनी गलती को ठीक करने की एवज में रेणु जी से धनराशि की अपेक्षा रखता है। बड़ी कठिनाई से रेणु जी को सही नियुक्ति पत्र मिल पाता है। नियुक्ति के बाद भी स्थानांतरण की तलवार लटकाकर संबंधित अधिकारी उन्हें तरह–तरह से प्रताड़ित करते रहते हैं। इस प्रसंग में द्रष्टव्य है– "मैं तो स्थानांतरण को ही प्राथमिक शिक्षा का सबसे बड़ा अनाचार मान रहा था। यहाँ तो एक से बढ़कर एक हैरतअंगेज कारनामे हैं। सस्पेंड जैसा दंड घूस की छोटी रकम के लिए या फिर अपनी मनमानी और तानाशाही कायम रखने के वास्ते...। और सस्पेंड की प्रक्रिया भी कैसी? बिना किसी स्पष्टीकरण के बिना कोई जाँच बिठाए सीधे आदेश निर्गत कर देना।"

(पृष्ठ 155)

प्राथमिक शिक्षक से शिक्षा के साथ लिए जाने वाले शिक्षकेत्तर कार्यों का ब्यौरा भी लेखक ने दिया है। इस प्रसंग में कदम–कदम पर फैले हुए भ्रष्टाचार से मुक्ति किस तरह संभव हो पाएगी, कभी संभव हो भी पाएगी या नहीं और यदि हाँ तो उसमें कितना समय लगेगा।

कुप्रबंध, अव्यवस्था और अनाचारों से चिकित्सा जैसा क्षेत्र भी बचा नहीं है। अध्यापन के दौरान राँची में अचानक बीमार होने पर राजकीय चिकित्सालय पहुँचे मिथिलेश्वर जी को अनेक तिक्त अनुभवों का सामना करना पड़ता है– "वहाँ की अव्यवस्था और इलाज के नाम पर ठंडी निष्क्रियता देख हमारा मन तिक्त हो गया। एमरजेंसी कक्ष पूछते–पूछते हम जहाँ पहुँचे वहाँ किसी चिकित्सक को उपलब्ध नहीं पाया। कक्ष के दरबान ने दिन के दस बजे आने को कहा। एमरजेंसी चिकित्सा में हमारे बार–बार आग्रह करने पर बगल के कमरे में सोए एक डॉक्टर को वह अनिच्छा से जगा लाया। वह हमें डॉक्टर कम मेडिकल का छात्र अधिक जान पड़ा... बगैर मेरी जाँच पड़ताल किए मुझे हटाने के उद्देश्य से उसने एक पर्ची पर कुछ दवाएँ लिख दीं। खोदा पहाड़ निकली चुहिया। हमारा मन और व्यथित हो गया। अस्पताल की ड्यूटी पर तैनात वही चिकित्सक जो मरीजों के साथ लापरवाही और उपेक्षा बरतते, अपने प्राइवेट क्लिनिक पर पहुँचे मरीजों का पूरे मन और उत्साह से इलाज करते।" (पृष्ठ 5, 6)

प्राइवेट क्लिनिकों में चल रहे यौन अनाचारों का विवरण भी इस कृति में आया है। दूर–दराज के ग्रामीण अंचलों से मरीज के साथ आए हुए परिजनों की विवश व दयनीय स्थिति का लाभ इन क्लिनिकों में तैनात कर्मचारी अपनी यौन पिपासाओं की पूर्ति के रूप में उठाते हैं। "इन कंपाउंडरों ने इन अस्पतालों को वेश्यालय बना दिया है... भर्ती किए मरीजों के लिए जिन कंपाउंडरों को रक्षक समझ बहाल किया है वे तो भक्षक हैं।" (पृष्ठ 94)

किसानों के मध्य आपसी ईर्ष्या व द्वेष के परिणाम कितने घातक होते हैं इसका पता तब चलता है जब तनिक से आपसी विवाद के चलते एक कर्मठ किसान को गोली लगने पर मरणासन्न स्थिति में अस्पताल लाया जाता है और इलाज के दौरान ही उसकी मौत हो जाती है– "वह आरा के निकट के गाँव का वासी था। उसके पास जमीन बहुत कम थी। इस कारण धान गेहूँ, चना, मटर आदि की खेती न कर वह सब्जियाँ उपजाता। वह इतना मेहनती था और खेती की ऐसी समझ रखता

था कि साल भर उसके खेत में सब्जियाँ लदराई रहतीं। उसके बगल के किसान उससे ईर्ष्या करते उसी ईर्ष्या से उपजे द्वेष की परिणति में ही यह घटना घटी।" (पृष्ठ 98)

मनोविकार आज सामाजिकता पर पूरी तरह से हावी हैं। उच्चतर मानवीय मूल्य ह्रास की कगार पर हैं। आपसी ईर्ष्या व द्वेष के कारण तनिक सी बात पर इस तरह की घटनाएँ आज आम हैं पर इस घटना पर मेरा मन देर तक पीड़ित बना रहा– "मैं इस जानकारी से अवगत हो चुका था कि उसके घर में कमाने वाला दूसरा पुरूष नहीं है तो क्या परिवार की महिलाएँ विरासत में खेती सम्भालेंगी? उसकी तरह सब्जियाँ उगाएँगी। आर–पार के संघर्ष को सलट लेंगी... संभव है कुछ हो। संभव है, वे बर्बाद हो जाएँ।"

विवाह योग्य होने पर बड़ी बेटी के लिए वर ढूँढ़ने का संदर्भ वास्तविक रोचक व मनोहारी है। बदलते हुए सामाजिक मूल्यों ने इस क्षेत्र को भी अछूता नहीं छोड़ा है। इसने भी आज व्यवसाय का रूप धारण कर लिया है। सम्भ्रांत, पढ़े–लिखे अच्छी नौकरीशुदा बेटों के परिवार किस तरह से कन्या पक्ष को परेशान करते हैं इसका जीवंत चित्रण लेखक ने इस प्रसंग में किया है। कभी कुंडली, कभी फोटो की आड़ में वर पक्ष कन्या पक्ष को पीड़ित करता है। इतना ही नहीं दहेज की आड़ में मोटी रकम वसूलना भी उनका उद्देश्य रहता है। तुर्रा यह है कि जब हमने अपनी बेटियों के विवाह में मुँह माँगी रकम दी है तो अब लेने के समय हम पीछे कैसे रह जाएँ आखिर लड़के को पालने–पोसने, पढ़ाने–लिखाने व अच्छी नौकरी के लायक बनाने में हमारा भी तो धन और समय लगा। अच्छी नौकरी से प्राप्त सुख सुविधा का लाभ आखिर लड़की ही तो उठाएगी।

मिथिलेश्वर जी ने ग्यारह कहानी संग्रहों और छह उपन्यासों का सृजन किया है। कुछ विशिष्ट व पाठकों द्वारा विशेष रूप से सराही गई रचनाओं की पृष्ठभूमि में मौजूद परिस्थितियों व सृजन के लिए प्रेरक दवाब के क्षणों का वर्णन भी इस रचना में आया है। "तिरिया जनम" कहानी समाज के मेरे लंबे अनुभवों की देन थी। बचपन से ही मैं अपने गाँव में स्त्री जीवन की घोर उपेक्षा, दमन और अपमान का साक्षी रहा हूँ... लेखक ने कोशिश की है कि नारी की नारकीय यातना से संबंधित उस समय के अनुभव की जीवंत रूप में अभिव्यक्ति कर सकें।

मिथिलेश्वर जी का "यह अंत नहीं" उपन्यास कलेवर की दृष्टि से बड़ा उपन्यास बन गया। यहाँ मैंने यह अनुभव किया कि "अंतहीन समस्याओं के मकड़जाल में फँसे आज के गाँवों की समस्याएँ भी अंतहीन हैं। गाँव की शक्ल को जिन वारदातों ने ज्यादा बदरंग किया है उसमें हत्याओं और नरसंहारों की भूमिका सर्वोपरि है... जाति, धर्म और सेना, संगठन के नाम पर मारे जाने वाले निरीह लोगों की लाशों और उनके बिलखते परिवार जनों को देखते हुए अंतहीन बनती इस बर्बरता ने इस उपन्यास रचना के दौरान लेखक को व्यथित किया था।" (पृष्ठ 277)

"मनबोध मउआर' कहानी के मनबोध मउआर को कई रूपों और जगहों में मैंने देखा है। बचपन में मेरे गाँव के कुछ लोग बिल्कुल मनबोध मउआर की तरह जीते थे। अपने नफे नुकसान की परवाह किए बगैर दूसरों के मामलों में कूद जाते और गलत ओर अन्याय करने वालों से जूझ पड़ते। लेकिन अब वैसे चरित्र मुझे नहीं दिखते।

(पृष्ठ 279)

"पानी बीच मीन पियासी" मिथिलेश्वर जी की आत्मकथा का पहला भाग है। शैशवावस्था से लेकर छात्र जीवन, ग्रामीण जीवन और परिवेश, विवाह प्रसंग, ग्राम से आरा में बसने के जीवंत मनोहारी चित्रण के साथ–साथ लेखक के लेखकीय जीवन की यात्रा के संघर्षपूर्ण चित्र इस भाग में अपने पूरे विस्तार व संवेदनशीलता के साथ न केवल आए हैं बल्कि पूरी तल्लीनता के साथ पाठक को पृष्ठ दर पृष्ठ पलटने को विवश कर देते हैं। यहाँ मैं यहा भी कहना चाहूँगी कि निजीकरण

के माध्यम से सामाजिक जीवन के सरोकारों से पाठकों का परिचय होता है पर आत्मकथा के दूसरे भाग में सामाजिक जीवन व परिवेश सम्यक विस्तार व गहराई के साथ पाठकीय चेतना को झकझोरने में सफल नहीं हो पाया है। निजी जीवन की सरस व मनोहारी झांकियाँ सीमित मात्रा में पाठकों को रसमग्न करती हैं। निश्चय ही अपने शीर्षक के समान लेखक यह कहने में पर्याप्त रूप से सफल रहा है कि "कहाँ तक कहें युगों की बातें"।

– डी–160, ग्राउंड फ्लोर, रामप्रस्थ कॉलोनी, ग़ाज़ियाबाद–201011

❑❑❑

लोकसाहित्य में सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश (विशेष संदर्भ हिमाचली लोकसाहित्य)

डॉ. गुरमीत सिंह

साहित्य और समाज का अटूट संबंध है। मनुष्य के प्रगतिशील जीवन का लक्षण साहित्य है। वही साहित्य श्रेष्ठ होता है जिससे जनमानस में भावों और विचारों को गति मिले। साहित्य का उद्देश्य मानव मूल्यों की स्थापना तथा संरक्षण होता है। साहित्य के माध्यम से ही समाज को समझा व परखा जा सकता है। सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के वास्तविक रूप को समझने के लिए उस समाज के साहित्य का अध्ययन आवश्यक होता है परंतु उस समाज के मूलभूत रूप, वहाँ की संस्कृति, रीति–रिवाज, रहन–सहन, खान–पान धारणाएँ, मान्यताएँ, प्रथाएँ, नियम–कानून, इतिहास आदि को गहराई से समझना हो तो उस समाज के लोकसाहित्य का अत्यधिक महत्व होता है। लोकसाहित्य में ही मानव जीवन और उसके सामुदायिक जीवन का समस्त लेखा–जोखा प्राप्त होता है।

लोकसाहित्य मानव संस्कृति का अभिन्न अंग है। लोक मानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति लोकसाहित्य में मिलती है। यह साहित्य प्रायः अलिखित होता है और मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी पहुँचाया जाता है। इसमें गीत, कथाएँ, मुहावरे और कहावतें आदि सम्मिलित होते हैं। लोकसाहित्य जनता का साहित्य है। यह उनके हृदय में उद्भूत होता है, वहीं पल्लवित होता है और जनता की सरलता, सहजता एवं स्वच्छंदता से मंडित रहता है। लोकसाहित्य का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत, विशाल एवं व्यापक है। जनसामान्य की समस्त सुखात्मक एवं दुखात्मक संवेदनाएँ, कार्यकलाप लोकसाहित्य के अंतर्गत आते हैं। लोकसाहित्य को पूर्ण रूप से समझने से पहले लोक शब्द के अर्थ को समझ लेना आवश्यक है। लोकसाहित्य दो शब्दों से मिलकर बना है– लोक और साहित्य। लोक शब्द दो अर्थों में प्रचलित है– एक तो विश्व अथवा समाज और दूसरा जनसामान्य अथवा जनसाधारण।

"साहित्य अथवा संस्कृति के एक विशिष्ट भेद की ओर इंगित करने वाले एक आधुनिक विशेषण के रूप में इस शब्द का अर्थ ग्राम्या या जनपदीय समझा जाता है। किंतु इस दृष्टि से केवल गाँव में ही नहीं वरन् नगरों, जंगलों, पहाड़ों और टापुओं में बसा हुआ मानव समाज जो अपनी परंपरा प्रथित रीति–रिवाजों और आदिम विश्वासों के प्रति आस्थाशील होने के कारण अशिक्षित एवं अल्पसभ्य कहा जाता है लोक का प्रतिनिधित्व करता है।"[1]

अतः हर व्यक्ति, हर जाति, हर समाज के अपने कुछ रीति–रिवाज, मान्यताएँ, प्रथाएँ होती हैं। लोक शब्द मानव समाज के इन समस्त विश्वासों का प्रतिनिधित्व करता है।

हिंदी भाषा एवं साहित्यिक–विश्वकोश के अनुसार–

'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोकदर्शन' धातु से बना है। इसमें 'धञ' प्रत्यय लगने से ही 'लोक' शब्द निष्पन्न हुआ है। इस धातु का अर्थ है–

देखना।। इसका लट्लकार में अन्य पुरुष एकवचन का रूप लोकते है। अतः 'लोक' शब्द का मूल अर्थ हुआ– 'देखने वाला'। वह समस्त जनसमुदाय, जो इस कार्य को करता है, 'लोक' कहलाता है।"[2]

लोक शब्द समस्त जनसमुदाय के लिए प्रयुक्त होता है जो समाज में रहते हुए हर सुख–दुख, रीति–रिवाज, मूल्य, विश्वास आदि सभी का संरक्षण यह जनसामान्य करता है।

"लोक शब्द अंग्रेजी के फोक (folk) से बना है। ऐंग्लो सेक्शन का विकसित रूप है। और प्रयोग की दृष्टि से असंस्कृत और मूढ़ समाज या जाति का द्योतक है। यों तो आदिम जाति में वे सभी सदस्य फोक होते हैं जिनसे वह जाति बनी होती है पर यदि शब्द का व्यापक अर्थ लिया जाए तो इसका प्रयोग सभ्य राष्ट्र की समग्र जनता के लिए भी किया जा सकता है।"[3]

लोक शब्द उन सभी मानव समाजों का चाहे वह आदिम समाज हो, चाहे ग्रामीण समाज हो, चाहे नागरिक समाज इन सबमें रहने वाला कोई भी मानव समूह हो सकता है। यह मानव समूह अपने रीति–रिवाजों, प्रथाओं, मान्यताओं, विश्वासों के प्रति आस्थाशील रहता है।

लोकसाहित्य

जब लोक अपनी आशा–निराशाएँ, सुख–दुख, जीवन–मरण, लाभ–हानि आदि को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति देता है तो उसे 'लोकसाहित्य' कहते हैं। लोकसाहित्य लोक का साहित्य है। लोकसाहित्य उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव। इस साहित्य में जनजीवन के समस्त क्रियाकलापों का समावेश होता है। साधारण शब्दों में कहें तो यह साहित्य जनसाधारण से संबंधित साहित्य है। लोकसाहित्य को विद्वानों ने कुछ इस तरह से स्पष्ट किया है–

डॉ. श्रीराम शर्मा के अनुसार– "लोकसाहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है जो किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं रची जाती अपितु समस्त मानव समूह उसे अपना मानता है।"[4]

हिंदी भाषा एवं साहित्यिक–विश्वकोश के अनुसार–

"वह साहित्य उतना ही स्वाभाविक था, जितना जंगल में खिलने वाला फूल, उतना ही स्वच्छंद था, जितनी आकाश में उड़ने वाली चिड़िया, उतना ही सरल तथा पवित्र था, जितना गंगा की निर्मल धारा, उस समय के साहित्य का जो अंश आज अवशिष्ट तथा सुरक्षित रह गया है, वही हमें लोकसाहित्य के रूप में उपलब्ध होता है।"[5]

लोकसाहित्य लोक संस्कृति का अंग है। यदि साहित्य समाज का प्रतिबिंब है तो लोकसाहित्य सामाजिक संस्कृति का प्रतिबिंब है।

डॉ. सुरेश गौतम के अनुसार–

"लोकसाहित्य तो जीवन का रत्नाकर है। ऐसा रत्नाकर जहाँ जीवन के सौंदर्य की मणियाँ तैरती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। लोकसाहित्य की विश्वास सृष्टि में लोकमानस की प्राक् कल्पना, आनुष्ठानिक विचारणा, विश्व चेतना का सर्वात्मवादी दर्शन तथा पराप्राकृतिक शक्तियों के प्रति सहज आस्था अभिव्यंजित होती है।"[6]

लोकसाहित्य दो शब्दों का मेल है लोक एवं साहित्य लोक का साहित्य लोकसाहित्य है। जहाँ लोक होगा वहाँ उसकी संस्कृति और साहित्य होगा। विश्व में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ लोक हो और वहाँ उसकी संस्कृति न हो। मानव मन के उद्गार तथा सूक्ष्म अनुभूतियाँ सभी लोकसाहित्य के अंतर्गत आती हैं। इस साहित्य में लोकजीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है। लोकसाहित्य हमारी सभ्यता का संरक्षक है।

डॉ. श्रीराम शर्मा के अनुसार–

"लोकसाहित्य किसी प्रकार के नियमों के बंधनों से मुक्त विस्तृत परिधि वाली स्वच्छंद गति से प्रवाहमान एक धारा है।"[7]

साहित्य का आधार लोकमंगल और लोकहित होता है। किसी भी युग का साहित्यकार इस सत्य से अनभिज्ञ नहीं रह सकता है।

लोकसाहित्य में जनस्वभाव के अंतर्गत आने वाली आदिकाल से लेकर अब तक की संपूर्ण प्रवृत्तियाँ समाई होती हैं। इस साहित्य में जनजीवन की समस्त भावनाएँ यथार्थ में समाहित होती हैं। समूची संस्कृति के अध्ययन के लिए लोकसाहित्य का अध्ययन आवश्यक होता है। यह साहित्य मनुष्य एवं मनुष्यत्व का साक्षी होता है। इसमें जनजीवन का भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। किसी भी राष्ट्र की सांस्कृतिक मौलिकता का रसस्रोत लोकसाहित्य ही है। "किसी राष्ट्र की अंतर्भावना सिद्धांतमूलक जीवन पद्धति का परिचय प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें लोकसंस्कृति का ज्ञान करना होगा। यह ज्ञान हमें मुख्य रूप से लोकसाहित्य द्वारा प्राप्त होता है।"[8]

लोकसाहित्य के विविध रूप

लोकसाहित्य का क्षेत्र अधिक व्यापक माना गया है। इसमें व्यक्ति की विभिन्न अनुभूतियाँ, मान्यताएँ, परंपराएँ, लोक विश्वास सभी सम्मिलित होते हैं। इसके माध्यम से संस्कृति की प्राचीनता, समृद्धि और श्रेष्ठता का सफलतापूर्ण निरूपण किया जा सकता है। लोकसाहित्य में जनता के गीत, कथाएँ, मुहावरें और कहावतें शामिल हैं।

"चाहे लोकगीत हों या लोककथाएँ हो अथवा लोकनाट्य, लोकसाहित्य का कोई भी रूप हो–सभी रूप विधाओं में लोकजीवन के रंग अपने पूरे निखार पर हम से सीधे संवाद करते हैं।"[9]

इस प्रकार लोकसाहित्य के अंतर्गत निम्नलिखित बातें आती हैं–

1. लोकगाथा 2. लोकगीत 3. लोककथा 4. लोकनाट्य 5. प्रकीर्ण साहित्य

लोकगाथा – लोकसाहित्य में उपलब्ध गीत दो श्रेणियों में विभाजित हैं। यह है प्रगीति मुक्तक और प्रबंध काव्य। मुक्तक गीतों में कथानक का अभाव है और गीतात्मकता की प्रधानता रहती है। प्रबंधात्मक गीतों में कथावस्तु की प्रधानता होती है। प्रबंध काव्य को ही लोकगाथा कहा जाता है। लोकगाथा में रचियता अज्ञात, मूल पाठ का अभाव, स्थानीयपन का पुट, मौखिक परंपरा, उपेदशात्मक प्रवृत्ति, लंबे कथात्मक की भूमिका और अलंकृत शैली की विद्यमानता आदि विशेषताएँ होती हैं।

लोकगीत – इस संपूर्ण सृष्टि में ऐसा कोई कोना नहीं है जहाँ गीत किसी न किसी रूप में विद्यमान न हों। जहाँ मानव है वहाँ गीत–संगीत है। जीवन का ऐसा कोई भी आयोजन नहीं है जहाँ गीत न हों। "गीत हमारे समूचे सांस्कृतिक जीवन की रीढ़ हैं।"[10] लोकगीत लोक में प्रचलित लोक द्वारा लोक के लिए लिखा जाता है। गीत में सामूहिक प्रवृत्ति अधिक विद्यमान है। इनमें मानव सभ्यता एवं संस्कृति के विभिन्न चित्र अंकित होते हैं। ये मनोरंजन, शिक्षा तथा ज्ञानवर्द्धन के सरल माध्यम होते हैं।

लोककथा – किसी भी देश के लोक सांस्कृतिक परिदृश्य को जानने–समझने के लिए लोक कथाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जब समस्त मानव समुदाय अपनी अनुभूतियों को कहानियों के माध्यम से कहता है तब वह लोककथा बनती है। लेखन कला के विकास के पूर्व ही मनुष्य ने अपनी वैचित्र्यपूर्ण अनुभूतियों को कथा का रूप देना प्रारंभ कर दिया था और इन कहानियों के माध्यम से उसके जीवन की सर्वप्रथम अभिव्यक्ति हुई। लोककथाओं के बीज वेद, उपनिषद् और पुराणों में प्राप्त होने वाले आख्यानों में देखे जा सकते हैं।

"लोकजीवन की समस्त उपलब्धियाँ और त्रासदियाँ इन कथाओं की गोद में क्रीड़ा करती हैं। जीवन के संपूर्णत्व को समेटे इन कथाओं में जनमानस का हर्ष–विषाद, आस्था–नैराश्य, कर्म–आलस्य, पर्व–उत्सव, ईर्ष्या–द्वेष, वेदनागर्भित सत्य, आनंदमूलक क्षण–सभी कुछ बूँद–बूँद भरा समुद्र–कलश है।"[11]

लोकनाट्य – लोकनाटक बिना किसी शास्त्रीय बंधन के लोकमानस की सहज अभिव्यक्ति है जिसमें लोकपरंपराओं का प्रदर्शन लोकमंच पर होता है। यह लोकमंच लोकमानसिक होता है जो गली–गलियारों में विद्यमान रहता है। लोकनाटक सर्वसाधारण के जीवन से संबंधित है जो परंपरा से अपने–अपने क्षेत्र के जनसमुदाय के मनोरंजन का

साधन रही है। लोकविश्वास, लोकधारणाएँ और लोकसंस्कृति की अखंडता को लोकनाट्यों के माध्यम से देखा जा सकता है।

"लोक नाट्कों के मूल में धार्मिक अनुष्ठान–विश्वास, लोक में व्यापत कथानक रूढ़ियाँ, सहजात कलात्मक नृत्य, पर्व–त्योहारों के प्रति गहन आस्था, लोक–खेल, लोक वादय, चिकित्सा, रसात्मक लोक गान, सांगीतिक अभिनय, व्यक्तिगत समस्याएँ आदि तत्व लोक नाटकों के पूर्णत्व का विकास सामने लाते हैं।"[12]

प्रकीर्ण साहित्य – लोकसाहित्य के इस वर्ग में स्फुट साहित्य आता है। इस साहित्य में लोकोक्तियाँ, मुहावरें, पहेलियाँ, पालने के गीत, खेत के गीत, लोरियाँ इत्यादि आते हैं। ये आकार में अत्यंत लघु होते हैं तथा लय की प्रधानता होती है। लोकोक्त्यिाँ लोकजीवन के अनुभव का सार है तो मुहावरें लोक की घटना या क्रिया–व्यापार के लक्षणों को ग्रहण करके बनते हैं। लोकोक्तियों को स्वनिर्मित नीतिशास्त्र कहा जाता है। कहावतों में भी लोकजीवन का सार है तथा इन्हें अनुभवशास्त्र भी कहा जाता है।

"ग्रामीण जनता अपने दैनिक व्यवहार में सैकड़ों मुहावरों, लोकक्तियों, सूक्तियों और सुभाषितों का प्रयोग करती है। इन मुहावरों–कहावतों में चिर संचित अनुभूत ज्ञानराशि भरी पड़ी है। इनमें जीवन के सत्य बड़ी खूबी से प्रकट होते हैं। इनके अध्ययन से हमारी सामाजिक प्रथाओं का चित्रण उपलब्ध होता है।"[13]

हिमाचली लोकसाहित्य

हिमाचल प्रदेश पश्चिम हिमालय में स्थित है। यह प्रदेश अपनी सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक धरोहर के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ की बर्फीली चोटियाँ, प्राचीन नदियाँ, लोकदेवता, लोकगीत, लोककथाएँ, लोकत्योहार, भुंडा, काहिका, महायज्ञ तथा अनेक धार्मिक मान्यताएँ यहाँ के प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर एवं विरासत के जीवंत उदाहरण हैं। यह प्रदेश अपनी लोकसंस्कृति के लिए अधिक समृद्ध रहा है। यहाँ लोकसाहित्य एवं लोकसंस्कृति ग्रामीण जीवन के अभिन्न अंग है। यहाँ के लोकजीवन में लोककथाओं का अथाह भंडार है। जिनका प्रयोग आज का जनसमुदाय सांस्कृतिक दृष्टि से कर रहा है। यहाँ के लोकसाहित्य में यहाँ की संस्कृति, इतिहास एवं सामाजिक जीवन को पूर्णतः समझा जा सकता है तथा अतीत के पन्नों में आँका जा सकता है।

"हिमाचली भाषा में लोकसाहित्य, लोकगीतों, गाथाओं, लोकनाट्यों, लोकविश्वासों, पहेलियों, लोकोक्तियों और मुहावरों का अभूतपूर्व कोष है।"[14]

प्रत्यूष गुलेरी के अनुसार– "लोकसाहित्य असे हिमाचली लोके दें सामाजिक आस्था–विश्वासे, रीति–रिवाजा कनै संस्कृतियाँ जो दर्शांदा ऐ। मुख जवानी चली औणे कनै लोकगीता, लोककथा, झेहड़ेया लोकगाथा बगैरा च थोड़ा–थोड़ा फर्क तां सबनी भाषा दे लोकसाहित्य च जुग–जुग ते रैहंदा आया है।"[15]

हिमाचली लोकगाथाओं में सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश

"परिवेश कोई अमूर्त प्रत्यय नहीं है प्रत्युत उत्पादन के साधनों तथा उत्पादन से बने सामाजिक ढ़ाँचे का नाम ही परिवेश है। इसके अंतर्गत किसी देश और काल की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियाँ आ जाती हैं।"[16]

किसी भी साहित्य का आधार तभी सुदृढ़ होता है जब वह अपने परिवेश के साथ आत्मीय रूप से जुड़ा होता है। साहित्य और परिवेश का एक अटूट रिश्ता है। समाज और परिवेश के सहचरत्व के बिना किसी भी प्रकार का सृजन संभव नहीं और लोकसाहित्य तो है ही समाज और परिवेश का साहित्य।

सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश

सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश वह है जिसमें मनुष्य जन्म लेता है, आँखें खोलता है, होश संभालता है। संस्कृति समाज रूपी विश्व की जड़ है। इसमें मूल्य, मानवता, चेतना, विचार, भावना, रिवाज, भाषा, ज्ञान, कला, धर्म, जादू–टोना आदि के वे

सभी मूर्त–अमूर्त स्वरूप संस्कृति में शामिल हैं। लोकसाहित्य में सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन के लगभग सभी पहलुओं को देखा व समझा जाता है।

हिमाचल प्रदेश के लोकसाहित्य में वहाँ के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन के हर रूप को देखा जा सकता है। लोकगाथाएँ, लोककथाएँ, लोकगीत, लोकनाट्य एवं प्रकीर्ण साहित्य सभी में हिमाचली जनजीवन की विविध झलकियाँ देखने को मिलती हैं।

"पहाड़ी सभ्यता, राहुल जी की राय में, पृथकता और विशिष्टता तथा समानता और एकता का अद्‌भुत मिश्रण है। इस संस्कृति की विचित्रता तो इसी में है कि यह कई प्रकार के तत्वों, कई धाराओं और प्रभावों के मिश्रण से बनी है। इसलिए यह आँचलिक भी है और साथ ही बहुआँचलिक संस्कृति भी। इसकी जड़ें तो अँचलों से जुड़कर इसे बहुआँचलिक चरित्र भी प्रदान करती हैं।"[17]

हिमाचल में विशेष अवसर, त्योहार और सामाजिक मेल–मिलाप के मौकों पर लोकगाथाओं को गाने की विशेष परंपरा है, जिससे लोकगाथाएँ मानव जीवन से एकदम घुल–मिल जाती हैं। इनमें धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, वीरतापूर्ण तथा प्रेमपरक लोकगाथाओं का महत्वपूर्ण स्थान है।

हिमाचल की देवगाथाओं में सहदेव की लोकगाथा, चिखडेश्वर की लोकगाथा, पंडरामायण, विरशी की लोकगाथा, सीताहरण लोकगाथा, महासू देवता की लोकगाथा, शिव की लोकगाथा आदि वीरगाथाओं में वीर सूरत राम की लोकगाथा, भारत–चीन युद्‌ध की लोकगाथा, चौरणु वीर की लोकगाथा आदि प्रेमपरक लोकगाथाओं में रूपु और माई की लोकगाथा, सीलीदार की लोकगाथा, तानु की लोकगाथा, राजा भरथरी की लोकगाथा आदि तथा ऐतिहासिक लोकगाथाओं में राजा जुब्बल भगत सिंह की गाथा, भलकू जमींदार की लोकगाथा, छौतरी की लोकगाथा, ठाकुर रामलाल की गाथा आदि हिमाचल की प्रसिद्‌ध लोकगाथाएँ हैं।

ठोडा उत्सव में ब्रलाज की लोकगाथा प्रस्तुत की जाती है जिसमें सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर विष्णु, ब्रह्मा, महादेव के जन्म की गाथा तथा अन्य पौराणिक उपाख्यों को आपस में गूँथ दिया गया है। सृष्टि के आरंभ का कुछ इस तरह से वर्णन है–

पहले नाओं नारायणों रा, जुणी धरती पुआणी।

जलथाली होई पिरथवी, देवी मनसा राखो जगड़ी।

माणु न होले कब न रीखी एकई नारायणों रा राजो होला

सिद्‌ध गुरू री झोड़ी फा, ढाई दारणा शेरो रा झैड़ा।[18]

अर्थात् सबसे पहले नारायण का नाम है जिसने इस धरती को बनाया है। पहले सारी पृथ्वी जलमय थी और मनसा देवी को इसकी देखभाल के लिए रखा गया था। तब न तो कोई मनुष्य था न ही कोई ऋषि। केवल एक परमेश्वर का ही राज था। सिद्‌ध गुरु की झोली से ढाई दाने सरसों के गिरे, उन दानों को हमने घर के साथ के छोटे खेत में बो दिया।

इस प्रकार इस लोकगाथा में ईश्वर की महत्ता समाज में दर्शाई गई है।

राजा भरथरी की कथा में राजा भरथरी और उनकी रानी पिंगला के जीवन का वर्णन है साथ ही उस समय के सामाजिक जीवन और संस्कृति का चित्रण है। संसार की निस्सारता का वर्णन कुछ इस तरह से रानी पिंगला के माध्यम से किया गया है–

रानी पिंगला राजा को समझाते हुए कहती है–

काची बौणी काया कोठड़ी, झूठौ बौणो संसार

चौऊ दिने राजा जीउणों, छाढ़ी देणों घर बार

समझे शूणे राजा भरथरी।[19]

राजा भरथरी की इस लोकगाथा में यह भी दर्शाया गया है किस प्रकार यह संसार एक दूसरे के बिना अधूरा है। संतान के बिना माँ–बाप नहीं, धागे के बिना डोरी नहीं, दिन के बिना रात नहीं यह शरीर भी कागज की भाँति है।

देवकन्या भी इसी प्रकार की लोकगाथा है जिसमें देवकन्या और बसु के विवाह का वर्णन है। इस लोकगाथा को कुल्लु के लोग एक नृत्य रूप में प्रस्तुत करते हैं। तासगी नाग की बसु द्वारा रक्षा और फिर बसु का देवकन्या के साथ विवाह यह सब सामाजिक सरोकारों को सिद्ध करता है। इसमें राजा कंस का भी वर्णन मिलता है जिसे लोककथाकारों ने अपने अनुसार ढाला है।

शूणे–शूणे बसु ओ ब्रामणा, काडी गई तेरे है मैली

आधे नाहुँ धीवरा का फिरी रे शूणे–शूणे बसु ओ ब्रामणा।[20]

इसी प्रकार एक विरशी लोकगाथा है जो वीरसती रैणी की है। रैणी अपने पति कायथ के साथ सती हो जाती है। रैणी के भाई के विरोध का वर्णन कुछ इस प्रकार है–

भाई प्रताप भाए आशो प्रताप जुए तरारो

केजो हौलो खशियों से जीऊँदी जालौ।[21]

अर्थात् भाई क्रोध से जल उठा जब उसने रैणी के सती होने की खबर सुनी। उसने अपनी तलवार निकालकर कहा कि ऐसा कौन सा राजपूत है जो उसकी बहन को जिंदा जलाना चाहता है।

रैमीमाईची वरेतु वरकलु रे सदा उजले छाडु।[22]

अर्थात् अपने भाई की बातें सुनकर रैणी कहने लगी कि मुझे कोई जबरदस्ती नहीं जला रहा है, मैं तो अपने पति के साथ अपनी इच्छा से आत्मदाह करना चाहती हूँ ताकि अपने मायके वालों का नाम ऊँचा कर सकूँ।

महासती लोता की गाथा भी इसी प्रकार की है जिसमें लोता अपने पति भागचंद के साथ में ही सती हो जाती है। यह कथा आज भी रोहडु और शिमला के क्षेत्रों में गाई जाती है। इस लोककथा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें दहेज प्रथा का विरोध किया गया है। भागचंद कहता है–

पिता जीबीतैरे आए नेगटुआ खाए लु खाणौ

छियो देउ बदरी रे कन्यादाणौ

भागचंदकन्या तेरे निंदा पाई पापो रा पिंडा

बीशौ गाई चालशो आगले देंदा।[23]

उपर्युक्त पंक्तियों में भागचंद के रूप में दहेज विरोधी भावना को दर्शाया गया है।

इस प्रकर ये लोकगाथाएँ हिमाचल के जनमानस का आधार हैं। देवगाथाओं पर तो हिमाचली मानव का अस्तित्व टिका हुआ है।

"पहाड़ी लोगों के मानस की सरलता से लोकगाथाएँ भरी पड़ी हैं। यहाँ की नदियाँ यहाँ के जीवन और यहाँ के श्वेत पर्वत लोगों के हृदय की पवित्रता की कहानी कहते हैं। धार्मिक सहिष्णुता, दया और एक–दूसरे का आदर यहाँ के लोगों के जीवन का अंग है।"[24]

हिमाचली लोककथाओं में सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश

कथाओं का जन्म मानव के साथ हुआ है। जब से मानव है तब से कहानी है। लोकमानस में कहानियों का बहुत महत्व होता है। वे विभिन्न प्रकार के ज्ञान को कहानियों के माध्यम से समझते हैं।

"भारतवर्ष में प्राचीन साहित्य में लोककथाओं के संकलन संसार भर में प्रचलित लोककथाओं का आधार माने जाते हैं।"[25]

हिमाचल प्रदेशों में वहाँ के समाज और संस्कृति से जुड़ी लोककथाओं का अथाह भंडार है। धार्मिक कथाएँ, पौराणिक कथाएँ, पांडवों की कथाएँ, महाभारत की कथाएँ, रामायण की कथाएँ, कुछ पशु–पक्षियों से संबंधित कथाएँ कुछ नीति से संबंधित कथाएँ, कुछ शकुन–अपशकुन की कथाएँ। हिमाचल की लोककथाएँ वहाँ के जनमानस का आभूषण है। सामाजिक न्याय, सच्चाई का ईनाम, परंपराएँ, रहन–सहन, रीति–रिवाज आदि सभी कुछ इन कथाओं का हिस्सा है। एक लोकगाथा में राजा विक्रमादित्य के चरित्र में न्यायप्रियता की भावना को दर्शाते हुए समाज में न्याय के महत्व को स्पष्ट किया गया है–

जेहड़ा राजा विक्रमादित्य साईं पुरूसार्थ करे

से ही राजा एस सिंहासना पर पैर धरे।[26]

अर्थात् वही राजा इस सिंहासन पर बैठ सकता है जिसमें राजा विक्रमादित्य के समान पुरुषार्थ हो।

पारंपरिक लोककथाओं में बीरबल की कथाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

स्थानीय लोकपरंपराओं, विश्वासों और मान्यताओं के आधार पर भी यहाँ अनेक लोककथाओं का विकास हुआ। इस प्रकार की कथाएँ सामान्यतः घरों में सुनी–सुनाई जाती हैं।[27]

समाज में अनेक भाग्यवादी कथाएँ भी पाई जाती हैं। हिमाचल के लोग भाग्य पर बहुत अधिक विश्वास करते हैं।

भूजौ नहीं जमदौ, सूंचो नांई मोना रा होंदो

जौ लिओ कोरमे, सौ नहीं किरदी जांदो।[28]

अर्थात् भूना हुआ बीज उगता नहीं और मन की अभिलाषा पूर्ण नहीं होती पर जो भाग्य में लिखा है वह तो कहीं नहीं जाता।

शिव–पार्वती, रामायण, महाभारत के अनेक प्रसंगों के ऊपर भी लोककथाएँ भरी पड़ी हैं। इन कथाओं में लोकरुचि के अनुसार अनेक प्रयोग एवं परिवर्तन हुए हैं। पात्रों के नामों में विविधता, नए पात्र, घटना क्रमों में फेरबदल, स्थानों के वर्णन में आँचलिकता स्वतः ही परिलक्षित हो जाती है।

काँगडा क्षेत्र में भागवत पुराण के अनेक लोक–सुलभ संस्करण लोककथाओं में परंपरित हुए हैं। इन कथाओं में भी विषय–निर्वाह लोक–सुलभ आस्थाओं और मान्यताओं के आधार पर ही हुआ है।[29]

भूतप्रेतों की कथाएँ भी जनमानस के सामाजिक जीवन का हिस्सा होती हैं। पहाड़ी लोग भी इस रुचि–शुचि से अलग नहीं हैं। भूत–प्रेत की कथाओं का यहाँ भरपूर प्रचलन हैं। पहाड़ी क्षेत्र में अनेक ऐसे स्थान हैं जो परंपरागत रूप से भूत–पिशाचों की कहानियों से जुड़े हुए हैं। इन कथाओं को और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए इनके साथ आस–पड़ोस के किसी खंडहर, बीहड़ स्थल अथवा वृक्ष को जोड़ा जाता है।

इसके अतिरिक्त त्योहारों और उत्सवों को लेकर भी अनेक लोककथाओं का निर्माण किया गया है। त्योहार और मेले किसी भी समाज की चेतना के प्रतिबिंब होते हैं। लोहड़ी, शिवरात्रि, होली, वैशाखी, रक्षाबंधन, कृष्ण जन्माष्टमी, दशहरा, दीपावली आदि के अतिरिक्त अनेक स्थानीय त्योहार और मेले जैसे–जागरा, साजो, लवी मेला, मिंजर मेला, नलवाड़ी मेला, रिवालसर मेला, शांद (बकरीद), भुंडा महायज्ञ, काहिका, रेणुका मेला, शूलिनी मेला आदि सभी त्योहरों और मेलों से संबंधित लोककथाएँ हिमाचल के लोकसाहित्य का आधार हैं। भुंडा त्योहार में तो बलि प्रथा की अनेक कथाएँ सुनी–सुनाई जाती हैं। "निरमंड रामपूर तथा रोहडू के क्षेत्रों में भुंडा के अवसर पर विध्यात्मक नर बलि का प्रचलन भी संभवतः किन्हीं आदिम मान्यताओं से प्रभावित रहा है।[30]"

इन लोककथाओं में समाज के मानस को सबसे अधिक झकझोरने वाली कथाएँ हैं। नारी–बलि से संबंधित कथाएँ इस प्रथा के अंतर्गत बिलासपुर में रूपी राणी की बलि, चंबा में सूई राणी की बलि आदि मार्मिक कथाएँ हैं। राणी रूकमणी की कथा में रूकमणी के ससुर ने अपने राज्य में पानी की कमी और सूखे की समस्या के निवारण हेतु रूकमणी को जिंदा चिनवा दिया था। जिससे पूरे राज्य में खून की नदियाँ बह चली थीं। चंबा की 'सुकरात' भी इसी प्रकार की प्रसिद्ध लोककथा है।

सामान्यतः पहाड़ी लोककथाओं में मुख्य पात्र राजा–रानी, साहुकार–साहुकारिन, राजकुमार–राजकुमारिन तथा ब्राहमण आदि रहते हैं।

इसके अतिरिक्त संयुक्त परिवार से संबंधित अनेक लोककथाएँ हिमाचली लोकसाहित्य में देखने को मिलती हैं। संयुक्त परिवार भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता रही है। कुल्लुई लोकसाहित्य में तो बहुधा इसी प्रकार के परिवार का चित्रण हुआ है जहाँ दादा, माता–पिता, बेटा–बेटी, बहू आदि सभी हैं।

सौती जुगा सौती जुगारी बारी

रीख पीशा थी फाफरो, ब्राग आणथौं बाकरी चारी।

कली जुगा कली जुगा री बारी

शाशू खाली खौटिया, बेशिया खा बुआरी [31]

अर्थात् सतयुग में तो रीछ फाफरा पीस लाता था और शेर बकरी चराने जाता था परंतु आज कलयुग में सास कमाकर खाती है और बहू बिना कमाएँ खाती है।

इस प्रकार हमारे सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन का सच्चा और स्वाभाविक चित्रण लोककथाओं में भली–भाँति देखा जा सकता है।

"पहाड़ी लोकजीवन में जिन वस्तुओं का अभाव रहा है, लोककथाओं के माध्यम से उन सभी अभिलाषित वस्तुओं को साकार और सजीव कल्पना उस अभाव को पूरा करने का प्रयास करती है। कल्पनाओं के इन तानों–बानों से ही पहाड़ी लोककथाओं का आकार विकसित हुआ है।"[32]

हिमाचली लोकगीतों में सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश

हिमाचली में सबसे प्रसिद्ध है लोकगीत। लोकगीत लोकजीवन की बहुरंगी झलकियाँ पूर्ण समग्रता के साथ प्रस्तुत करते हैं। घर आँगन से लेकर मरण तक के सभी कार्य इन लोकगीतों के माध्यम से प्रस्तुत किए जा सकते हैं। लोकगीत श्रमसाध्य पहाड़ी जीवन को सरल व रोमांचकारी बनाने में सहायक होते हैं। इस विधा ने उनके जीवन के हर पहलू को छुआ है। यहाँ की कठिन जीवन परिस्थितियों में जितनी आवश्यकता भोजन और पानी की है उतना ही महत्व और आवश्यकता लोकगीतों की है। यहाँ के लोगों में आपसी सहयोग की भावना को प्रस्तुत करता ये लोकगीत कुछ इस प्रकार है–

चानणी ओची री हुण धारा

ओ दाणे री रवारी लगीरी दारा

मिली के पैन्हणा होर खाणा

ओ केसी जो पता नी केभे जाणा [33]

अर्थात् चोटी पर प्रकाश या चाँदनी उभर आई है, अन्न के ढेर द्वार पर लग गए हैं, आओ सब मिल–जुलकर पहनें खाएँ क्या पता कब कौन इस संसार से चला जाए।

पहाड़ी लोकगीतों में प्रकृति हमेशा मनुष्य की सहचरी रही है। प्रकृति हमेशा उनके हर सुख–दुख में सदा साथ रही है।

"चाँदनी, धूप, बिजली, वर्षा, आँधी, बाढ़, सूरज, चंद्र, नदी, नाले, घाटियाँ और चोटियाँ आदि सभी के प्रतीयमान तत्व लोकगायकों की भावनाओं को अभिव्यक्त करने में सहायक रहे हैं। वस्तुतः पहाड़ी लोकमानस का प्रकृति से पूर्ण तादात्म्य रहा है।"[34]

कन्यादान के समय लड़की के मनोभावों को इस लोकगीत में कुछ इस प्रकार बताया गया है–

शंख बजाया कुलजै पुरोहितै, इंद्राला खबर शुनाई।

आजा तैंई बापुआ कन्या कुआंरी, आज हुई घौराई बाहरी

आमेंबी शोटे, बापुए शोटे, आज रामा मुठडुए तेरे।[35]

इसी तरह विदाई के गीत भी बड़े मार्मिक हैं।

धानौ बौए बेटीए देउड़ी दुआरे, आजौ छूटौ सौंगणी केरो साथा।

धानौ बौए बेटीए देउड़ी दुआरे, आजौ छूटौ बेटीय गुडी केरो साथा।

धानौ बौए बेटीए देउड़ी दुआरे, आजौ छूटौ बेटी का बाबू केरो घरा।[36]

इसी के साथ–साथ त्योहार, पर्व, व्रत और देवी–देवताओं के गीत भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं। शिवरात्रि, जन्माष्टमी, रामायण प्रसंग, भेंटें, नृत्य–गीत, फलालु, नाटी गीत, मेला गीत आदि हिमाचली जीवन एवं संस्कृति के प्रमाण हैं। जन्माष्टमी में कृष्ण जन्म समय का गीत कुछ इस प्रकार है–

बोले रे मोहुआ, बेटेया दो दर्शणा लैई।

ऐसा बेटा कभी न जन्मा, बेटो जमो आपु भगवानों।[37]

अर्थात् देवकी को जगाते हुए वासुदेव बोल रहे हैं कि उठकर बेटे के दर्शन कर लो ऐसा बेटा कहीं नहीं जन्मा स्वयं भगवान हमारा बेटा बनकर आए हैं।

रामायण प्रसंग की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है–

रामा गेणो चंद्रमों जोदया रे ठाए

गुरु गेणो वाशिष्टा लाखण भाए

सीता गेणो भारतज, राजा जनकारे जाए

राणी गेणें केउके जिए बांडे कराए।[38]

अर्थात् आयोध्या में चंद्रमा जैसे राम हैं जिनके गुरु ऋषि वशिष्ट हैं और लक्ष्मण उनके भाई हैं। सीता उनकी पत्नी हैं जो राजा जनक की पुत्री हैं। एक रानी कैकेई है जिसने सबको अलग–अलग कर दिया है।

इन लोकगीतों में कई जगह बुराईयों से बचने के उपदेश भी होते हैं–

ओ रे पड़ा ओ मंडी शहरा लो

पोरे कुल्लू रा बागा, लोहड़ी पोरे कुल्लु रा बागा।

हुक्का नी पाणी मेरे भाईयो छाती लगदा दागा।[39]

हिमाचल की सुंदरता और रहन–सहन, खान–पान को लेकर भी अनेक गीत गाए जाते हैं जो सामाजिक जीवन का आधार हैं जैसे–

ओढ़ने जो पाटु, बछयाणे जो सेले, ना छोड़े फटदे, ना हुंदे मैले।

छेलुआ–भेडुआ जो लेई किथी चलेया गदिया, ठंडा पहाड़ छाड़ी तेथी, सुका चंगर मेलेया।

ठंडी–ठंडी हवा ठंडा जे पाणी हो, बांका पहाड़ा दा बसणा ओ जिंदे।

सारे मुल्क हांड़ी फिरी देखी लये, क्या एस दिलारा ओ जिंदे।[40]

शकुन–अपशकुन के गीत भी हिमाचल में काफी प्रचलित हैं जैसे–

अरी भियाणीए, कोने कीए काहणी शुणी,

याणी बाली बे उमरे हुई मौता, चीड़ी डाला री रूणी।[41]

अर्थात् अरी भियाणी कानों में यह क्या कथा सुन ली, किसी नौजवान की मौत हो गई है, यह चिड़िया शाखा पर रो रही है।

इस प्रकार देखा जाए तो जीवन का हर पहलू इन लोकगीतों में देखा जा सकता है। जन्म, नामकरण, चूड़ाकर्म, उपनयन, विवाह, गाडर, नहलाने के गीत, पौराणिक कथाओं के गीत, ऐतिहासिक राजाओं के गीत, प्रकृति के गीत, पहाड़ी संस्कृति, रहन–सहन, खानपान, वेशभूषा के गीत, त्योहारों, मेलों के गीत, मरण समय के गीत हर रीति–रस्म के गीत हिमाचली लोकसाहित्य में मिलते हैं। जीवन का ऐसा कोई भी भाग नहीं होगा जहाँ लोकगीत नहीं होंगे। अतः लोकगीत हिमाचली जीवन और संस्कृति के आधार तत्व हैं।

हिमाचली प्रकीर्ण साहित्य में सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश–

लोकसाहित्य में प्रकीर्ण साहित्य की अपनी विशिष्ट भूमिका होती है। जब जनमानस अपनी अत्यंत निजी भावों तथा अभिव्यक्तियों को प्रकट करता है तो इसी साहित्य के माध्यम से करता है। हिमाचली लोकसाहित्य में जनजीवन के संपूर्ण सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन का लेखा–जोखा इसी प्रकीर्ण साहित्य में मिलता है। इसके अंतर्गत कहावतें, पहेलियाँ, लोकोक्तियाँ तथा मुहावरें शामिल किए जाते हैं। पहाड़ी बोलियों में कहावतों तथा लोकोक्तियों की प्रचुर मात्रा मिल जाती है। इस साहित्य में सामाजिक सत्य, लेन–देन, प्रवृतियाँ, शकुन–अपशकुन, हास्य, स्नेह, ज्ञानसूचक, रीति–रिवाज, संस्कृति आदि सभी से संबंधित प्रकीर्ण साहित्य

मिलता है। मानव मस्तिष्क की भावधारा को समझने में पहेलियाँ भी अपनी विशेष भूमिका निभाती हैं। इस साहित्य के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन से संबंधित कुछ ऐसी वस्तुएँ जिनका दैनिक जीवन में महत्व है। इन वस्तुओं से जुड़ी अनेक पहेलियाँ हैं जैसे–

1. आर भी झूलौ पार भी झूलौ
माँझै कैमटू फूलौ। (मक्खन)

2. एकी भाई ए पेटो दी दांद (एक भाई के पेट में दाँत)। (कद्दू)[42]

3. ठैन–ठैन रानिचु सांतनि बाबू (ठक–ठक की आवाज करने वाला बनावटी बाबू)। (चिमटा)[43]

4. नारो–नारो नारशिम माशकोच (गिन–गिन कर भी गिरना कठिन)। (आकाश के तारे)[44]

लोकोक्तियाँ लोकसाहित्य का अभिन्न अंग है। इनमें जनजीवन के समस्त पहलू समाहित हो जाते हैं।

ऊँची दूकान फीका पकवान कहावत का किन्नौरी रूप इस प्रकार है–

1. मी जिगित्चु बातड्. तेग (आदमी छोटा बात बड़ी)[45]

2. इम्या चोरसे, राया चोरसे (एक दिन का चोर, सौ दिन का चोर)[46]

अर्थात् जो एक बार चोरी का आदी बन जाता है वह हमेशा चोरी करने के लिए ललचाता रहता है।

3. अफरो चीज ला कुने मर ना बोलदो (अपनी चीज को कोई बुरा नहीं कहता)

4. पेटिड्. ताडे.स ज्वापरिड्. (पेट के लिए मौत के मुहँ में)[47]

अर्थात् पेट की खातिर (रोजी–रोटी के लिए) बहुत से खतरे मोल लेने पड़ते हैं।

5. स्याणे ओ बोल, आंबड़ेया स्वाद, पाछा लागो मीठो[48]

अर्थात् बुजुर्गों की कही बात और आंवले की मिठास का बाद में पता लगता है।

6. छारा री मारी लात आऔ मुहालै[49]

अर्थात् राख में पैर मारने से वो मुहँ पर ही उड़कर आती है या बुरे व्यक्ति को मुहँ लगाने से हानि होती है।

7. हांडे ओ छवा आणु शैई, बेशोओ छवा आणु चैई[50]

अर्थात् राह में चलते–चलते रात हो जाए तो कोई बात नहीं बैठे–बैठे रात नहीं होनी चाहिए यानी मेहनत करनी चाहिए जीवन में यूँ बैठकर जीवन व्यतीत नहीं करना चाहिए।

इन लोकोक्तियों के अतिरिक्त जनजीवन से जुड़े कुछ मुहावरे भी हिमाचली प्रकीर्ण साहित्य में देखे जा सकते हैं जैसे–

1. पाचे पाणी (पत्ते पर पानी) 2. देशे–देशे नाचाणो (अपमानित करना) 3. दान्द पचोकणे (मुहँ बनाना) 4. शीले कोदरे साही चेकणो (बुरी तरह पीटना) 5. गौड़ौ काटडू (गले का हार) 6. थूके आरशू (थूक के आँसू) 7. सीउं ध्याड़ी ओ परेशी (दिन में दीपक जलाना)[51]

इस प्रकार प्रकीर्ण साहित्य लोकानुभूति का प्रतिबिंब कहा जा सकता है। इसमें जनजीवन से जुड़ी हर छोटी–बड़ी आवश्यकता से जुड़ी हर चीज से संबंधित साहित्य मिलता है। इसलिए प्रकीर्ण साहित्य का भी लोकसाहित्य में अपना विशेष महत्व है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हिमाचली लोकसाहित्य चाहे लोकगाथा हो, लोककथा हो, लोकगीत हो या प्रकीर्ण साहित्य हो सबमें हिमाचली जनजीवन की सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन की बहुरंगी झलकियाँ देखने को मिलती हैं। लोकसाहित्य हिमाचली जीवन की आधारशिला कही जा सकती है। ग्राम्य जीवन, ग्राम्य संस्कृति, ग्राम्य रीति–रिवाज, ग्राम्य परिवेश आदि सभी की विस्तृत जानकारी इस साहित्य में मिलती है। अतः हिमाचली लोकसाहित्य में हिमाचली जीवन सत्य, सौंदर्य एवं

परोपकार की भावनाओं को स्पष्ट रूप से जाना व समझा जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा, श्रीराम, लोकसाहित्यः सिद्धांत और प्रयोग, आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर, 1976, पृ. 3

2. गुप्त, गणपतिचंद्र, हिंदी भाषा एवं साहित्य विश्वकोश, खंड (3), नई दिल्ली, एटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 1995, पृ. 1022

3. संतराम, अनिल, कन्नौजी लोकसाहित्य, दिल्ली, अभिनव प्रकाशन, 1975, पृ. 22

4. शर्मा, श्रीराम, लोकसाहित्य : सिद्धांत और प्रयोग, आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर, 1976, पृ. 3

5. गुप्त, गणपतिचंद्र, हिंदी भाषा एवं साहित्य विश्वकोश, खंड (3), नई दिल्ली, एटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 1995, पृ. 1027

6. गौतम, सुरेश, लोकसाहित्य : व्याप्ति और यथार्थ, नई दिल्ली, संजय प्रकाशन, 2008, पृ. 8

7. शर्मा, श्रीराम, लोकसाहित्य : सिद्धांत और प्रयोग, आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर, 1976, पृ. 3

8. गौतम, सुरेश, लोकसाहित्य : व्याप्ति और यथार्थ, नई दिल्ली, संजय प्रकाशन, 2008, पृ. 5

9. वही, पृ. 6

10. गौतम, सुरेश, लोकसाहित्य : व्याप्ति और यथार्थ, नई दिल्ली, संजय प्रकाशन, 2008, पृ. 54

11. वही, पृ. 147

12. गौतम, सुरेश, लोकसाहित्य : व्याप्ति और यथार्थ, नई दिल्ली, संजय प्रकाशन, 2008, पृ. 194

13. कश्यप, पद्मचंद्र, कुल्लुई लोकसाहित्य, दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1972, पृ. 64

14. इंदरसिंह नामधारी, 164.100.47.132

15. गुलेरी, प्रत्युष, हिमाचली लोककथा, नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंड़िया, 2007, (भूमिका)

16. भारद्वाज, हेतु, आज के परिवेश की चुनौतियाँ और साहित्य, जयपुर, पंचशील प्रकाशन, 1984, पृ. 12

17. जोशी, पूरनचंद्र, अवधारणाओं का संकट, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1995, पृ. 127

18. कश्यप, पद्मचंद्र, कुल्लुई लोकसाहित्य, दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1972, पृ. 131

19. वही, पृ. 138

20. सिंह, भावनी, हिमाचल की लोकगाथाएँ, जयपुर : एकीकृति हिमालयन अध्ययन संस्थान हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय एवं लिट्रेरी सर्किल, 2010, पृ. 105

21. सिंह, भावनी, हिमाचल की लोकगाथाएँ, जयपुर, एकीकृति हिमालयन अध्ययन संस्थान, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय एवं लिट्रेरी सर्किल, 2010, पृ. 105

22. वही।

23. वही, पृ. 239

24. www.divyahimachal.com/carrers-and-jobs/career/हिमाचली जनजीवन / जनवरी 31,2012

25. शर्मा, वंशीराम, किन्नर लोकसाहित्य, हिमाचल प्रदेश, ललित प्रकाशन, 1976, पृ. 95

26. हांडा, ओमचंद्र, पश्चिमी हिमालय की लोककथाएँ, नई दिल्ली, इंडस पब्लिशिंग कंपनी, 1988, पृ. 55

27. वही, पृ. 54

28. कश्यप, पद्मचंद्र, कुल्लुई लोकसाहित्य, दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1972, पृ. 184

29. हांडा, ओमचंद्र, पश्चिमी हिमालय की लोककथाएँ, नई दिल्ली, इंडस पब्लिशिंग कंपनी, 1988, पृ. 56

30. वही, पृ. 60

31. कश्यप, पद्मचंद्र, कुल्लुई लोकसाहित्य, दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1972, पृ. 215

32. हांडा, ओमचंद्र, पश्चिमी हिमालय की लोककथाएँ, नई दिल्ली, इंडस पब्लिशिंग कंपनी, 1988, पृ. 50

33. वही, पृ.33, पृ.36

34. वही, पृ.34

35. कश्यप, पद्मचंद्र, कुल्लुई लोकसाहित्य, दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1972, पृ. 93

36. वही, पृ. 95

37. वही, पृ. 100

38. वही, पृ. 102

39. हांडा, ओमचंद्र, पश्चिमी हिमालय की लोककथाएँ, नई दिल्ली, इंडस पब्लिशिंग कंपनी, 1988, पृ. 47

40. वही, पृ. 47, 48

41. हरनोट, एस.आर., हिडिम्ब, पंचकुला, आधार प्रकाशन, 2004, पृ. 116

42. कश्यप, पद्मचंद्र, कुल्लुई लोकसाहित्य, दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1972, पृ. 154

43. शर्मा, वंशीराम, किन्नर लोकसाहित्य, हिमाचल प्रदेश, ललित प्रकाशन, 1976, पृ. 154

44. वही, पृ. 139

45. शर्मा, वंशीराम, किन्नर लोकसाहित्य, हिमाचल प्रदेश : ललित प्रकाशन, 1976, पृ. 138

46. वही, पृ. 139

47. वही, पृ. 140

48. कश्यप, पद्मचंद्र, कुल्लुई लोकसाहित्य, दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1972, पृ. 170

49. वही, पृ. 171

50. वही, पृ. 173

51. वही, पृ. 184

– ई–27, सेक्टर–14, पंजाब विश्वविद्यालय परिसर, चंडीगढ़–160014

❑❑❑

सिनेमा की सशक्त स्त्री अदाकारा : 'इंग्लिश–विंग्लिश' और 'मॉम' फिल्म के झरोखे से

डॉ. तृप्ता

बॉलीवुड अभिनेत्री 'श्रीदेवी' मात्र चौवन वर्ष की उम्र में 24 फरवरी 2018 को सिने जगत और अपने सभी चाहने वालों को गमहीन बना इस भौतिक दुनिया को छोड़ गईं। उनके अकस्मात् दुखद अंत को हम महज उनकी नियति ही मान सकते हैं। बतौर अदाकारा उनकी छवि, उनका अभिनय–कौशल लाजवाब है। उन्होंने लगभग चार वर्ष की आयु से सिने जगत का सफर शुरू किया था। श्रीदेवी की बेहतरीन अदाकारी का नमूना उनकी तमाम फिल्में मसलन सदमा, लम्हें, चाँदनी, चालबाज, तोहफा, जुदाई आदि में दर्शनीय है। हालाँकि इनके अतिरिक्त भी उनकी फिल्मों की एक लंबी सूची है। हम सभी उन फिल्मों से परिचित हैं। श्रीदेवी का 'स्टारडम' उनके सभी प्रशंसकों के जेहन में सुनहरी यादों के तहत ताउम्र शुमार रहेगा।

श्रीदेवी के फिल्मी सफर में अगर स्त्री सशक्तिकरण के नजरिए से बात करें तो मुझे उनकी चुनिंदा फिल्म 'इंग्लिश–विंग्लिश' बहुत ही उम्दा लगी। यहाँ इस बात का यह अर्थ कतई नहीं निकलता कि उनकी बाकी फिल्में मुझे प्रिय नहीं हैं, बल्कि उनकी सारी फिल्मों और उनके मीठे–मीठे गीत मेरे जेहन के कोने में अपना जमावड़ा बनाए हुए हैं। मैं बार–बार उन्हें देखना और गीत सुनना पसंद करती हूँ। फिल्म निर्देशिका गौरी शिंदे की यह फिल्म मेरी पसंदीदा फिल्म है। इसमें श्रीदेवी एक उम्रदराज घरेलू स्त्री की भूमिका में अपनी उपस्थिति दर्ज करती हैं। पत्नी, माँ, बहन, मौसी के रूप में एक सामान्य घरेलू महिला का किरदार उन्होंने बखूबी निभाया है। फिल्म एक सशक्त स्त्री का उम्दा उदाहरण पेश करती है। नायिका शशि गौड़बोले आज शहरी घरेलू महिला के खाँचे से बाहर निकलकर दुनिया के समक्ष अपनी पहचान बनाती हैं। जाहिर है यह आर्थिक स्वावलंबन की ओर पहल करती है। सेल्फ–रेस्पेक्ट की नई परिभाषा गढ़ती है। वह आत्मविश्वास तथा उत्साह से लबरेज होकर अपना आर्थिक योगदान परिवार में दर्ज करती है। लिहाजा इंग्लिश न बोल पाने के कारण वह अनेकानेक बार उपहास का पात्र बनती है। पति अपनी पुरुषवादी सोच के तहत काम छोड़ने का दबाव उस पर गाहे–बगाहे बनाते रहते हैं। बेटी उनकी रेस्पेक्ट नहीं करती, किंतु फिर भी वह निराश नहीं होती, बल्कि पति से सवाल करती हैं कि उसे ऐसा क्या– करना चाहिए। वह अपनी अंग्रेजी सीखने की चाहत को बहन की बेटी के विवाह के लिए अमरीका आकर एडमिशन लेकर शिद्दत से पूरा करती हैं। दरअसल गौरी शिंदे अपने इस सशक्त स्त्री किरदार की शख्सियत को यहाँ बखूबी उजागर करती हैं। शशी पितृसत्तामक सोच के घेरे को तोड़कर एक लंबी सामाजिक –पारिवारिक लड़ाई को झेलकर, लड़कर अंततः अपना स्वतंत्र आत्म–सम्मान वाला मुकाम हासिल करती हैं। अपनी स्वतंत्र आर्थिक जिंदगी को वह अपनी मनचाही शर्तों पर मर्यादापूर्वक जीना

चाहती है वह एक सुघड़ नृत्यांगना एवं पूर्णतः भारतीय मोहक स्त्री–छवि को पेश करती है। स्वादिष्ट लड्डू एवं व्यंजन बनाने के हुनर द्वारा विदेशी सहपाठी मित्रों का भी मन मोह लेती है। अंततः परीक्षा के रूप में उसकी स्पीच, रिश्तों की परिभाषा, परिवार–प्रेम, सुखद अंत और नई शुरुआत की ओर पहल करती है।

दरअसल फिल्म की कथा, नाम, पात्र, चरित्र, संवाद, अभिनय, गीत–संगीत, वेशभूषा, उद्देश्य सभी मायनों में फिल्म को यादगार बनाते हैं। फिल्म स्त्री–जीवन के सभी टैबूज पर जीत का परचम लहराती है। बहरहाल गौरी शिंदे ने एक स्त्री हीरो, स्त्री आइकॉन के द्वारा समस्त आम महिलाओं को सशक्त, जागरूक एवं आधुनिक कामकाजी बनने की प्रेरणा प्रदान की है।

इसी शृंखला में श्रीदेवी की एक अन्य सशक्त विषय और भूमिका वाली फिल्म है 'मॉम'। फिल्म रवि उदयवर द्वारा डायरेक्ट की गई है। सौतेली माँ की सशक्त भूमिका में श्रीदेवी ने बेहतरीन अभिनय किया है। नायिका देवकी ने आया की सौतेली माँ और टीचर दोनों की भूमिकाएँ बड़ी शिद्दत से निभाई हैं। परिवार में देवकी के पति आनंद और छोटी बेटी प्रिया भी है। बड़ी बेटी आर्या देवकी को माँ का दर्जा नहीं देती है, अपितु स्कूल की भाँति उन्हें घर में भी मैम कहकर पुकारती है। यह बात उसके पिता को हमेशा नागवार गुजरती है, लेकिन देवकी हमेशा आर्या को बड़ी बेटी की तरह तरजीह देती है। आर्या माँ के प्यार और व्यवहार को हमेशा नकार देती है। फिल्म में देवकी दोहरी भूमिका वर्किंग वूमन और घेरलू दायित्वों को निभाती हुई हमारे जैसी आम स्त्री की तरह भागती–दौड़ती नजर आती हैं। उनकी दोनों ही छवियाँ अत्यंत अहम् हैं।

फिल्म की कहानी में जबर्दस्त बदलाव उस वाकए से आता है, जब पिता की अनुपस्थिति में आर्या फ्रेंड्स पार्टी की रात अपहृत होकर गैंगरेप का शिकार हो जाती है। दरअसल देवकी कक्षा के एक छात्र का मोबाइल फोन पर मैसेज देखकर फेंक देती है और आर्या पार्टी में जगन के साथ डांस करने से मना कर देती है तो वह दोनों अपनी नाराजगी अपने साथियों के साथ मिलकर गैंगरेप कर दर्शाता है। रातभर खोजने के बाद आर्या अत्यंत दयनीय हालत में अस्पताल में मिलती है। देवकी पूरी शिद्दत से उसका ख्याल रखती है। अपराधी अदालत से बरी हो जाते हैं। तमाम सबूत मिटा दिए जाते हैं। इस हादसे से आर्या पूर्णतः टूट जाती है। वह गुमसुम–सी रहने लगती है। देवकी से उसकी यह हालत देखी नहीं जाती, लिहाजा वह अपराधियों के खिलाफ मोर्चा खोल देती है और हर अपराधी किरदार को अपनी स्त्री–शक्ति व सूझबूझ द्वारा सजा देती है। इस कार्य में वह प्राइवेट डिटेक्टिव की मदद भी लेती है। पुलिस ऑफिसर को भी भ्रम में डाल देती है। अंततः कुफरी में पुलिस ऑफिसर स्वयं देवकी की मदद करता है और उसे अपनी बंदूक दे देता है अपराधी को मारने के लिए। इसी दौरान क्लाइमैक्स में आर्या द्वारा 'शूट हिम मॉम' कहना अत्यंत भावुक कर देता है और सौतेली माँ की सभी परिभाषाएँ फिल्म का अंत खारिज कर देती हैं तथा नई परिभाषा गढ़ती है– केवल 'मॉम' अर्थात् 'माँ'।

दरअसल फिल्म वर्तमान में स्त्री असुरक्षा और बढ़ते बलात्कार जैसे मामलों पर कई सवाल खड़े करती है। इस फिल्म को हम इमोशनल थ्रिलर भी कह सकते हैं। फिल्म की कहानी प्रासंगिक और अभिनय दमदार है। नायिका प्रतिशोध लेने वाली माँ की सशक्त भूमिका द्वारा कहानी को मजबूती प्रदान करती है। नायिका के पति आनंद भी उनका बखूबी साथ निभाते हैं। नवाजुद्दीन सिद्दीकी और अक्षय खन्ना भी महत्वपूर्ण रोल से कहानी को बढ़ाते हैं। सजल अली (आर्या) की एक्टिंग भी मैच्योर रूप में अभिनीत की गई है। फिल्म की थीम के मुताबिक सेंटर ऑफ अट्रेक्शन श्रीदेवी (देवकी) ही है। हम सभी श्रीदेवी की एक्टिंग के जादू से प्रभावित होते हैं। 'मॉम' फिल्म अपने नाम को बखूबी सार्थक करती है। कहानी में रियल एक्टिंग और रोंगटे खड़े कर देने वाले सीन भी फिल्माएँ गए हैं। देवकी कानून के गलत फैसले को सिरे से नकार कर स्वयं 'चंडी शक्ति' बन

अपराधी दरिदों का संहार करती है और अपनी बेटी को स्त्री–शक्ति द्वारा इंसाफ दिलाती है। अंततः पुलिस द्वारा देवकी की सहायता करना भी प्रशंसनीय है। बेटी द्वारा अंततः माँ की स्वीकारोक्ति अत्यंत सुंदर है। फिल्म के अन्य पात्र, संवाद, संगीत, वेशभूषा, परिवेश सभी सराहनीय हैं।

बहरहाल, उक्त दोनों स्त्री–प्रधान फिल्मों में सशक्त स्त्री के जज्बे को दर्शाया गया है। दोनों फिल्में स्त्री–शक्ति को सैल्यूट करती हैं। एक अद्भुत स्त्री–शक्ति का संचार करती है। स्त्री जीत का परचम फहराती है। वर्तमान यूथ में बढ़ते एग्रेशन और नकारात्मकता को दंड देकर हल तलाशती है। लिहाजा हम सभी को बतौर दर्शक ऐसी फिल्मों से प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. फिल्म सी. डी.
2. फिल्म समीक्षा पत्र–पत्रिकाएँ

– प्रवक्ता, हिंदी विभाग, अदिति महाविद्यालय बवाना, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

❑❑❑

भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का अक्षय कोश : दशम ग्रंथ

डॉ. ममता सिंगला

भारतीय संस्कृति विश्व के मानव इतिहास की एक अमूल्य निधि है। यही एकमात्र ऐसी संस्कृति है जो अनेक तूफानों और आँधियों से जूझती हुई, आज भी अपनी महत्ता को जन–जन के हृदय में स्थापित किए हुए है। उसकी अपनी एक गौरवशाली परंपरा है, जिसके दर्शन न केवल ऐतिहासिक ग्रंथों में किए जा सकते हैं, वरन् साहित्य, कला, विज्ञान, दर्शन आदि नाना विषयों में इसकी स्पष्ट झाँकी दृष्टिगोचर होती है। सामान्य रूप से संस्कृति सीखे हुए व्यवहारों की वह समग्रता है जिसमें एक व्यक्ति का व्यक्तित्व पलता– पनपता और पशु–स्तर से ऊँचा उठता है। कुछ विद्वानों का मत है कि 'संस्कृति' शब्द संस्कार का रूपांतर है। एक व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक अपने जीवन को परिमार्जित करने के लिए अनेक प्रकार के संस्कार करता है, तब कहीं जाकर वह सुसंस्कृत कहलाता है। अतः जीवन की शुद्धि के लिए किए जाने वाले आवश्यक कृत्यों या संस्कारों की योजना को संस्कृति मान लिया गया। डॉ. राधाकृष्णन संस्कृति को विवेक, बुद्धि से जीवन को भली प्रकार जान लेना ही मानते हैं। वस्तुतः संस्कृति किसी देश, समाज या जाति की आत्मा होती है, जिनके सहारे वह अपने सामूहिक या सामाजिक जीवन–व्यवस्था, लक्ष्यों एवं आदर्शों का निर्माण करता है। यह संस्कृति एक विशिष्ट मानव–समुदाय के उन उदात्त गुणों को इंगित करती है, जो मानव–जाति में सर्वत्र पाए जाते हैं किंतु उस समुदाय में उनका रूप एक विशिष्ट प्रकार का होता है। भारतीय संस्कृति की अपनी अनेक निजी विशेषताएँ हैं, जो उसे अन्य राष्ट्रों की संस्कृतियों से पृथकता प्रदान करती हैं। भारतीय संस्कृति में धर्म, अध्यात्म, ललित कलाएँ, ज्ञान– विज्ञान, विविध विधाएँ, नीति, जीवन–प्रणालियाँ और वे समस्त कार्य हैं, जो उसे विशिष्ट बनाते हैं और जिन्होंने भारतीयों के सामाजिक और राजनैतिक विचारों को, धार्मिक और आर्थिक जीवन को साहित्य, शिष्टाचार और नैतिकता में ढाला है।

हिंदी साहित्य के रीतिकाल में जब केवल आत्मप्रदर्शन हेतु काव्य को अधिक–से–अधिक जटिल बनाकर लक्षण–ग्रंथों का प्रणयन किया जा रहा था, अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न रखने के लिए उनकी झूठी वीरता का गान अतिश्योक्तिपूर्ण रूप से हो रहा था, सुरा और सुंदरी के नशे में नग्न राजा अपनी रुचि के अनुरूप शृंगार रस से सिक्त काव्य–रचना करने वाले कवियों को ही प्रश्रय प्रदान कर रहे थे, तब गुरु गोविंद सिंह ने भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों एवं राष्ट्रीयता की भावना को अपने काव्य का मुख्य स्वर घोषित किया। युग–चेतना एवं समयानुसार राष्ट्र की आवश्यकता को दृष्टि में रखकर उन्होंने अनेक प्रसिद्ध काव्य–कृतियों की रचना की। ये सभी रचनाएँ दशम ग्रंथ के अंतर्गत संगृहित हैं। उन्होंने जिस प्राणवान सांस्कृतिक चेतना, राष्ट्रीय स्वाभिमान एवं धर्म–रक्षा का भाव जन–जीवन में जागृत किया था,

उससे संपूर्ण दशम–ग्रंथ आंदोलित है। प्रकाशित एवं प्राचीन हस्तलिखित संग्रह–ग्रंथों के आधार पर संपादित उपलब्ध दशम ग्रंथ में गुरु साहब की 17 रचनाएँ संकलित हैं।[1] जापु, अकाल स्तुति, विचित्र नाटक, चंडी–चरित्र, ज्ञान–प्रबोध, चौबीस अवतार, शस्त्रनाममाला आदि उनकी सभी रचनाओं में भारतीय सांस्कृतिक मूल्य लड़ी में पिरोए हुए से प्रतीत होते हैं।

वस्तुतः धर्म और संस्कृति किसी भी राष्ट्र को अस्तित्व में लाने वाले प्रमुख उपादान हैं। किसी भी राष्ट्र का स्वरूप उसकी संस्कृति के कारण बना रह सकता है। संस्कृति के उदयास्त से ही राष्ट्र का उदयास्त होता है। भारतीय राष्ट्र के उत्थान का कारण भारतीय संस्कृति का सर्वात्मना पालन ही हो सकता है और स्वकीय संस्कृति का त्याग ही अवनति का मूल है। भारतीय मानव–जीवन में इस लोक की उन्नति के साथ पारलौकिक सिद्धि का भी अत्याधिक महत्व है। अतः भारतीय संस्कृति के मुख्यतः दो पक्ष हो जाते हैं – प्रवृत्ति और निवृत्ति। प्रवृत्ति मार्ग का लक्ष्य अभ्युदय अर्थात् लौकिक एवं भौतिक जीवन की उत्पत्ति है और निवृत्ति भाग का लक्ष्य निःश्रेयस अर्थात् आध्यात्मिक एवं पारलौकिक सिद्धि है। जिन चेष्टाओं या कार्यों से अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों की सिद्धि होती है, वही धर्म है। धर्म की यही भावना भारतीय संस्कृति की आत्मा है। गुरु गोविंद सिंह ने धर्म के दोनों पहलुओं अभ्युदय और निःश्रेयस को समान महत्व देते हुए दोनों की सिद्धि पर विशेष बल दिया है। उन्होंने धर्म को सामाजिक न्याय के रूप में देखा था। धर्म की रक्षा के लिए उन्होंने अपनी कर्मभूमि में पदार्पण किया तथा युग की विघटनकारी शक्तियों का नाश करके शांतिपूर्ण समाज की स्थापना करने में ही जीवन की सार्थकता समझी। उनके कर्तव्य–कर्म एवं धर्म की रक्षा का यही भाव दशम ग्रंथ में इस प्रकार व्यक्त हुआ है–

हम इह काज जगत मो आए। धरम हेतु गुरुदेव पठाए।
जहाँ तहाँ तुम धरम बिचारो। दुसट दोखियानि पकरि पछारो।
याही काज धरा हम जनमं। समझ लेहु साधू सम मनमं।
धरम चलावन संत उबारन। दुशट सभन को मूल उपारन।। (जापु)

गुरु गोविंद सिंह की दृष्टि में मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म है – अपने कर्तव्यों का पालन निःस्वार्थ भाव से करना, भले ही इसके लिए उसे अपने प्राण न्यौछावर करने पड़ें, अपने प्रियजनों का साथ छोड़ना पड़े या भीषण कठिनाईयों का सामना करना पड़े। युग एवं परिस्थिति के अनुरूप दशम गुरु यह जान गए थे कि उनका धर्म सत्य का साथ देने एवं असत्य का नाश करने में ही निहित है। धर्म–युद्ध में सदैव विजयी होने तथा शुभ–कर्मों से कभी विरत न होने का भाव दशम ग्रंथ में इस प्रकार उल्लिखित है –

देहि शिवा वर मोही इहै शुभ करमन तै कबहूँ न टरों।
न डरो अरि सों जब जाइ लरों निसचै कर अपनी जीत करों।
सिक्ख हों आपने ही मन को इह लालच हड गुन तउ उचरों।
जब आव की अरध निदान बनै अति ही रन मैं तब जूझ मरौं।

(चंडी–चरित्र उक्ति विलास)

भारतीय संस्कृति में 'अध्यात्म' का विशेष स्थान है। भारतीय परंपरा में ईश्वर को परम सत्य स्वरूप माना गया है। प्रत्येक भारतीय चाहे वह वृद्ध हो या बालक, शिक्षित हो या अशिक्षित, निर्धन हो या धनवान, परमात्मा की परम शक्ति पर विश्वास करता है। जगत की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय के लिए वह केवल परमात्मा को ही कारण–स्वरूप मानता है। उसकी यह आस्था है कि हमारे समस्त क्रिया–कलाप तथा जगत की प्रत्येक क्रिया ईश्वर द्वारा नियंत्रित होती है। इसीलिए उसने ब्रह्मा, विष्णु, महेश की कल्पना की। इसी प्रकार जीवन के अन्य पक्षों से संबद्ध अन्य देवी–देवताओं को भी उसने मूर्तिमान किया हुआ है। यद्यपि जीवन को अधिक सुखमय एवं शांतिमय बनाने के लिए मनुष्य ने अनेक भौतिक वस्तुओं का आविष्कार

कर लिया है तथापि वह उस परम शक्ति के समक्ष आज भी उसी प्रकार नतमस्तक होता है, जैसे प्राचीन काल में होता था। दशम ग्रंथ में (जापु) ब्रह्म विषयक विचारों को समझने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वस्तुतः 'जापु' का दशम ग्रंथ में वही स्थान है जो आदि ग्रंथ में 'जपु साहिब' का है। इस कृति में गुरु साहब ने स्पष्ट लिखा है – "अरूप है, अनूप है, अजूप है, अभूप है, अलेख है, अभेख है, अगम है, अकाल है।" दशम ग्रंथ में भारतीय संस्कृति के आधार ग्रंथ वेदों में वर्णित ब्रह्म के नेति स्वरूप के अनुरूप ही ईष्ट देव का वर्णन निर्गुण–निराकार रूप में मिलता है। गुरु गोविंद सिंह ने रूप–रेख विहिन, अनादि, अजन्मा आदि संबोधन प्रयुक्त करते हुए लिखा है – "चक्र चिह्न अरु बरन जाति अरु पाति नहिन जिह। रूप रंग अरु रेख भेख कोऊ कहि न सकति किह।" कुछ विद्वान दशम ग्रंथ में संकलित कृष्णावतार, रामावतार तथा चंडी चरित्र जैसे प्रसंगों को देखकर गुरु गोविंद सिंह को सिखों की भक्ति परंपरा के विपरीत ब्रह्म के सगुण रूप का उपासक स्वीकार किया है। किंतु यह मत उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि दशम ग्रंथ का अध्ययन करने से अनेक ऐसे स्थल मिलते हैं, जिनसे यह सिद्ध हो जाता है अकाल पुरुष के समक्ष इन अवतारों को भी झुकना पड़ता है,[2] ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि भी परब्रह्म का रहस्य जानने का उद्योग करते–करते थक चुके हैं, तुम्हारा अदृश्य रूप कोई नहीं जान पाया–

ब्रह्मादिक सभ ही पचहारे। बिशन महेश्वर कउन बिचारे।
चंद सूर जिन करे विचारा। ता ते जनियत है करतारा।।[3]

निरंतर लौकिक संघर्षों से जूझते रहने के पश्चात् भी गुरु गोविंद सिंह ने पलभर के लिए भी अलौकिक सत्ता से संबंध विच्छेद नहीं किया, उनकी ईश्वर की शक्ति पर दृढ़ आस्था थी। अनीति का दमन करते हुए भी वे सदैव ब्रह्म की शक्ति से उपकृत रहना चाहते थे। संभवतः यही कारण है कि वे अपनी काव्य–कृतियों का आरंभ करने से पूर्व अकाल पुरुष से आज्ञा माँगते हुए दिखाई देते हैं। दशम ग्रंथ में इसके उदाहरण सरलता से देखे जा सकते हैं–

रे मन भज तूँ सारदा अनगन गुन है जाहि
रचौं ग्रंथ इह भगवत जउ वै क्रिया कराहि।
(कृष्णावतार)

गुरु गोविंद सिंह के पूर्ववर्ती सिख गुरुओं की मान्यता थी कि ईश्वर सत्य स्वरूप है, सृष्टि के आरंभ में उसी की सत्ता थी, वर्तमान में वही सर्वव्यापक है और सृष्टि के अंत में भी वही सत्य स्वरूप रहेगा। सिख धर्म का यह विश्वास है कि परमात्मा के सभी तथाकथित नाम केवल उसकी विभिन्न क्रियाओं पर आधारित नाम हैं। ये अलग–अलग नाम उसकी संपूर्णता को व्यक्त करने के लिए अपर्याप्त हैं। उसका वास्तविक नाम 'सतिनाम' या 'सत्य' ही है। सत्य ही एकमात्र ऐसा विशेषण है, जो परमात्मा को मानवता का परमात्मा बना देता है, अन्य सब तो जाति, संप्रदाय की सीमाओं में बँधे हुए विशेषण हैं। दशम ग्रंथ में भगवद्गीता के 11वें अध्याय में वर्णित ईश्वर के विराट स्वरूप के समकक्ष परब्रह्मा की झाँकी प्रस्तुत हुई है, जिसमें हिंदू संस्कृति की इसी विशेषता को केंद्र में रखा गया है–

आदि रूप अनादि मूरति अजोनि पुरख अपार।
सख मान त्रिमान देव अभेव आदि उदार।
सरब पालक सरब घालक सरब को पुनि काल
जत्र तत्र बिराजही अवधूत रूप रसाल। (जापु)

गुरु गोविंद सिंह ने जिस प्रकार सृष्टि को अकाल–पुरुष के हुकुम का परिणाम माना है, उसी प्रकार वे आत्मा को भी परमात्मा का ही अंश स्वीकार करते हैं। दशम ग्रंथ में संगृहित विचित्र नाटक में वे लिखते हैं कि हरि एवं हरिजन एक ही हैं, इनमें कोई भेद विचार नहीं है। इनकी स्थिति ठीक उसी प्रकार है जैसे जल में तरंग उत्पन्न होती है और जल में ही समा जाती है–

हरि हरिजन दुइ एक हैं बिंब बिचार कछु नाही।
जल ते उपज तरंग जिउ जल ही बिरवै समाहि।।

भारतीय संस्कृति में नाम–स्मरण को पर्याप्त महत्व दिया जाता है। सिख मत के अनुरूप दशम ग्रंथ में भी स्पष्ट किया गया है कि अनेक प्रकार के कठिन व्रत, योग, साधनाएँ तथा सभी कर्म नाम–स्मरण की समानता नहीं कर सकते। अतः जीव को एकमात्र नाम को ही अपना आधार बनाकर जीवन–कर्म को पूर्ण करना चाहिए–

सभ करम फोकट आन। सब धरम निहफल मान।
बिन एक नाम आधार। सभ करम भरम विचार।। (अकाल–स्तुति)

ब्राह्याचारों और मिथ्याचारों का खंडन दशम ग्रंथ की लगभग सभी कृतियों में हुआ है। गुरु गोविंद सिंह ईश्वर और अल्लाह, राम और रहीम, पुराण और कुरान में एक ही शाश्वत सत्य की स्थिति को स्वीकार करते हैं। अतः पत्थर को पूजने, लिंग को गले में लटकाने, दक्षिण और पश्चिम दिशा में शीश झुकाने के स्थान पर परमात्मा के वास्तविक रहस्य को जानने एवं निश्छल भक्ति द्वारा उसे प्राप्त करने का अमर संदेश देते हैं।[4] गुरु साहब की मान्यता है कि यदि सारे द्वीपों को कागज बनाकर, सातों महासागर की स्याही बनाकर, समस्त वनस्पति को काटकर लेखनी बनाकर, विद्या की देवी 'सरस्वती' को वक्ता बनाकर तथा करोड़ों वर्षों तक लिखने वाले गणेश को लेखक बनाकर ईश्वर का गुणगान किया जाए तो भी ब्रह्म के समक्ष विनीत हुए बिना ये सारे प्रपंच व्यर्थ ही सिद्ध होते हैं–

कागद दीप सभै करि कै अरु सात समुंद्रन की मसु कैये
काटि बनासपति सिगरी लिखबै हूकौ लेखन काज बनैये
सारसुति बकता करिकै सभी जीवन ते जुग साठि लिखैये
जो प्रभु पायतु है नहि कैसे हू सो जढ़ पाहन मौ ठहरैये। (चरित्रोपाख्यान)

भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों में गुरु का महत्वपूर्ण स्थान है। दशम ग्रंथ में संकलित 'विचित्र नाटक' के अंतर्गत गुरु गोविंद सिंह ने मनुष्य जीवन में गुरु के महत्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि जो मनुष्य गुरु के चरणों में प्रीति लगाए रहेंगे उनको कष्ट कभी छू भी नहीं सकता, ऋद्धि–सिद्धि से उनके घर भरे रहेंगे तथा पाप–ताप उनसे कोसों दूर रहेंगे। इसके विपरीत जो गुरु चरणों से विमुख हो जाएँगे वे नरक कुंड में जाएँगें–

तिन को सदा जगत उपहासा। अंतहि कुंड नरक ही बासा।
गुर पग ते जे बिमुख सिधारे। इहाँ उहाँ तिन के मुख कारे।
पुत्र पउत्र तिन के नहीं फरै। दुख दै मात पिता कौ मरै।
गुर दोखी संग की म्रित पावै। नरक कुंड डारे पछतावे।।

गुरु गोविंद सिंह ने यह अनुभव किया कि कुछ विशिष्ट संप्रदाय के मनुष्य मत–मतांतरों के प्रवर्तकों को ईश्वर का अवतार मानकर उनकी ईश्वर तुल्य उपासना करने लगे हैं। वे भूल गए हैं कि पंथ विशेष के संस्थापक भी उन्हीं की भाँति परमपिता की संतान हैं। उन्हें ईश्वर मानकर उनकी पूजा करना निरर्थक है। गुरु साहब को डर था कि उनके अनुयायी भी कहीं उन्हें अवतारी पुरुष मानकर उनकी ईश्वर तुल्य उपासना न शुरू कर दें। अतः उन्होंने स्पष्ट निर्देश दिया कि जो मनुष्य मुझे परमेश्वर के रूप में जानेगा, वह नरककुंड में जाएगा। दशम ग्रंथ में स्पष्ट रूप से गुरु के महत्व एवं गुरु गोविंद सिंह के निर्देश को स्थान–स्थान पर देखा जा सकता है –

जो हम को परमेश्वर उचरिहै। ते सभ नरकि कुंड महि परिहै।
मो को दास तवन को जानो। या मैं भेदु न रंच पछानो।
मैं हो परम पुरख को दासा। देखनि आयो जगत तमासा।
जो प्रभ जगति कहा से कहिहौ। म्रित लोग ते मोनि न रहिहौ।। (विचित्र नाटक)

भारतीय संस्कृति के अनुरूप गुरु साहब लौकिक कर्मों को पूर्ण करते हुए ऐसा संन्यास धारण करने की शिक्षा देते हैं जिसमें घर को ही

वन समझा जाए और मन–ही–मन उदासीन रहा जाए। यतीत्व की जटाएँ, परमात्मा से मन जोड़ने का स्नान और नियम के नाखून हों। ज्ञान गुरु हो जो परमात्मा नाम की भभूत लगाकर आत्मा को उपदेश देता हो। आहार सत्य हो और निद्रा भी कम हो। इन सबके साथ दया, क्षमा और प्रेम भी हो। शील और संतोष का सदैव निर्वाह किया जाए। ऐसा संन्यासी काम, क्रोध, अहंकार, लोभ, हठ, मोह इत्यादि को मन में नहीं आने देता, जिसके परिणामस्वरूप उसका परम पुरुष से साक्षात्कार संभव हो जाता है –

रे मन ऐसो करि संन्यासा।
बन से सदन सभै करि समझहु मन की माहि उदासा।
जत की जटा जोग को मज्जनु नेम के नखन बढ़ायो
ग्यान गुरु आतम उपदेशह नाम बिभूत लगाओ।

भारतीय संस्कृति आशावादी दृष्टिकोण को अपनाकर ही चरम ऊँचाइयों पर पहुँची है। अपनी इसी विशिष्टता के कारण भारतीय जन विकट से विकट परिस्थितियों से भी निराश गुरु गोविंद सिंह ने परिस्थितियों से घबराकर कभी भी निराशावादी दृष्टिकोण नहीं अपनाया। भारतीय संस्कृति के अनुरूप वे केवल कर्म करते रहने पर विश्वास रखते थे, इसलिए अपने जीवन के अंतिम समय तक वे हिंदू जाति को बर्बर शासकों से मुक्त कराने तथा राष्ट्रीय अस्मिता की सुरक्षा के लिए सशस्त्र संघर्ष करते रहे, साथ ही ईश्वर से युद्ध में विजयी होने का वरदान भी माँगते हुए वे कहते हैं–

हे रवि हे ससि हे करुणानिध, मेरी अबै बिनती सुन लीजै।
और न माँगत हउ तुम ते कछु, चाहत हउ चित मैं सोई कीजै।
शत्रुन सिउ अति ही रण भीतर, जुझ मरों कहि सांच पतीजै।
संत सहाय सदा जगमाई, कृपा करि स्याम इहै बरु दीजै। (कृष्णावतार)

जगदयाल गोयंदका हिंदू संस्कृति और राक्षसी संस्कृति के भेद को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, "काम, क्रोध, लोभ, मोह, दंभ, घमंड, राग, द्वेष, अभिमान, अहंकार, क्रूरता, निर्दयता, अज्ञान, संशय, भ्रम, निद्रा, आलस्य, विक्षेप, चिंता, शोक, भय, वैर, कुटिलता .... हिंसा, प्रमाद, उद्दंडता आदि दुराचार हैं, यह आसुरी संपदा है। इसको राक्षसी संस्कृति समझना चाहिए। यह सर्वथा घृणित और त्याग करने योग्य हैं। तथा इसके विपरीत जो दया, क्षमा, शांति, संतोष, शम, दम, धैर्य, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, तेज, विनय, सरलता, धीरता, वीरता, गंभीरता, निराभिमानता, हृदय की पवित्रता, आस्तिकता, श्रद्धा आदि सद्गुणों तथा यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, उपवास, सेवा, पूजा, आदर, सत्कार, सत्य भाषण, ब्रह्मचर्य का पालन, स्वाध्याय, परोपकार, माता–पिता आदि गुरुजनों की और दुखी, अनाथ, आतुरों की सेवा आदि सदाचार हैं, ये दैवी संपदा के लक्षण हैं और अनंतकाल से आर्य पुरुषों में स्वभाव सिद्ध चले आ रहे हैं। यह है हिंदू संस्कृति।"[5] भारतीय संस्कृति के ये सभी मूल्य गुरु गोविंद सिंह के व्यक्तित्व के अखंड तत्व हैं। संभवतः इसीलिए दशम ग्रंथ में संकलित उनकी सभी रचनाओं में उनके इन मूल्यों का वैभव अपने पूर्ण विलास में विद्यमान है। मानव मात्र की एकता में उनकी दृढ़ आस्था थी। उनकी दृष्टि में सभी मनुष्य चाहे वे किसी भी जाति अथवा वर्ग के हों, सबमें एक परमपिता का ही प्रकाश विद्यमान है। अतः मनुष्य को कभी–भी किसी अन्य संप्रदाय के व्यक्ति को छोटा या बड़ा नहीं समझना चाहिए।[6] भारतीय संस्कृति की एक अन्य विशेषता है – व्यक्तित्व की कोमलता, स्वभाव की नम्रता। गुरु गोविंद सिंह समाज से दूर रहकर भारतीय समाज का नेतृत्व करने वाले योद्धा नहीं थे वरन् सबका भला चाहने वाले विनम्र गुरु थे। बर्बर मुगलों के विरुद्ध संघर्ष का सूत्रपात करके, उसमें अपना सब कुछ गवाँ देने वाले गुरु साहब ने विजय का श्रेय स्वयं न लेकर अपने संत–योद्धाओं को ही दिया है। ऐसा करके उन्होंने पंच प्यारों एवं खालसा–समाज के समक्ष अपनी नम्रता को चरम सीमा पर पहुँचा दिया है –

जुद्ध जिते इन ही के प्रसादि इन ही के प्रसादि सु दान करे।
अध अरध टरै इन ही के प्रसादि इन ही क्रिपा फुन धाम भरे।
इन ही के प्रसादि सु विद्या लई इन ही की क्रिया सभी शत्रु मरे।
इन ही की क्रिपा के सजे हम हैं नहीं मोसो गरीब करोर परे।
सेव करी इन ही की भावत अउर की सेव सुहात न जीको।
दान दयो इन ही की भलो अरु आन को दान न लागत नीको।
आगै फलै इन ही को दयो जग मैं जसु अउर दयो सभ फीको।
मो ग्रहि मैं मन ते तन ते सिर लउ धन है सभ ही इन ही को।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दशम गुरु 'गुरु गोविंद सिंह' ने भारतीय संस्कृति के उत्थान, विभिन्न मूल्यों की भारतीय समाज में पुनर्स्थापना, राष्ट्र के आंतरिक विकास, शुभ कर्मों की प्रेरणा, आस्था एवं विश्वास के बीजवपन के लिए ही साहित्य की रचना की थी। भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की सभी महत्वपूर्ण विशेषताएँ दशम ग्रंथ में संकलित सभी रचनाओं में फूलों की भाँति अपनी सुगंध फैला रही हैं। यदि आज के अराजकतापूर्ण समाज में उन्हीं मूल्यों का अनुसरण किया जाए तो संभव है कि हम सब मिलकर एक ऐसे सुसंगठित समाज का निर्माण कर सकें जिसकी नींव प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों पर रखी हो। भारतीय संस्कृति के संदर्भ में दशम ग्रंथ की यही महत्वपूर्ण उपलब्धि होगी। 'दशम–ग्रंथ' मूलतः जन–जीवन से संबंध रखने वाला, मानवतावादी मूल्यों के सुष्ठु एवं सुंदर भावों को समेटने वाला, तद्युगीन समाज की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करके संघर्ष एवं अस्मिता के भाव को जगाने वाला, कलयुग के पाखंडों–आडंबरों का विखंडन करने वाला, भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का अक्षय कोश है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 दशम ग्रंथ सटीक, अनु. डॉ. जोधसिंह
2 चौबीस अवतार, दशम ग्रंथ, छंद–3.
3 वही, छंद–14
4 अकाल स्तुति, दशम ग्रंथ, छंद–30.
5 कल्याण, संस्कृति विशेषांक, पृ. 92–93.
6 अकाल स्तुति, दशम ग्रंथ, छंद–85.

– फ्लैट नंबर – 311, न्यू आशियाना अपार्टमेंट्स, प्लॉट नंबर – 10, सेक्टर – 6, द्वारका, नई दिल्ली – 110075

❑❑❑

हिंदी में शोध : दशा एवं दिशा

प्रो. निरंजन कुमार

'हिंदी में शोध की दशा एवं दिशा' विषय पर चर्चा के पहले इस प्रश्न का उत्तर जानना प्रासंगिक होगा कि अकादमिक पाठ्यचर्या में हिंदी का अर्थ और क्षेत्र–विस्तार क्या है? क्या इसका अर्थ सिर्फ हिंदी भाषा और साहित्य है? दरअसल हिंदी की परिधि को लेकर कई भ्रम हैं। हिंदी की विषय वस्तु (सब्जेक्ट मैटर), शोध संभावना और शोध–प्रविधि आदि चीजों से संबंधित विभिन्न भ्रमों का निराकरण बहुत जरूरी है। आज इस वैश्विक दौर में हिंदी केवल एक भाषा या साहित्य तक सीमित न रहकर, कहीं आगे जा चुकी है। यह अनायास नहीं है कि आज नए केंद्रीय विश्वविद्यालयों में भाषा और साहित्य से संबंधित संकाय 'भाषा, साहित्य और संस्कृति' संस्थान कहलाते हैं। अर्थात् हिंदी के अंतर्गत हम भाषा के अतिरिक्त साहित्य और उसके साथ–साथ संस्कृति और अनेक इतर पक्षों पर भी बात करते हैं।

हिंदी का पाठ्यक्रम आज भाषा और साहित्य से आगे मीडिया, सिनेमा, अनुवाद, सोशल मीडिया, विदेशियों के पठन–पाठन से अभिन्न रूप से जुड़ गया है। आज दुनिया के सौ से भी अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी का पठन–पाठन और उस पर शोधकार्य हो रहा है। इन विषयों में शोध की वर्तमान दशा क्या है, और क्या संभावित दिशाएँ हो सकती हैं, यह हिंदी के शिक्षकों और शोधार्थियों के लिए एक महत्वपूर्ण विषय है। इसी के साथ शोध पद्धति (मेथोडॉलॉजी) के स्तर पर भी हमें विचार करने की जरूरत है।

सबसे पहले हिंदी साहित्य को ही देखा जाए। आज जब हिंदी साहित्य की बात करते हैं तो कई लोग सवाल उठाते हैं कि वही तुलसी, वही कबीर, वही सूर, वही प्रेमचंद आदि–आदि ...! क्या हिंदी का वृत्त बस यहीं तक है? निश्चित ही हमें साहित्य–शोध की शास्त्रीय पद्धति या साहित्यालोचन की पद्धति से आगे देखना होगा। पर हम अपने साहित्य को खारिज नहीं कर सकते, राजेंद्र यादव की तरह। राजेंद्र यादव ने कहा था कि "भक्ति साहित्य को अलमारियों में बंद कर देना चाहिए"।[1] हमें भूलना नहीं चाहिए कि अपनी गौरवपूर्ण विरासत से कटकर कोई भी समाज राष्ट्र तरक्की नहीं कर सकता है। प्रसिद्ध अश्वेत चिंतक मारकस गार्वी लिखते हैं कि "अपने अतीत, मूल और संस्कृति के ज्ञान के बिना व्यक्ति एक जड़हीन पेड़ की तरह है"।[2] भक्ति साहित्य केवल हिंदी ही नहीं बल्कि पूरे राष्ट्र की ऐसी सांस्कृतिक थाती है, जिसे बंद बस्ते में डालकर हम अपने ही गौरवमयी इतिहास से कट जाएँगे, जो हमारे लिए आज भी किसी मशाल से कम नहीं है। भक्ति साहित्य मात्र धार्मिक साहित्य नहीं है, यह लौकिक साहित्य भी है, बल्कि वर्तमान के भौतिकतावादी समय में समाज को एक दिशा देने वाला साहित्य है। इसमें करुणा, प्रेम, मानवता आदि अनेक ऐसे तत्व हैं जिनकी अनदेखी करके हम बहुत आगे नहीं बढ़ सकते हैं।

अतः हमें उन्हें हटाने की बजाय उन पर नए तरीके से पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। कैसे खारिज कर सकते हैं हम तुलसी को? तुलसी

के राम को वे सिर्फ तुलसी के राम नहीं है। आज हम सभी लोग कहते हैं कि मेरी यही 'राम कहानी' है। एक मजदूर या रिक्शावाला अपने जीवन के बारे में कहता है कि 'यही मेरी राम कहानी' है। बड़े से बड़ा व्यक्ति भी कहता है कि 'यही मेरी राम कहानी' है। यानी राम केवल तुलसी के राम नहीं है, बल्कि हर व्यक्ति राम के संघर्षों से तादात्म्य स्थापित कर उनमें अपने जीवन को देखता–ढूँढ़ता है। भक्ति साहित्य के अध्ययन– शोध को हम खारिज नहीं कर सकते हैं। यह जरूर है कि हमें नई पद्धतियाँ, नई तकनीक, नए मॉडल चुनने पड़ेंगे, कहने का आशय यह है कि हिंदी साहित्य को अन्य अनुशासनों से जोड़ने की जरूरत है।

यह जरूरी है कि आज हिंदी साहित्य में शोध को अलग–थलग करके नहीं देखा जाए। हिंदी साहित्य के लिए न केवल सोशल साइंस, बल्कि नेचुरल साइंस और फिजिकल साइंस के भी उपकरण जरूरी हैं। संस्कृत के एक श्लोक "साहित्य संगीत कला विहीनः। साक्षात् पशुः पुच्छ विषाण हीनः"!! के बारे में हम अच्छी तरह से जानते हैं लेकिन मैं इसमें एक शब्द 'विज्ञान' और जोड़ना चाहता हूँ। वर्तमान समय के अनुरूप "साहित्य संगीत कला च विज्ञान विहीनः" यानि विज्ञान के बिना हम पूर्ण नहीं हो सकते। विज्ञान आज से नहीं वरन् आदिकाल से समाज, साहित्य और जीवन का एक बड़ा उपकरण रहा है। हालाँकि यह भी जरूरी है कि हम विज्ञान के उपकरण न बन जाएँ, विज्ञान हमारा उपकरण हो। साहित्य के शोध में भी विज्ञान के उपकरण का इस्तेमाल करना पड़ेगा। उदाहरण के लिए, चार–पाँच साल पहले एक प्रोजेक्ट हुआ था 'कम्युनिकेशन टेक्नोलॉजी, मीडिया, हाशिए का समाज और भक्ति का आधुनिक संदर्भ'[3] जिसमें कम्युनिकेशन टेक्नोलॉजी को समझाते हुए यह दिखाया कि समाज के लिए भक्ति के संदर्भ में उसकी क्या उपयोगिता हो सकती है। केवल यही नहीं इस शोध अध्ययन में सांख्यिकी के उदाहरण का भी इस्तेमाल किया गया। सांख्यिकी के उपकरण यानी सैंपलिंग मेथड है, प्रश्नोत्तरी मेथड है, सर्वे मेथड है, इन सबका सोशल साइंस और साइंस दोनों में उपयोग होता है।

कहने का आशय यह है कि हिंदी साहित्य को अन्य अनुशासनों से जोड़ने की जरूरत है। पिछले कुछ वर्षों में साहित्य और समाजशास्त्र, साहित्य व इतिहास, साहित्य और दर्शन, साहित्य और मनोविज्ञान के अलावा साहित्य और राजनैतिक –अर्थशास्त्र की दिशा में काफी काम हो रहे हैं। उन्हें आगे ले जाने की जरूरत है। कोलाबरेटिव रिसर्च को आगे बढ़ाने की जरूरत है। पर इसके साथ ही एक और भी अनुशासन है जिस पर अभी हमारे भारत में कार्य नहीं हुआ है। वह है कानून और साहित्य। पश्चिमी देशों खासकर अमरीका और यूरोप के विश्वविद्यालयों में 'लॉ एंड लिटरेचर' पर काम होना शुरू हो गया है। साहित्य के माध्यम से कानून अथवा कानून का साहित्य पर प्रभाव इस पर शोध होना चाहिए। एक उदाहरण देखें। पिछले दिनों इंडियन पेनल कोड की धारा 377 की बड़ी चर्चा हुई थी जिस पर सुप्रीम कोर्ट का निर्णय भी आया कि एलजीबीटी और होमोसेक्सुअलिटी कोई अपराध नहीं है। इसके संदर्भ में जो सामाजिक बहसें हुई उनका समाज पर क्या प्रभाव पड़ा, इसका भी अध्ययन करने की आज हमें जरूरत है। जिन दिनों हमारे समाज में इस मुद्दे पर बहस चल रही थी उस समय हिंदी साहित्य में कई ऐसी रचनाएँ आई जो ट्रांसजेंडर पर या होमोसेक्सुअलिटी पर केंद्रित थी। यद्यपि इसके पहले भी राजकमल चौधरी कृत 'मछली मरी हुई' जैसी रचना जरूर हमारे बीच आई थी जो समलैंगिकता पर आधारित थी। परंतु वह एक धारा अथवा प्रवृत्ति के रूप में नहीं थी। 'मछली मरी हुई' के बाद एक लंबा अंतराल होता है और पिछले वर्षों में इस थीम पर अनेक उपन्यास 'यमदीप' (2002),' मैं भी औरत' (2008), 'तीसरी ताली' (2011), 'मैं क्यों नहीं' (2012), 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासोपारा' (2016) आए हैं। यानी सारी रचनाएँ एक खास कालखंड में आ रही हैं। यह दर्शाता है कि कैसे कानून और कानून से संबंधित विवाद भी साहित्य पर असर डालते हैं। इस दृष्टि से भी अध्ययन और शोध किया जाना चाहिए। इससे मिलते–जुलते कुछ कार्य शुरू भी हुए हैं, जैसे दिल्ली विश्वविद्यालय

में एक शोधकार्य हो रहा है 'हिंदी उपन्यास और मानवाधिकार'।

इसके अलावा आज पर्यावरण बचाओ की मुहिम चारों ओर चल रही है। सोशल साइंस में पर्यावरण संबंधित एक डिस्कोर्स चल रहा है 'इकोलॉजिकल डिस्कोर्स' जिसे हम हिंदी में 'पारिस्थितिकी विमर्श' कह सकते हैं जो कि मनुष्य और पर्यावरण के संबंधों का अध्ययन करता है। हिंदी में भी इस पर कार्य की शुरुआत हो चुकी है। यद्यपि हिंदी में प्रकृति से संबंधित शोध कार्य पहले भी हुए हैं, परंतु वे विषय प्राकृतिक सौंदर्य या प्रकृति प्रेम से जुड़े रहे हैं, जैसे 'नागार्जुन की प्रकृति चेतना', केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में 'प्रकृति' इत्यादि। यहाँ मैं कहना चाहता हूँ कि पश्चिम के विकास–मॉडल जहाँ प्रकृति का दोहन हुआ है, उससे यह विमर्श आया। पर पर्यावरण रक्षा का विमर्श तो हमारी भारतीय संस्कृति में, हमारी जीवन शैली में घुला–मिला हुआ है। हम तुलसी के पौधे को भी 'तुलसी जी' कहकर, और गंगा को 'गंगा मैया' कहकर पुकारते हैं। पश्चिमी अवधारणा में प्रकृति से संघर्ष कर हमेशा उसे काबू में रखने का प्रयास किया गया, जबकि भारतीय संस्कृति और समाज में प्रकृति के साथ समरसता का भाव है। यह सामंजस्य बिठाते हुए भारत ने प्रकृति के साथ जीना सीखा है। विद्या निवास मिश्र लिखते हैं "जहाँ पश्चिमी चिंतन, ... प्रकृति पर मनुष्य की विजय को पुरुषार्थ मानता है तथा पूरी सृष्टि को मनुष्य का उपभोग्य मानता है वहीं भारतीय हिंदू चिंतन कोई एक केंद्र देखता ही नहीं, वहाँ प्रकृति पर विजय नहीं, प्रकृति से सामंजस्य और समग्र अस्तित्व में परम सामंजस्य स्थापित करना ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है।"[4] यानी जिस 'सस्टेनेबल डेवलपमेंट' की बात पश्चिम से आ रही है उससे अलग हमें 'पर्यावरण विमर्श' को नई दृष्टि से देखना होगा। यहीं 'एल.पी. विद्यार्थी' को याद करें जिन्होंने 'नेचर–मैन–स्पिरिट कंपलेक्स'[5] की अवधारणा दी थी, अर्थात् एक तरफ प्रकृति तथा समाज है, और दूसरी ओर देवता अथवा देवात्मा। इन तीनों के सामंजस्य से ही किसी संस्कृति को समझा जा सकता है और यह बात साहित्य के स्तर पर भी लागू होती है।

आज हिंदी में स्थापित हो चुके दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी/जनजातीय विमर्श से संबंधित शोधों पर भी पुनर्विचार करने की जरूरत है। हम इनको एक होमोजीनस सोसायटी मान लेते हैं जबकि ऐसा है नहीं। नॉर्थ ईस्ट की जनजातियों की जो समस्याएँ हैं, उनका जो साहित्य और संस्कृति है, और उनका जो विमर्श है; वैसा जीवन, संस्कृति और साहित्य आदि हंटर–गैदरर्स यानी घुम्मकड़ जनजातियों जैसे बैगा और बिहोर, या अंडमान के जारवा जैसे समुदायों का नहीं हो सकता है। या फिर जो भूमि संपन्न जनजातियाँ हैं, उनका जीवन भूमिहीन जनजातियों से अलग है। आदिवासी विमर्श के नाम पर भी एक षड्यंत्र चल रहा है। जो क्रीमी लेयर जनजातियाँ हैं, वे मार्जिनलाइज्ड जनजातियों के अधिकारों को मार रही हैं। साहित्य के माध्यम से, संस्कृति के माध्यम से, विमर्श के माध्यम से और राजनीति के माध्यम से यही बात दलित विमर्श पर भी लागू होती है। एक तरफ दलितों में भी एंटरप्रेन्योरशिप चल रही है। डिक्की या 'दलित इंडियन चेंबर ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री' नाम का संगठन बन चुका है, तो दूसरी तरफ ऐसे दलित भी हैं जो मात्र पेट भरने के लिए चूहा खाने के लिए भी मजबूर हुए हैं। स्पष्ट है कि इन दोनों दलित वर्गों का जीवन, उनकी संस्कृति, उनका साहित्य, उनका समाज एक नहीं हो सकता, परंतु दलित विमर्श ने इन सारी चीजों को जानबूझकर अनदेखा किया है। जिसका अच्छा उदाहरण है ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'शवयात्रा'[6] या फिर सत्यप्रकाश की 'दलित ब्राह्मण'[7], जिनमें दलित जातियों के अंदर के ऊँच–नीच और भेदभाव को दिखाया गया है। उनकी इन विडंबनाओं व विसंगतियों और सामाजिक स्तरीकरण में कितना फर्क है, इसको समझते हुए दलित विमर्श को आगे ले जाने की जरूरत है।

हिंदी में शोध से संबंधित एक बिंदु डायस्पोरा स्टडी या प्रवासी विमर्श है। कैमरून और केन्या से लेकर यूएसए, यूके तक जो हमारे प्रवासी हैं

इनका अध्ययन कई तरीकों से किया जा सकता है। एक तो यही कि अफ्रीकी समाज में हमारे जो बंधु हैं उनकी क्या सामाजिक–संस्कृति है, उनकी समस्याएँ, चुनौतियाँ; उन पर जो साहित्य लिखा गया है, उसका अध्ययन हो सकता है। इसी तरह यूके और यूएस में रहने वाले भारतीयों और अफ्रीकी देशों में रहने वाले भारतीय बंधुओं की सामाजिक–संस्कृति, उनकी समस्याएँ, चुनौतियाँ आदि में क्या साम्य–वैषम्य है, उन पर लिखे साहित्य के आधार पर उसका एक तुलनात्मक अध्ययन हो सकता है। डायस्पोरा अध्ययन का एक विषय और हो सकता है कि त्रिनिदाद–टोबैगो, सूरीनाम आदि देशों में हमारे जो प्रवासी भारतीय रह रहे हैं, जो वहाँ मजदूर बनकर गए थे और उनके जीवन को लेकर जो भी साहित्य रचा गया है, और दूसरी तरफ यूके और यूएस में जाने वाले अपेक्षाकृत साधन संपन्न और प्रोफेशनल भारतीयों के साम्य और वैषम्य को लेकर तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

शिक्षा और शोध से जुड़ा हुआ एक अन्य बिंदु यह है कि आजादी के पूर्व से और दुर्भाग्य से उसके बाद भी 60–70 सालों तक शोध और विमर्श पश्चिमी चिंतन या वामपंथ से प्रेरित लोगों के हाथों में था, जो चीजों को एक सिलेक्टिव तरीके से देखते थे। उनकी जो दृष्टि है वह एकांगी रही है। एक तरह से अंग्रेजी से बहुत आक्रांत दृष्टि है। उनके मॉडल में भारतीयता अर्थात् भारतीय परंपरा, भारतीय तत्व, भारतीय मॉडल, भारतीय पेडगॉजी और भारतीय मेथोडॉलोजी, इन सब का एक तरह से जाने–अनजाने बहिष्कार, या अनदेखी की गई है। मैं उदाहरण देना चाहूँगा रॉबर्ट रेडक्लिफ जो अमरीकी समाजशास्त्री थे, और जिन्होंने मैक्सिको में अध्ययन करके 'ग्रेट ट्रेडिशन' अर्थात् दीर्घ या महान परंपरा और 'लिटल ट्रेडिशन' अर्थात् लघु परंपरा की अवधारणा को प्रस्तुत किया था। उन्होंने स्थापित किया कि 'ग्रेट ट्रेडिशन' और 'लिटल ट्रेडिशन' की अंतर्क्रिया के माध्यम से साहित्य, संस्कृति या सभ्यता की गतिकी को भी समझ सकते हैं। आगे चलकर मिल्टन सिंगर और मक्किम मैरियट इत्यादि ने भारतीय संस्कृति का अध्ययन 'ग्रेट ट्रेडिशन' और 'लिटल ट्रेडिशन' के इस उपकरण से किया। जबकि प्रसिद्ध भारतीय चिंतक व समाजशास्त्री श्यामाचरण दुबे ने यह स्पष्ट कहा और दिखाया कि भारतीय संदर्भों में यह द्विआयामी सांस्कृतिक अवधारणा लागू नहीं होती। भारतीय सांस्कृतिक परंपरा द्विआयामी नहीं बल्कि बहुआयामी है। श्यामाचरण दुबे ने भारतीय सांस्कृतिक परंपरा का छह–आयामी वर्गीकरण किया है। इसी तरह का एक अन्य उदाहरण है कि कोलकाता के 'नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ ज्यूरीडिकल साइंसेस' में कानून और साहित्य के अंतःसंबंध के आलोक में एक कोर्स जोड़ा गया है जिसका नाम है 'हैरी पॉटर एंड इंटरफेसेज ऑफ लॉ'। इसके पीछे तर्क दिया गया कि सुप्रीम कोर्ट के जो निर्णय आते रहे हैं अथवा भारतीय समाज में जो बदलाव हो रहे हैं उसको समझने के लिए यह रचना सहायक हो सकती है। यह एक मानसिक दिवालियापन या पश्चिम से आक्रांत होने को ही दर्शाता है। पश्चिमी सामाजिक– सांस्कृतिक परिवेश में लिखे गए इस उपन्यास के माध्यम से भारतीय समाज और कानूनी गुत्थियों को क्या भली–भाँति समझा जा सकता है? सही दृष्टि और अप्रोच यह होगी कि हमारे भारतीय साहित्य में कन्नड से लेकर हिंदी तक, बांग्ला से मराठी, तमिल आदि में जो रचनाएँ हैं उनके माध्यम से भारतीय समाज और कानूनी गुत्थियों को समझा जाए। परंतु हमारा पश्चिमी माइंडसेट हमें अपने ढंग से कार्य करने की अनुमति नहीं देता है।

अंतिम बात अनुवाद और मीडिया के बारे में। अनुवाद में जो आज आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, मशीनी ट्रांसलेशन इत्यादि की चर्चा होनी शुरू हो गई है इसी के साथ अनेक समस्याएँ भी आनी शुरू हुई हैं, जैसे बिग ब्रदर का अनुवाद बड़ा भाई लिख दिया जाता है। हमारी संस्कृति में बड़े भाई का कितना महत्वपूर्ण स्थान है, जो कि जॉर्ज ऑरवेल के 1984 में आए उपन्यास 'बिग ब्रदर' का विकल्प नहीं हो सकता। इसी तरह 'कल्चरल लैग' का 'सांस्कृतिक पिछड़ापन' अथवा 'पे टॉयलेट'

के लिए 'वेतन शौचालय' का अनुवाद अत्यंत हास्यास्पद है और हम सभी इसके लिए जिम्मेदार हैं। मीडिया एक अन्य क्षेत्र है; प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक से लेकर सोशल मीडिया के विभिन पहलुओं पर हिंदी में शोध की अपार संभावनाएँ हैं। साथ ही फिल्म और टेलीविजन के क्षेत्र में भी अनेक नई दिशाएँ हैं, जिन पर हिंदी के शोधार्थियों और शोध पर्यवेक्षकों को ध्यान देना होगा। ये चीजें प्रधानमंत्री के आत्मनिर्भर भारत के संकल्प को साकार करने में भी सहायक सिद्ध होंगी।

संक्षेप में कहें कि यदि हिंदी की बिंदी को चमकना है, तो नए ज्ञान और अनुशासन से हिंदी को जोड़ना ही पड़ेगा और शोध के नए मॉडल अपनाने ही पड़ेंगे। अंत में दो पंक्तियाँ–

मेरी हर सांस में पिरोई है सभ्यता, संस्कृति और ज्ञान की परतें !
कोई मुझसे पूछे तो, कोई बात तो करे!!

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. राजेंद्र यादव : पाखी पत्रिका (संपादक प्रेम भारद्वाज), जनवरी 2011, नोएडा

2. मार्कस गर्वे: द फिलॉसफी एंड ओपिनियंस ऑफ मार्कस गर्वे', मेजरिटी प्रेस, डोवर, यूएसए 1986

3. पूनम कुमारी : 'कम्युनिकेशन टेक्नोलॉजी, मीडिया, हाशिए का समाज और भक्ति का आधुनिक संदर्भ', मेजर रिसर्च प्रोजेक्ट, यूजीसी, नई दिल्ली, 2015

4. विद्या निवास मिश्र : हिंदू धर्म जीवन में सनातन की खोज, पृष्ठ 10, राधाकृष्ण प्रकाशन , नई दिल्ली, 2008

5. 'एल.पी. विद्यार्थी'– 'दी मालेर : नेचर–मैन–स्पिरिट कम्पलेक्स ऑफ ए हिल ट्राइब, बुकलैंड प्राइवेट लिमिटेड, 1963

6. ओमप्रकाश वाल्मीकि – 'शवयात्रा', नई सदी की पहचान श्रेष्ठ दलित कहानियाँ (संपादक – मुद्राराक्षस) पृष्ठ 21, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008

7. सत्यप्रकाश – 'दलित ब्राह्मण', दलित कहानी संचयन (संपादक – रमणिका गुप्ता) पृष्ठ 158, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2009

– के द्वारा प्रो. पूनम कुमारी सिंह, फ्लैट नं. – 4, वॉर्डन फ्लैट्स, कोयना हॉस्टल, जे एन यू, नई दिल्ली – 110067

❑❑❑

हिंदी और असमिया के विशेषणों का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. प्रीति बैश्य

सार–संक्षेप : 'विशेषण' एक तत्सम शब्द है, जिसकी व्युत्पत्ति 'वि+शिष्+ल्यूट्' से हुई है। विशेषण की परिभाषा हिंदी और असमिया के अनेक विद्वानों ने दी है। हिंदी और असमिया भाषा के संदर्भ में विशेषण की परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं– विशेषण वह विकारी (कभी–कभी अविकारी भी) शब्द है, जो संज्ञा या सर्वनाम के आगे–पीछे बैठकर उसके विशेष धर्म, गुण, प्रभेदक लक्षण, संख्या, परिमाण आदि का बोध कराकर वाक्य को और अधिक अर्थपूर्ण, स्पष्ट और आकर्षक बनाता है। प्रयोग की दृष्टि से विशेषण के दो भेद हैं– विशेष्य विशेषण और विधेय विशेषण। हिंदी और असमिया के वैयाकरणों ने विशेषणों का अलग–अलग रूप से वर्गीकरण किया है। हिंदी के कुछ वैयाकरणों ने विशेषण के सार्वनामिक, गुणवाचक और संख्यावाचक – इन तीन भेदों को स्वीकारा है तो कोई परिमाणबोधक विशेषण को संख्यावाचक विशेषण का भेद नहीं मानते हुए उसे विशेषण का एक अलग प्रकार मानते हैं। असमिया में विशेषणों के 'विशेष्यर विशेषण' (विशेष्य का विशेषण), 'विशेषणर विशेषण' (विशेषणों का विशेषण या प्रविशेषण), 'क्रिया विशेषण' (क्रिया का विशेषण)– इन तीन भेदों के अलावा कुछ वैयाकरणों ने 'सर्वनामर विशेषण' (सर्वनाम का विशेषण) को विशेषण के एक भेद के रूप में स्वीकारा है। यद्यपि असमिया के विशेषण के वर्गीकरण हिंदी से मेल नहीं रखते, लेकिन विशेषण पर वैज्ञानिक और स्पष्ट रूप से अध्ययन करने के लिए हिंदी विशेषणों के वर्गीकरण को ही व्यापक रूप से आधार मानकर हिंदी और असमिया विशेषणों का अध्ययन किया जा सकता है। इस वर्गीकरण में हिंदी और असमिया के सभी विशेषण आ जाएँगें। विशेषणों के गुण, संख्या, परिमाण आदि अलग–अलग धर्म के आधार पर हिंदी और असमिया के विशेषणों को सार्वनामिक विशेषण संख्यावाचक विशेषण, गुणवाचक विशेषण और परिमाणबोधक विशेषण – इन चार प्रमुख भेदों में विभाजित कर सकते हैं।

बीज–शब्द : हिंदी, असमिया, विशेषण, व्युत्पत्ति, परिभाषा, भेद

1. प्रस्तावना

संस्कृत : 'भाष' से निकले 'भाषा' शब्द का अर्थ है वाणी या मनुष्य की वार्तालाप की पद्धति। मुनष्य अपने मनोभावों को अभिव्यक्त करने के लिए जो सार्थक शब्द उच्चारण करते हैं, वही भाषा है। ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से विद्वानों ने हिंदी तथा असमिया भाषाओं को आर्य परिवार के अंतर्गत रखा है। दोनों ही भाषाएँ संस्कृत से उद्भूत होते हुए विविध क्षेत्रीय अपभ्रंशों से विकसित हैं। इसलिए इन भाषाओं में कुछ सीमा तक समानता होना स्वाभाविक है, परंतु इनमें अनेक प्रकार की रूपात्मक विविधताएँ एवं असमानताएँ भी दिखाई देती हैं। हिंदी और असमिया के वैयाकरणों ने विशेषणों का अलग–अलग रूप से वर्गीकरण किया है। असमिया के विशेषण का वर्गीकरण हिंदी से

मेल नहीं रखता। हम यहाँ हिंदी और असमिया के विशेषणों को परिभाषित करते हुए उसके स्वरूप और वर्गीकरण के साम्य–वैषम्य पर प्रकाश डालेंगे।

2. अध्ययन का महत्व

हिंदी और असमिया साहित्य के विविध युग तथा उन युगों के विविध कवि, साहित्यकार और रचनाओं पर पहले से अब तक अध्ययन होता ही रहा है। इसकी अपेक्षा व्याकरण का क्षेत्र, वह भी तुलनात्मक कुछ पीछे रह गया है। वैसे तो कुछ विद्वानों ने व्याकरण के कई विषयों को लेकर अध्ययन किया है। मैंने भी इस अभाव की पूर्ति के उद्देश्य से हिंदी और असमिया के विशेषणों के तुलनात्मक अध्ययन को विषय के रूप में चुना। इस विषय की महत्ता इसलिए भी है कि इससे हिंदी और असमिया के पारस्परिक अध्ययन एवं अनुवाद में सहायता होने के साथ ही भावात्मक एकता बढ़ेगी। दोनों भाषाओं के विशेषणों में उपलब्ध वैषम्यों को खोज निकालने पर लोग भाषिक व्याघात से भी बचेंगे। अर्थात् हिंदी–भाषी लोग बिना किसी गलती से असमिया या असमिया–भाषी लोग बिना किसी अशुद्धि के हिंदी भाषा बोल या लिख सकेंगे। वाक्य में संज्ञा, क्रिया आदि अलग–अलग पदों का अपना–अपना महत्व होता है। किसी वाक्य में संज्ञा पद जितना महत्वपूर्ण होता है, विशेषण का महत्व भी उससे कम नहीं होता। किसी वाक्य के अर्थ को पूर्णतः और स्पष्टतः समझने के लिए विशेषण अनिवार्य तत्व होता है। अगर कोई व्यक्ति विशेषण के अर्थ तथा उसके प्रयोग से अच्छी तरह से परिचित न होगा, तो वह न ही किसी भाषा के वाक्य को शुद्ध रूप से कह सकेगा और न ही लिख सकेगा। विशेषण संज्ञा अथवा सर्वनाम के गुण, दोष, संख्या, परिमाण आदि का बोध कराकर उसको (संज्ञा अथवा सर्वनाम को) निर्दिष्ट करके दिखाता है। इसके अतिरिक्त विशेषण वाक्य को और अधिक स्पष्ट, अर्थपूर्ण और आकर्षक बनाता है। अतः विशेषण को पूर्ण रूप से समझने के लिए, हिंदी और असमिया भाषा के भाषिक व्याघात से बचने के लिए, वाक्य में विशेषण की महत्ता को समझने के लिए हिंदी और असमिया विशेषणों का तुलनात्मक अध्ययन विशेष महत्वपूर्ण है।

3. अध्ययन का शीर्षक

अध्ययन का शीर्षक है–हिंदी और असमिया के विशेषणों का तुलनात्मक अध्ययन।

4. अध्ययन का उद्देश्य

हिंदी और असमिया के विशेषणों का वर्गीकरण आपस में मेल नहीं रखता। दोनों भाषाओं के विशेषणों को परिभाषित करते हुए उसके स्वरूप और वर्गीकरण के साम्य–वैषम्य को खोज निकालना प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य है।

5. अध्ययन का सीमांकन

प्रस्तुत शोधपत्र में हिंदी और असमिया के विशेषणों पर अध्ययन किया गया है। हिंदी और असमिया के विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई विशेषणों की विविध परिभाषाएँ, विविध आधारों पर किए गए विशेषणों के वर्गीकरण के साम्य–वैषम्य को तुलनात्मक दृष्टि से इस अध्ययन में देखा गया है।

6. अध्ययन में व्यवहृत पद्धति एवं उपाय

प्रस्तुत अध्ययन मुख्यतः तुलनात्मक पद्धति पर आधारित है और तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष निकाले गए हैं। विशेषणों के स्तर पर दोनों भाषाओं के साम्यों एवं वैषम्यों को खोज निकालने में व्याख्या और विश्लेषण की भी मदद ली गई है। ग्रंथ सूची के लिए 'आधुनिक भाषा संस्था' द्वारा अनुमोदित एमएलए 7 पद्धति का प्रयोग किया गया है। हिंदी और असमिया के विशेषण से संबंधित विविध व्याकरण की पुस्तकों की सहायता ली गई है। कुछ उदाहरण निर्मित कर लिए गए हैं, तो कुछ उदाहरण प्रकाशित साहित्य से लिए गए हैं। हिंदी और असमिया के उदाहरणों में दोनों भाषाओं के मान्य रूप का ही प्रयोग किया गया है।

7. विश्लेषण एवं निर्वचन

प्रत्येक भाषा में कुछ ध्वनियाँ, ध्वनि संयोग और सार्थक रूप संयोग के माध्यम से मानव मन के भाव प्रकट होते हैं। किसी भाषा की विविध इकाई का अर्थ है उस भाषा का गठनात्मक विश्लेषण। किसी भाषा के गठनात्मक विश्लेषण का अर्थ है पहले भाषा की ध्वनियाँ, उसके बाद सार्थक रूप और अंत में वाक्य के गठन आदि का

भाषा वैज्ञानिक वर्णन। भाषा की विविध इकाईयों के अंतर्गत ध्वनि, रूप, वाक्य, अर्थ, शब्द, प्रोक्ति आते हैं। वाक्य के अंदर सार्थक छोटे–छोटे स्वतंत्र खंड ही पद हैं। वाक्य में प्रयुक्त होते समय पदों का एक विशिष्ट क्रम और उसके पीछे प्रायः प्रयुक्त दूसरे रूप (विभक्ति, प्रत्यय) के अनुसार उसे विशेष्य, विशेषण, अव्यय, क्रिया आदि से विभाजित किया जाता है, जिसे पद प्रकरण कहा जाता है। अर्थात् विशेषण हिंदी और असमिया के पद प्रकरण के अंतर्गत आता है।

हिंदी और असमिया के विशेषणों को हम निम्नलिखित के आधार पर अध्ययन कर सकते हैं–

7.1 विशेषण की परिभाषा

7.2 विशेषण के स्वरूप

7.3 विशेषण के भेद

7.1 विशेषण की परिभाषा – 'विशेषण' तत्सम शब्द है। 'संस्कृत–हिंदी शब्दकोश' में इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गई है– विशेषण : (वि + शिष् + ल्यूट्) गुणवाचक, णम् 1. विभेदन, विवेचन 2. प्रभेदन, अंतर 3. वह शब्द जो किसी दूसरे शब्द की विशेषता प्रकट करता है, गुणवाचक शब्द, गुण, विशेषता 4. प्रभेदक लक्षण या चिह्न 5. जाति, प्रकार (आप्टे : 957)।

हिंदी और असमिया के अनेक विद्वानों ने विशेषण की परिभाषा दी है। हिंदी के व्याकरण–प्रणेता पं. कामता प्रसाद गुरु के अनुसार –

जिस विकारी शब्द से संज्ञा की व्याप्ति मर्यादित होती है, उसे विशेषण कहते हैं।

(गुरु : 97)

डॉ. वासुदेवनंदन प्रसाद ने विशेषण की परिभाषा इस प्रकार से दी है– जो संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बताता है, उसे विशेषण कहते हैं। दूसरे शब्दों में विशेषण एक ऐसा विकारी शब्द है, जो हर हालत में संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बताता है।

(प्रसाद : 114)

असमिया के प्रसिद्ध विद्वान कालिराम मेधि के अनुसार–

जो संज्ञा शब्द के गुण या अवस्था को व्यक्त करता है वह विशेषण है। (मेधि : 190)

असमिया–भाषा विज्ञान वेत्ता डॉ. उपेंद्रनाथ गोस्वामी का कहना है–

वाक्य में प्रयुक्त होते समय कुछ प्रायः विशेष्य शब्द के आगे बैठता है और विशेष्य शब्द के साथ एक विशेष संबंध स्थापित करता है। ऐसे शब्द ही विशेषण शब्द हैं। (गोस्वामी : 39)

विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई विशेषणों की विविध परिभाषाओं के निरीक्षण के उपरांत हम हिंदी और असमिया भाषा के संदर्भ में विशेषण की परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं– विशेषण वह विकारी(कभी–कभी अविकारी भी) शब्द है, जो संज्ञा या सर्वनाम के आगे–पीछे आता है तथा उसके विशेष धर्म, गुण, संख्या, परिमाण आदि का बोध कराकर वाक्य को और अधिक अर्थपूर्ण, स्पष्ट और आकर्षक बनाता है। जैसे–

हिंदी – वह गंदी औरत है।

असमिया – सेइजनी लेतेरी तिरोता।

हिंदी – तू मूर्ख है।

असमिया – तइ मूर्ख।

उपर्युक्त हिंदी और असमिया के उदाहरणों में 'गंदी / 'लेतेरी' विकारी विशेषण 'औरत' / 'तिरोता' संज्ञा के आगे आकर उसकी दशा या अवस्था का बोध कराने से वाक्य और अधिक अर्थपूर्ण, स्पष्ट और आकर्षक बन गए हैं।

ठीक उसी प्रकार दूसरे उदाहरणों में हिंदी और असमिया के 'मूर्ख' अविकारी विशेषण 'तू' / 'तइ' सर्वनाम के पीछे आकर उनके अवगुणों का बोध कराकर वाक्यों को और अधिक अर्थपूर्ण, स्पष्ट और आकर्षक बना रहे हैं।

7.2 विशेषण के स्वरूप – विशेषण के स्वरूप के अंतर्गत हम पूर्व उल्लिखित विशेषण की परिभाषा के आधार पर उसके स्वरूप पर विचार करेंगे। विशेषण की पूर्वोक्त परिभाषा की मूलभूत बातों को हम इस प्रकार रेखांकित कर सकते हैं–

7.2.1 विशेषण विकारी और अविकारी – दोनों प्रकार के हो सकते हैं। जहाँ विकारी विशेषणों के रूपों में विशेष्य के लिंग–वचन–कारक आदि के अनुसार विकार होते हैं, वहाँ अविकारी विशेषणों के रूपों में कोई परिवर्तन नहीं होता।

7.2.2 विशेषण संज्ञा या सर्वनाम के आगे–पीछे आता है। हिंदी और असमिया में विशेषण प्राय : विशेष्य या संज्ञा के पहले आता है। लेकिन दोनों भाषाओं में सर्वनाम के साथ विशेषण का प्रयोग प्रायः विधेय रूप में ही देखा जाता है।

प्रयोग की दृष्टि से विशेषण के दो भेद हैं–

7.2.2.1 विशेष्य विशेषण और

7.2.2.2 विधेय विशेषण

7.2.2.1 विशेष्य विशेषण–वाक्य में जो विशेषण विशेष्य के पहले आता है, वह विशेष्य विशेषण होता है। उदाहरण –

हिंदी – खिड़की के बाहर घना कोहरा है।

असमिया – खिरिकिर बाहिरत घन कुंवली। (चौधुरी : 2)

इन उदाहरणों में 'घना' / 'घन' विशेषणों का प्रयोग 'कोहरा' / 'कुंवली' विशेष्यों के पहले हुआ है। अतः ये विशेष्य विशेषण हैं।

7.2.2.2 विधेय विशेषण – जो विशेषण विशेष्य और क्रिया के बीच आए, उसे विधेय विशेषण कहते हैं। यह विशेषण प्रायः वाक्य के विधेय खंड में बैठता है। उदाहरण–

हिंदी – मनीराम के विषय में तरह–तरह की बातें सुनती थी– शराबी है, व्यभिचारी है, मूर्ख है, घमंडी है; लेकिन पिता की इच्छा के सामने सिर झुकाना उसका कर्तव्य था। (प्रेमचंद : 226)

असमिया – मनीरामर विषये विभिन्न धरणर कथा शुनिछिल – मदाही, व्यभिचारी, मूर्ख, अहंकारी, किंतु देउताकर इच्छाक सन्मति जनोवा तेओंर कर्तव्य आछिल।

उपर्युक्त उदाहरणों में 'शराबी' / 'मदाही', 'व्यभिचारी', 'मूर्ख', 'घमंडी', / 'अहंकारी' विशेषणों का प्रयोग 'मनीराम' विशेष्य के बाद तथा 'है' क्रिया के पहले हुआ है। इसलिए यहाँ 'शराबी' / 'मदाही', 'व्यभिचारी', 'मुर्ख', 'घमंडी' / 'अहंकारी' विधेय विशेषण हैं।

विधेय विशेषण के संदर्भ में एक बात उल्लेखनीय है कि हिंदी और असमिया में विधेय विशेषण केवल संज्ञा या सर्वनाम का अर्थ स्पष्ट करता है, जैसे–

हिंदी – वह लड़की ऊँची है।

असमिया – सेइ छोवालीजनी ओख।

इन उदाहरणों में 'वह' / 'सेइ' विशेषणों से 'लड़की' / 'छोवाली' संज्ञा की व्यापकता घटी है। यहाँ 'ऊँची' / 'ओख' विधेय विशेषण इन संज्ञाओं के आकार को स्पष्ट कर रहा है। इनसे 'लड़की' / 'छोवाली' के विषय में केवल एक–एक बात– 'ऊँची' / 'ओख' जानी जाती है।

7.2.3 हिंदी और असमिया में विशेषण संज्ञा या सर्वनाम के गुण, अवगुण, दशा, आकार, परिमाण, संख्या आदि विविध लक्षण बताते हैं, जैसे–

गुण – भली औरत / भाल तिरोता / अक्लमंद लड़का / बुधियक लरा

अवगुण – बुरा आदमी / बेया मानुह, जालिम बादशाह / निष्ठुर बादछाह

दशा – बूढ़ा आदमी / बूढ़ा मानुह, कच्चा आम / केचा आम

आकार – लंबा बाँस / दीघल बाँह, नाटा आदमी / चापर मानुह

परिणाम – बहुत दूध / बहुत गाखीर, दो लीटर दूध / दुई लिटार गाखीर

संख्या – पाँच लड़कियाँ / पाँचजनी छोवाली, दो आदमी / दुजन मानुह

7.2.4 विशेषण वाक्य को और अधिक अर्थपूर्ण, स्पष्ट और आकर्षक बनाता है। अर्थात् विशेषणविहीन वाक्य की अपेक्षा विशेषणयुक्त वाक्य अधिक अर्थपूर्ण, स्पष्ट और आकर्षक होता है।

7.3 विशेषण के भेद – हिंदी और असमिया के वैयाकरणों ने विशेषणों का अलग–अलग रूप से वर्गीकरण किया है। हिंदी–असमिया के विशेषणों के ये वर्गीकरण एक–दूसरे से कितना मेल खाते हैं अथवा कितने भिन्न हैं। इस पर यहाँ विचार किया जाएगा।

7.3.1 हिंदी विशेषणों के भेद हिंदी के वैयाकरणों ने विशेषणों का विविध आधारों पर वर्गीकरण किया है।

7.3.1.1 उपयोगिता की दृष्टि से वर्गीकरण – हिंदी के व्याकरण–प्रणेता पं. कामता प्रसाद गुरु ने उपयोगिता की दृष्टि से विशेषणों के मुख्य रूप से तीन भेद किए हैं। (गुरु :98)

7.3.1.1.1 सार्वनामिक विशेषण (ये लोग, वह लड़का)

7.3.1.1.2 गुणवाचक विशेषण (जैसे – सच्चा लड़का, दुष्ट बच्चा)

7.3.1.1.3 संख्यावाचक विशेषण (जैसे – पहली लड़की, दो लड़कियाँ)

डॉ. वासुदेवनंदन प्रसाद भी विशेषणों के यही मुख्य तीन भेद स्वीकारते हैं। (प्रसादः114)

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने समस्त विशेषणों को पाँच भेदों में विभाजित किया है। (तिवारी : 127) उन्होंने उपर्युक्त तीन भेदों के अलावा 'परिमाणवाचक' (थोड़ा पानी, दो बीघा जमीन) और 'संबंधवाचक' (राम का भाई, सीता की बेटी) को विशेषण के और दो अलग भेद स्वीकार करते हैं।

7.3.1.2 रूपांतरण की दृष्टि से वर्गीकरण– डॉ. भोलानाथ तिवारी ने रूपांतरण की दृष्टि से विशेषणों को दो भेदों में विभाजित किया है। (तिवारीः 127)

7.3.1.2.1 आकारांत विशेषण (जैसे – घटिया चाय, नया वर्ष)

7.3.1.2.2 अन्य विशेषण (जैसे – क्षेत्रीय भाषा, बैंगनी रंग)

डॉ. वासुदेवनंदन प्रसाद रूप – रचना की दृष्टि से विशेषण के विकारी (दुबला लड़का/दुबली लड़की, दुबले लड़के/दुबली लड़कियाँ) और अविकारी (घरेलू जानवर, आधुनिक काल) ये दो भेद स्वीकार करते हैं। (प्रसाद : 117)

7.3.1.3 संरचना की दृष्टि से वर्गीकरण – डॉ. भोलानाथ तिवारी ने संरचना की दृष्टि से विशेषणों को दो भेदों में विभाजित किया है। (तिवारीः 127)

7.3.1.3.1 मूल (जैसे – सफेद बाल, उजाड़ भूमि आदि, जिनमें एक ही सार्थक भाषिक इकाई होती है।)

7.3.1.3.2 यौगिक (जैसे – कृपालु व्यक्ति, 'कृपा + आलु', धार्मिक बात, 'धर्म + इक' आदि। इनमें एकाधिक सार्थक इकाइयाँ होती हैं।)

7.3.2 असमिया विशेषणों के भेद – असमिया के विविध विद्वानों ने भी अलग–अलग दृष्टियों से विशेषणों का वर्गीकरण किया है। कालिराम मेधि ने लिंग–भेद की दृष्टि से विशेषणों को दो वर्गों में विभाजित किया है। (मेधि : 190)

7.3.2.1 परिवर्तित (जैसे – बुढ़ा मानुह/बुढ़ी तिरोता, बगा लरा/बगी छोवाली)

7.3.2.2 अपरिवर्तित (जैसे – भाल मानुह/भाल तिरोता, चापर लरा/चापर छोवाली)

सत्यनाथ बरा ने 'बहल व्याकरण' में विशेषणों के तीन भेदों का उल्लेख किया है (बरा :71,73)–

7.3.2.3 विशेष्य विशेषण {(विशेष्य का विशेषण), जैसे – दुष्ट लरा, दुखीया मानुह}

7.3.2.4 विशेषणीय विशेषण {(विशेषणों का विशेषण या प्रविशेषण), जैसे – बर दुष्ट लरा, नीचेइ दुखीया मानुह}

7.3.2.5 क्रिया विशेषण (जैसे – लाहे–लाहे जाबा, खरकै आहा)

डॉ. गोलोकचंद्र गोस्वामी ने भी रूप और प्रयोग के आधार पर विशेषणों को 'नाम विशेषण' या 'विशेष्य–सर्वनाम विशेषण' भी रूप और प्रयोग के आधार पर विशेषणों को (नाम विशेषण या विशेष्य–सर्वनाम का विशेषण), 'क्रिया विशेषण' और 'विशेषणीय विशेषण' इन तीन भेदों में विभक्त किया है। (गोस्वामी : 260)

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी के विशेषणों का वर्गीकरण असमिया से मेल नहीं खाता। असमिया में विशेषणों को 'विशेष्य विशेषण', 'विशेषणीय विशेषण', 'क्रिया विशेषण'– इन तीन मुख्य भेदों में विभाजित किया गया है। कुछ वैयाकरणों ने विशेषण के इन तीन भेदों के अलावा 'सर्वनाम विशेषण' को विशेषण का एक भेद स्वीकारा है। हिंदी के कुछ वैयाकरणों ने विशेषण के सार्वनामिक, गुणवाचक और संख्यावाचक– इन तीन भेदों को स्वीकारा है। सार्वनामिक विशेषण का मूलाधार सर्वनाम है। यह विशेषण दूसरे विशेषणों से सर्वथा भिन्न है। इसलिए इसे दूसरे विशेषणों से एक अलग भेद माना गया है। फिर गुणवाचक विशेषण संज्ञा या सर्वनाम के गुण, अवगुण, दशा आदि का बोध कराता है तो संख्यावाचक विशेषण संज्ञा की संख्या का बोध कराता है। गुण और संख्या आपस में अलग–अलग

धर्म सूचित करने के कारण इन दो विशेषणों को अलग–अलग वर्ग में रखा गया है। कुछ वैयाकरण 'परिमाणबोधक' विशेषण को विशेषण का एक अलग भेद स्वीकार करते हैं। यह विशेषण संज्ञा के परिमाण (नाप–तोल) का बोध कराता है। हिंदी में कम, कुछ, अधिक, बहुत, सब आदि ऐसे विशेषण हैं, जिनका प्रयोग परिमाणबोधक विशेषण और अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण के रूप में होता है। लेकिन परिमाणबोधक विशेषण का धर्म सार्वनामिक विशेषण, संख्यावाचक विशेषण, गुणवाचक विशेषण से अलग होने के कारण अगर कोई परिमाणबोधक विशेषण को संख्यावाचक विशेषण का एक प्रमुख भेद न मानते हुए उसे विशेषण का एक अलग प्रकार माने, तो किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

8. स्थापना

8.1 हम हिंदी और असमिया भाषा के संदर्भ में विशेषण की परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं– विशेषण, विशेषण वह विकारी (कभी–कभी अविकारी भी) शब्द है, जो संज्ञा या सर्वनाम के आगे–पीछे बैठकर उसके विशेष धर्म, गुण, संख्या, परिमाण आदि का बोध कराकर वाक्य को और अधिक अर्थपूर्ण, स्पष्ट और आकर्षक बनाता है।

8.2 हिंदी और असमिया में विशेषण संज्ञा या सर्वनाम के गुण, अवगुण, दशा, आकार, परिमाण, संख्या आदि विविध लक्षण बताते हैं।

8.3 दोनों भाषाओं में विशेषण संज्ञा या सर्वनाम के आगे–पीछे आता है।

8.4 हिंदी और असमिया में विशेषण प्रायः विशेष्य या संज्ञा के पहले आता है।

8.5 दोनों भाषाओं में सर्वनाम के साथ विशेषण का प्रयोग प्रायः विधेय रूप में ही देखा जाता है।

8.6 विशेषणविहीन वाक्य की अपेक्षा विशेषणयुक्त वाक्य अधिक अर्थपूर्ण, स्पष्ट और आकर्षक होता है।

8.7 असमिया के विशेषण का वर्गीकरण हिंदी से मेल नहीं रखता, लेकिन विशेषण पर वैज्ञानिक और स्पष्ट रूप से अध्ययन करने के लिए हिंदी विशेषणों के वर्गीकरण को ही व्यापक रूप से आधार मानकर हिंदी और असमिया विशेषणों का अध्ययन किया जा सकता है। इस वर्गीकरण में हिंदी और असमिया के सभी विशेषण आ जाएँगे।

8.8 रूप–रचना की दृष्टि से विशेषण विकारी और अविकारी दोनों प्रकार के हो सकते हैं।

8.9 हिंदी में केवल आकारांत विशेषण पदों का रूप थोड़ा बदलता है, आकारांत पुल्लिंग विशेषण बहुवचन में एकारांत और स्त्रीलिंग एकवचन तथा बहुवचन दोनों में ईकारांत रहता है (जैसे – काला आदमी – काले आदमी, काली औरत – काली औरतें)। लेकिन असमिया में ऐसा नहीं होता है। असमिया में लिंग भेद की दृष्टि से कुछ विशेषण अपरिवर्तित रहते हैं और कुछ परिवर्तित (जैसे – धुनिया मानहु/धुनिया तिरोता, कला मानुह/कली तिरोता, कुरूप लरा/कुरूपा छोवाली), चाहे वे आकारांत हो या अनाकारांत।

8.10 संरचना की दृष्टि से विशेषण के मूल और यौगिक ये दो भेद मान सकते हैं।

8.11 हिंदी और असमिया में ऐसे कुछ विशेषण मिलते हैं। जो दूसरे विशेषणों को निर्देश देता है। अर्थात् यह विशेषणों का भी विशेषण है। इसे 'प्रविशेषण' के अंतर्गत रखा गया है।

8.12 विशेषणों के गुण, संख्या, परिमाण आदि अलग–अलग धर्म के आधार पर हिंदी और असमिया के विशेषणों को सार्वनामिक विशेषण, संख्यावाचक विशेषण, गुणवाचक विशेषण और परिमाणबोधक विशेषण – इन चार प्रमुख भेदों में विभाजित कर सकते हैं।

8.13 हिंदी में विशेषणों के साथ निर्दिष्टतावाचक प्रत्यय का प्रयोग नहीं होता लेकिन असमिया में परिमाणबोधक विशेषण, संख्यावाचक विशेषण, सार्वनामिक विशेषण तथा कुछेक गुणवाचक विशेषणों के साथ निर्दिष्टतावाचक प्रत्यय (खिनि, टा, केइजन, बोर आदि) का प्रयोग होता है।

8.14 हिंदी की अपेक्षा असमिया में अरबी –फारसी विशेषणों का प्रचलन कम मिलता है। इसलिए हिंदी–भाषी लोगों को असमिया में इन विशेषणों को प्रयोग करते समय भाषिक व्याघात से बचने के लिए विशेष सावधान होना पड़ता है।

8.15 हिंदी और असमिया में कुछ ऐसे भी विशेषणों (दुष्ट–लड़का / दुष्ट–लरा, शांत– लड़की / शांत छोवाली) के प्रचलन हैं जो उच्चारण की दृष्टि से भिन्न हैं लेकिन वर्तनी और अर्थ की दृष्टि से एक समान हैं।

8.16 हिंदी और असमिया में कुछ ऐसे भी विशेषणों (वार्षिक आय / बार्षिक आय, सरकारी काम / चरकारी काम, मीठा आम / मिठा आम) के प्रचलन हैं जो अर्थ की दृष्टि से एक समान हैं लेकिन वर्तनी और उच्चारण की दृष्टि से एक–दूसरे से थोड़ा भिन्न हैं। दोनों भाषओं के इस तरह के विशेषणों के उच्चारण में भाषिक व्याघात उपस्थित हो सकता है।

9. निष्कर्ष

हिंदी और असमिया भाषा संस्कृत से उद्‌भुत हुई हैं। हिंदी भाषा का उद्‌भव शौरसेनी, अर्धमागधी और मागधी अपभ्रंश के रूपों से हुआ है तो असमिया भाषा का उद्‌भव मागधी अपभ्रंश से हुआ है। संस्कृत से उद्‌भव होने के कारण यद्‌यपि दोनों भाषाओं में साम्य मिलते हैं, लेकिन रूप, प्रयोग आदि की दृष्टि से इनमें वैषम्य भी मिलते हैं। विशेषणों के संदर्भ में निर्दिष्टतावाचक प्रत्यय के स्तर पर, अरबी–फारसी विशेषणों के स्तर पर, विशेषणों के उच्चारण और वर्तनीगत वैषम्य के स्तर पर भाषिक व्याघात हो सकते हैं। अगर वह व्यक्ति भाषिक व्याघात पर ध्यान नहीं देगा तो न ही शुद्‌ध रूप से असमिया लिख या बोल सकेगा और न ही हिंदी भाषा। इसके अलावा हिंदी और असमिया के विशेषण का वर्गीकरण आपस में मेल नहीं रखता, लेकिन हिंदी विशेषणों के वर्गीकरण को ही व्यापक रूप से आधार मानकर हिंदी और असमिया के विशेषणों का अध्ययन किया जा सकता है। इस वर्गीकरण में हिंदी और असमिया के सभी विशेषण आ जाएँगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गोस्वामी, उपेंद्रनाथ असमिया भाषा व्याकरण, गुवाहाटी : 8वां प्रकाशन, 2007

2. गोस्वामी, गोलोकचंद्र, असमिया व्याकरण प्रवेश, गुवाहाटी : बीणा लाइब्रेरी, तीसरा संस्करण, जनवरी 2009

3. चौधुरी, रीता, मायावृत्त, गुवाहाटी : ज्योति प्रकाशन, पहला संस्करण, 2012

4. बरा, सत्यनाथ, बहल व्याकरण, गुवाहाटीः जनवरी 2008

5. मेधि, कालिराम, असमिया व्याकरण आरू भाषातत्व, 1936

हिंदी

1. गुरु, कामता प्रसाद, हिंदी व्याकरण, वाराणसी : रवि प्रकाशन 2009

2. तिवारी, भोलानाथ, हिंदी भाषा की संरचना, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पहला संस्करण 1999

3. प्रसाद, वासुदेवनंदन, आधुनिक हिंदी व्याकरण और रचना, पटना : भारती भवन, 1998 के 23वें संस्करण का पुनमुर्दण

4. प्रेमचंद, कर्मभूमि, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पहले संस्करण का पुनर्मुद्रण, 1999

शब्दकोश

1. आप्टे, वामन शिवराम, संस्कृत–हिंदी कोश, दिल्ली : 2007

– के द्‌वारा डॉ. रीतामणि बैश्य, एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, गुवाहाटी वि. वि., गोपीनाथ बारदलोई नगर, कामरूप, असम–781014

❑❑❑

ब्रजावली और हिंदी : भाषाई संदर्भ

प्रो. सूर्यकांत त्रिपाठी

कालिदास ने "वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थाप्रतिपत्तये। जगतः पितरौ वंदे पार्वतीपरमेश्वरौ।।"[1] सरीखी प्रार्थना के माध्यम से संभवतः प्रथमतः वाक से अर्थ की प्रतिपत्ति की महत्ता को प्रतिपादित किया था। उसी को दोबारा समझाने का प्रयत्न गोस्वामी तुलसीदास ने किया– "गिरा अरथ जल वीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न। बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न।। अथवा कविहिं अरथ आखर बल साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नट नाचा।"[2] आधुनिक युग में कवि धर्म की परिभाषा के संदर्भ में अज्ञेय द्वारा उल्लिखित किया गया है– "काव्य सबसे पहले शब्द है और सबसे अंत में भी यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है। शब्द का ज्ञान, शब्द की अर्थवत्ता की सही पकड़ कृतिकार को कृती बनाती है।"[3] कहने का अर्थ यह है कि काव्य–सौंदर्य के उद्घाटन संबंधी सभी गुण काव्य–भाषा के ही गुण हैं। काव्य–भाषा कवि की अनुभूति को केवल अभिव्यक्ति ही नहीं प्रदान करती है वरन् उसके अनुभव जगत का हिस्सा बनकर अनुभूति को अनुशासित तथा नियमित भी करने का काम करती है। इसी को दृष्टि में रखकर डॉ. नामवर सिंह ने अपना मत व्यक्त किया है– "किसी कविता की भाषा को 'सुंदर' कहने के बाद उसके कथ्य को असुंदर कहना कुसंगत होगा। कथन को कथ्य से कैसे अलग किया जा सकता है।"[4] इस प्रकार हम देखते हैं कि कविता की सशक्तता तथा विचार व भाव की परिपक्वता उसकी भाषा पर आधारित होती है। कथन और भाषा में पट–तंतु योग होता है। काव्य भाषा का संप्रेषण करता है, वाचन नहीं। भाषा का कवि की सर्जनात्मक शक्ति से अटूट जुड़ाव होता है। अतः भाषा में नवीनता का तात्पर्य है किसी नवीन अनुभव का सामना। शंकरदेव कबीरदास की उक्ति "संसकीरत है कूप–जल, भाषा बहता नीर।" से भली–भाँति भावित थे तो भी संस्कृत का साथ वे पूरी तरह नहीं त्याग पाए। इसी वजह से उन्होंने 'भक्ति रत्नाकर' नामक तत्वनिरूपण ग्रंथ का संकलन–विवेचन संस्कृत में किया, किंतु जनसाधारण के उपयोग की दृष्टि से भजन, कीर्तन तथा उपदेश, आदेश, आख्यान प्रभृति का सृजन लोकभाषा में किया।

असमिया के शुरुआती दौर के कवियों में श्रीमंत शंकरदेव की गणना की जाती है। तत्कालीन बोलचाल की असमिया भाषा को अपनी सृजन–प्रक्रिया में समाविष्ट कर उसे काव्यभाषा का स्वरूप प्रदान करना उनकी महत्वपूर्ण उपलब्धि है। असमिया के अलावा उनकी कुछ रचनाएँ संस्कृत में हैं और अधिकांश तथा सर्वोत्तम रचनाएँ 'ब्रजावली' में हैं। "समस्त शांकरी साहित्य में उपलब्धि की दृष्टि से ब्रजावली की रचनाएँ ही सर्वोत्तम हैं।"[5] शंकरदेव ने पूरे भारत की पदयात्रा की थी। अपनी यात्रा के दौरान उन्होंने उन क्षेत्रों व अंचलों के साहित्य, संस्कृति, सभ्यता एवं जनजीवन के व्यवहार को आत्मसात किया था। भारत के भावनात्मक

ऐक्य को मजबूती प्रदान करने के निमित्त उन्होंने एक ऐसी भाषा का सृजन किया जिसे तत्कालीन संतों की सेतु अथवा माध्यम भाषा भी कहा जा सकता है। यह भाषा उन लोगों को ही ग्राह्य अथवा सहज नहीं थी, अपितु उत्तर–भारत के लोग भी उसे सहजता से समझ लेते थे। द्रष्टव्य है शंकरदेव की भाषा के संबंध में काकासाहेब कालेलकर की यह टिप्पणी– "भारतवर्ष की समस्त यात्रा करने के बाद शंकरदेव ने चाहा होगा कि उनका प्रागज्योतिष और कामरूप बाकी के भारतवर्ष से पृथक एकांत में न पड़ा रहे। उन्होंने अनुभव किया होगा कि यह तभी होगा, जब असम के लोग पड़ोस के प्रांत की भाषा समझ लें और सीख लें। संस्कृत तो पुरानी संस्कृति की भाषा थी ही। वैष्णव संस्कृति की तत्कालीन प्रतिनिधि भाषा, जो ब्रज और मैथिली भाषा थी उसका स्वतंत्र अध्ययन करने की प्रेरणा वे अपने प्राँत के लोगों को नहीं दे सके होंगे। ब्रजभाषा और असमिया भाषा में इतना अंतर तो है नहीं कि दोनों एक दूसरे पर असर न डाल सकती हों।"[6]

आज से तकरीबन साढ़े पाँच सौ वर्ष पूर्व श्रीमंत शंकरदेव ने ही भारत के इस अंचल में हिंदी भाषा की आधारशिला रखी थी। उनके 'वरगीत' और 'अंकिया नाट्य' इसके प्रमाण हैं। उनके नाटकों और वरगीतों की भाषा 'ब्रजावली' है। 'ब्रजावली' तत्कालीन हिंदी है। उसमें जितना अधिक असमिया का उत्स मौजूद है हिंदी का उससे कम नहीं। 'ब्रजावली' यदि देवनागरी लिपि में लिख दी जाए तो हिंदी जानने वालों के लिए अधिक बोधगम्य हो जाएगी। मात्र असमिया लिपि के कारण वह हिंदी जानने वालों के लिए दुष्कर है। द्रष्टव्य है देवनागरी लिपि में 'ब्रजावली' की निम्नांकित पंक्तियाँ–

ईषत हासित मुख चान्द उजोर। दरान मोतिय जैसे नयन चकोर।।
माणिक मुकुट कुंडल गंड डोल। कनक पुतली तनु नील निचोल।।
कर कंकण केयूर झंकार। माणिक कांचि रचित हेम हार।।
चलाइते चरन मंजिय करू रोल। रूपे भुवन भूले शंकर बोल।।

उक्त पंक्तियों को देखते हैं तो विद्यापति का अनायास स्मरण हो आता है और बरबस यह प्रश्न जोर पकड़ने लगता है कि यदि विद्यापति के पद हिंदी के पद हैं तो शंकरदेव के पदों को भी इसी श्रेणी में क्यों नहीं रखा जा सकता ?

'ब्रजावली' का इतिहास पर्याप्त प्राचीन है। इधर बीच कुछ विद्वानों द्वारा 'ब्रजावली' के लिए 'ब्रजबुलि' शब्द का प्रयोग भी किया जाने लगा है। ब्रजबुलि' का प्रयोग 19वीं शताब्दी में ईश्वरचंद्र गुप्त की रचनाओं में हुआ है। उसके बाद ही इस शब्द का साहित्य में प्रचलन दिखाई पड़ता है। डॉ. सुकुमार सेन के अनुसार, "जिस प्रकार असमिया में 'सोनावली' से 'सोनाली' या 'रूपावली' से 'रूपाली' शब्द बने है उसी प्रकार 'ब्रजावली' से 'ब्रजाली' होना चाहिए था पर वैसा न होकर ब्रजावली' हो गया। इस प्रकार 'ब्रजावली बोलि' शब्द से विकसित 'ब्रजाली बुलि' शब्द ही कालांतर में 'ब्रजावली' बन गया।"[7] इस संदर्भ में डॉ. महेश्वर नेओग का कहना है कि 'ब्रजावली' साहित्यिक नाम है, जबकि जनसाधारण इसे ब्रजाली कहते हैं। (एई साहित्यिक भाषाक ब्रजावली, ब्रजबोल आरू असमत साधारण कथात भाषा बोले। 'ब्रजावली' शब्द तो 'चंद्रावली शब्दर दरे गठित 'आवली' विशेष प्रत्यय योग 'तीर' सिद्ध कराय हैछे।)"[8] इसकी पुष्टि डॉ. हरिश्चंद्र भट्टाचार्य एवं बापचंद्र महंत ने भी की है। डॉ. बापचंद्र महंत के मतानुसार, "बंगाली विद्वान इस भाषा को 'ब्रजावली' कहते हैं और उन्हीं का अनुसरण असम के कुछ लोगों ने भी किया है। लेकिन असम के साधारण लोग 'ब्रजावली' ही कहते हैं 'ब्रजावली' नहीं। (असमीयात एई ब्रजावली' शब्दटोबेई 'ब्रजावली' रूपे उच्चरित है, प्रयोग है आहिछे।)"[9] कालिराम मेधि, डॉ. हरिश्चंद्र भट्टाचार्य, बापचंद्र महंत प्रभृति लोगों ने अपने ग्रंथों में इस भाषा के लिए 'ब्रजावली' का ही प्रयोग किया है।

ऊपर दी गई मान्यताओं के अनुसार यह मानना पड़ेगा कि–

(क) 'ब्रजावली' नाम से जानी जाने वाली भाषा की पुरानी और असम के जनमानस में परिव्याप्त संज्ञा 'बगजावली' ही है।

(ख) 'ब्रजावली' शब्द का चलन संभवतः माधवदेव के समय से ही शुरू हुआ है।

(ग) असमी वैष्णव कवियों की 'ब्रजावली' और बंगाली वैष्णव कवियों की 'ब्रजाबुलि' एक नहीं है। इसलिए नाम के भेद से भाषा का भेद भी संकेतित हो जाता है।

इस प्रकार प्राचीन चलन जनमानस में व्याप्ति तथा बंगाली वैष्णव कवियों के 'ब्रजाबुलि' से पार्थक्य के आधार पर शंकरदेव और उनके बाद के असमी वैष्णव कवियों की इस विशिष्ट भाषा को 'ब्रजावली' कहना ही समीचीन प्रतीत होता है। अस्तु यह 'ब्रजबुलि' नहीं ब्रजावली' ही है।

शौरसेनी से 'ब्रजावली' और 'ब्रजभाषा' दोनों ही विकसित हुई हैं। अनंतर इसके ब्रजावली ब्रजभाषा नहीं है। यह स्थिति ठीक वैसी ही है जैसे 'पिंगल' ब्रजभाषा नहीं है। परंतु भाषाई विधान की दृष्टि से 'ब्रजावली' तथा 'ब्रजभाषा' का समीपी संबंध है। इसे यूँ कह सकते हैं कि भाषातात्विक दृष्टि से 'ब्रजावली' का जितना जुड़ाव असमिया, बांग्ला, ओड़िया प्रभृति से है उसकी अपेक्षा ब्रजभाषा से कहीं अधिक। इस प्रकार इसे 'ब्रजभाषा' का ही रूप माना जा सकता है। डॉ. लालजी शुक्ल का शंकरदेव और माधवदेव की भाषिक वैशिष्ट्य के संबंध में यह अभिमत है कि "इनके वरगीतों और नाटकों की भाषा 'ब्रजबुलि'(ब्रजावली) है। जिसका संबंध राजभाषा की अपेक्षा तुलसीदास की अवधी से अधिक है और अन्य काव्य–ग्रंथों की भाषा अवधी के निकट है।"[10] कहने का तात्पर्य यह है कि लालजी शुक्ल 'असमिया' और 'ब्रजावली' में उतनी ही दूरी मानने के पक्ष में है जितनी 'अवधी' तथा 'तुलसी की अवधी' में है। इस प्रकार हम देखते हैं कि डॉ. शुक्ल का उपरोक्त अभिमत संदेहात्मक है। डॉ. वाणी काकोति का उल्लेख है कि "जैसे हिंदी–भाषियों में तुलसी के दोहे लोकप्रिय हैं वैसे ही असमिया–भाषियों में ब्रजावली में रचित शंकरदेव के वरगीत और नाटक।"[11] संभव है कि इसी के अनुसार डॉ. शुक्ल ने भी 'ब्रजावली' को तुलसीदास की अवधी से जुड़ा मान लिया हो।

'ब्रजावली' में समकालीन अवधी तथा भोजपुरी, मगही, मैथिली के भी किंचित प्रयोग जरूर प्राप्त होते हैं। किंतु उससे अधिक 'ब्रजावली' का सान्निध्य ब्रजमंडल की बोली या ब्रजभाषा से अधिक स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। कालिराम मेधि ने भी उसका संबंध मथुरा की बोली से ही बताया है। इसलिए 'ब्रजावली' का संबंध तुलसीदास की अवधी(बैसवाड़ी) या फिर अवधी के किसी भी रूप से जोड़ना समीचीन नहीं। उसका भाषाशास्त्रीय तथा व्याकरणिक विश्लेषण इस बात की पुष्टि करता है कि उसमें सूरदास के पहले की ब्रजभाषा की सारी विशेषताएँ मौजूद हैं। समकालीन पूर्वी प्रयोगों और कुछ स्थानीय विशेषताओं की प्रच्छन्नता के कारण साधारण दृष्टि में ब्रजभाषा से अलग मालूम होती है। किंतु भाषावैज्ञानिक निकष पर वह सूरदास से पहले की ब्रजभाषा का ही एक भाग सिद्ध होती है। दूसरी बात यह कि शंकरदेव के पूर्वजों का आगमन कान्यकुब्ज से हुआ था। इससे यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उन लोगों की मातृभाषा कन्नौजी ही रही होगी। कन्नौजी पश्चिमी हिंदी की एक बोली है, जिसकी पश्चिमी तथा उत्तर–पश्चिमी सीमा ब्रजभाषा से मिलती है। इसलिए उसमें ब्रजभाषा की मिलावट स्वाभाविक है। शंकरदेव के पूर्वजों के गाँव अलीपुखरी में शंकरदेव के समय भी बोलचाल की ग्रामीण भाषा ब्रजी–मिश्रित कन्नौजी ही रही होगी और गाँव के लोगों से संपर्क की भाषा उस समय की असमिया। आज भी असम में बहुशः ऐसे गाँव और पुरवे पाए जाते हैं जिनकी भाषा असमिया– भिन्न–बांग्ला–हिंदी, बोडो प्रभृति है। परंतु अन्य लोगों से संपर्क की भाषा असमिया है। उस समय भी ऐसी स्थिति रही होगी और शंकरदेव ने पैतृक–पारिवारिक और ग्रामीण संपदा के रूप में ब्रजी युक्त कन्नौजी भाषा का ही अर्जन किया होगा। साथ ही असम में निवास के कारण असमिया उन्हें सामाजिक संपत्ति के रूप में प्राप्त हुई। पैतृक– पारिवारिक दाय के रूप में प्राप्त हुई मातृभाषा(ब्रजी मिली कन्नौजी) 'ब्रजावली' में काव्य रचना की प्रेरणा उनके मन में जगी होगी और भारत भ्रमण में उसके सर्वभारतीय रूप को प्रत्यक्ष कर इसे और अधिक बल दिया होगा। कर्मभूमि और धर्मोपदेशक के नाते लोकभाषा असमिया में भी उन्होंने साथ–साथ रचना की। इसीलिए यह

कोई संयोग की बात नहीं कि 'ब्रजावली' की रचनाएँ–वरगीत और नाटक–उनकी सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक उपलब्धि हुई।

श्रीमंत शंकरदेव की 'ब्रजावली' पर अभी तक भाषातात्विक दृष्टि से सम्यक विचार नहीं हुआ है। उनकी 'ब्रजावली' का वैशिष्ट्य सतही तौर पर दो रूपों में विचारणीय है–

I. भाषा व व्याकरण के स्तर पर।

II. अन्य वैशिष्ट्य के स्तर पर।

I. भाषा व व्याकरण के स्तर पर 'ब्रजावली' की व्याकरणिक और भाषिक विशेषताएँ उसे आरंभिक ब्रजी के समीप लाने में पूर्णतया सक्षम हैं। इसके साथ ही इनमें से कुछ विशेषताएँ मगही, भोजपुरी, अवधी और मैथिली में भी प्राप्त होती हैं। मात्र इन्हीं आधारों पर इसे मगही या भोजपुरी, अवधी या मैथिली नहीं कहा जा सकता है। इनकी अपेक्षा इसमें से आरंभिक ब्रजी के विधायी तत्व कहीं अधिक हैं। संक्षेप में इन विशेषताओं को निम्नवत देखा जा सकता है–

1. इसमें प्रारंभिक ब्रजभाषा की प्रायः सभी ध्वनियाँ सुरक्षित हैं। यथा– अँ, अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ। यदि कुछ परिवर्तन दिखता भी है तो वह स्थानीय प्रभाव की वजह से। जैसे– अ का आ (अभरण से आभरण, अषाढ़ से आषाढ, पताक से पाताक आदि) आ का अ (अनुपाम से अनुपम, आति से अति आदि)।

2. लेखन में संस्कृत का अनुसरण अधिक मिलता है। साथ ही उस पर स्थानीय असमिया उच्चारण का भी असर है। यथा–

• सूर्य से सूर्य्य, कार्य–कार्य्य।

• दंत्य 'स' के लिए 'च' या 'छ' का प्रयोग मिलता है। जैसे– ऐसन–ऐचन, कैसे–कैछे इत्यादि।

• प्रारंभिक 'ज' के लिए प्रायः 'य' का प्रयोग हुआ है। जैसे– जत–यत, जो–यो, जहाँ–यहाँ इत्यादि।

3. इसके विभिन्न कारकों में 'हि' विभक्ति का प्रयोग अंतरप्रांतीय प्राकृत (शौरसेनी) के प्रमाण को पुष्ट करता है। यथा– हि–ओहि, मोहि।

4. संबंध कारक के परसर्ग के रूप में 'र', 'एर', 'कर', 'केरे', 'केरि' और 'केरक' के प्रयोग की बहुलता है। पूर्वी सीमा से लेकर पश्चिमी सीमा तक यह प्रवृत्ति प्रायः विभिन्न बोलियों में पाई जाती है, जो इसके अंतरप्रांतीय प्राकृत (शौरसेनी) से विकसित होने को प्रमाणित करती है। जैसे– 'र'–हरिर, 'कर'–सुरपुरकर, 'केरि'–याकेरि।

5. संबंध कारक का परसर्ग 'क' इसे असमिया और बांग्ला से अलग करता है। यथा– *ब्रजक जीवन धन रे नंद कुमार* यह वरगीत ब्रजावली का है। इसमें ब्रजावली के 'ब्रजक' का 'क' परसर्ग असमिया में 'ब्रजर' के 'र' परसर्ग को और बांग्ला में 'ब्रजेर' के 'र' को अलग करता है।

6. इसमें मिलने वाले बहुशः प्रयोग मगही, भोजपुरी, मैथिली, अवधी प्रभृति में आज भी मिलते हैं लेकिन ब्रजी और अंतरप्रांतीय प्रयोग जैसे मगही, मैथिली, भोजपुरी और अवधी के बजाय आरंभिक ब्रजी के निकट लाने में अधिक समर्थ है।

7. कभी–कभी इसे मैथिली मिश्रित बोली या मैथिली की एक बोली मानने का भ्रम भी पाला गया है पर मैथिली से इसका अलगाव पूरी तरह साफ है।

(अ) मैथिली में (मगही) में भी मनुष्य से इतर का बोध कराने के लिए प्रश्नवाचक सर्वनाम 'कथी' का प्रयोग होता है जबकि शंकरदेव ने 'कोन' का प्रयोग किया है।

(ब) मैथिली में भविष्यतकाल के आदर एवं अनादर सूचक प्रयोग भिन्न–भिन्न होते हैं लेकिन शंकरदेव की ब्रजावली में ऐसा नहीं पाया जाता है।

(ग) मैथिली में प्रेरणाधिकार में क्रियापद के रूप अनेक प्रकार के होते हैं। जैसे–

1. अओ – लोक देखओ।

2. औन्हि – हुनका देखोन्हि।

शंकरदेव ने इसके लिए ओक, औक (ई कथा रहोक) का प्रयोग किया है। इसी प्रकार और भी दूसरे अंतर खोजे जा सकते हैं और यहीं यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि 'ब्रजावली' का मैथिली से स्पष्ट अंतर है।

8. 'ब्रजावली' में लिंग और वचन का विपर्यय नहीं होता है। यह प्रवृत्ति 'ब्रजावली' में अवहट्ट आदि से आई है और तत्कालीन बहुशः बोलियों में भी यही प्रवृत्ति देखने को मिलती है। शंकरदेव की

'ब्रजावली' भी इसी का उदाहरण प्रस्तुत करती है। यथा– आवत, चले, परे, देखिअ,.....बोलत, आवत, भेल आदि प्रयोग सर्वथा अपरिवर्तित रहते हैं।

9. इसमें कुछ स्थानीय प्रयोग भी प्राप्त होते हैं जिन्हें भाषा की विकृति नहीं प्रकृति का द्योतक कहा जाएगा। लोकोक्तियों एवं मुहावरों आदि के प्रयोग में यह अधिक स्पष्ट है। उदाहरणार्थ–

मुहावरा : कास परि गैल जींण। (ब्रजावली)
काह परि जीन जुआ। (असमिया)
तेहि डाले धरो भागे से ही डाल। (ब्रजावली)
न करे पाछ भरि। (ब्रजावली)
लोकोक्तिः अमृत सागर पाइ कोने खार खाई।(ब्रजावली)
अमृत सागर पाले कोने नो खार खाबो। (असमिया)
कुबेरक पाइ सिटो खोजे खुद कण। (ब्रजावली)
धन कुबेरक पोआ जने सिल बिचारे। (असमिया)
सागर तरिते चास गले बान्धि सिल। (ब्रजावली)
सागर पार होबोलोई डिगिंत सिल बांधे। (असमिया)

II. अन्य वैशिष्ट्य के स्तर पर

1. 'ब्रजावली' में असमिया के अधिकांश छंद–वर्णित है जबकि 'ब्रजावली' का मात्रिक छंद। छंद–वैचित्र्य तथा वैभिन्य की दृष्टि से 'ब्रजावली' बहुत समृद्ध है।

2. इसके पदांत में अकार का लोप प्रायः नहीं होता है।

3. इसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का व्यवहार सबसे अधिक हुआ है। अर्धतत्सम शब्दों की भी कमी नहीं है।

4. अरबी, फारसी आदि के शब्दों का प्रयोग 'ब्रजावली' में लगभग नहीं के बराबर है।

5. असमिया वैष्णव साहित्य का बहुत अंश 'ब्रजावली' में ही लिखा गया है। इसमें पद्य तथा गद्य का समान रूप से प्रयोग हुआ है।

6. 'ब्रजावली' की महत्वपूर्ण उपलब्धि नाट्य साहित्य है। 'अंकिया' नाटकों में तत्कालीन पद्य और गद्य दोनों के उदाहरण देखे जा सकते हैं। 'अंकिया' नाटकों के महत्व को प्रतिपादित करते हुए डॉ. दशरथ ओझा ने लिखा है कि "हमारे देश ने भाषा और साहित्य के इतिहास में ये भाषा–नाटक उस एकसूत्रीय व्यापक और सार्वदेशिक प्रभृति की शृखंला के रूप में समादृत होने चाहिए जो पूरी होने के पहले ही छिन्न–भिन्न हो गई। यदि ये पूरी हो जाती तो कौन जाने हमारे देश–विशेषतः उत्तरी भारत की भाषा और साहित्य का एकीकृत रूप कितना भव्य हो पाता।"[12]

तमाम उधेड़बुन के बाद इस जिज्ञासा का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है कि 'ब्रजावली' का 'हिंदी' से क्या संबंध? 'ब्रजावली' को क्या 'हिंदी' कहा जा सकता है? इसका सही और सटीक उत्तर यही होगा कि 'ब्रजावली' ब्रजावली ही है। इसे आधुनिक परिप्रेक्ष्य में हिंदी नहीं कहा जा सकता है। इसके साथ ही साथ उसे असमिया या बांग्ला या ओड़िया भी नहीं कहा जा सकता है। इसके विपरीत वह जितनी हिंदी की है उतनी ही असमिया की भी है। 'ब्रजावली' में पुरानी असमिया प्रभृति के प्रयोग ढूँढ़े और पाए जा सकते हैं। लेकिन उसे असमिया नहीं कहा जा सकता। सही मायने में वह पूर्वज भाषा है, वह पूर्वजा है। हिंदी से उसका संबंध भाषा की दृष्टि से है। वह एक प्रकार से सम्मिलित निधि है, खजाना है। बहुशः जनपदीय भाषाओं में जो ब्रजी की मिलावट है–वह शौरसेनी का अंश है। जिसे हिंदी के विशाल व्यापकत्व का द्योतक माना जा सकता है। हिंदी का उन सबके ऊपर अपना–अपना अधिकार है, वे हिंदी के हैं।

इस आलेख में ऊपर जो विचार किया गया है, उसमें शुरुआती ब्रजी के अधिकांश रूप सुरक्षित हैं। ब्रजी या ब्रज रंजित रचनाएँ जिस मायने में हिंदी में स्वीकारी और मानी जाती रही हैं उन मायनों में 'ब्रजावली' को भी हिंदी कहा जा सकता है। लेकिन ऐसा कहते समय हमें इस दृष्टि से सजग रहना चाहिए कि इसमें पुरानी असमिया के विधायी तत्व भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं। इतना तो अवश्य माना जा सकता है कि जिनकी मातृभाषा ब्रजी, अवधी, मगही, मैथिली, भोजपुरी प्रभृति है।

उन्हें इसमें उपलब्ध रचनाओं को समझने और ग्रहण करने में अधिक सरलता हो सकती है और होती भी है। पूर्वी प्रयोगों के बाहुल्य के कारण पश्चिमी राज्यों के हिंदी भाषियों के लिए भाषागत दूरी का बढ़ जाना स्वाभाविक है। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'ब्रजावली' पूर्वोत्तर की भाषिक और साहित्यिक ऐक्य की मिली–जुली संपदा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कालिदास
2. तुलसीदास, रामचरितमानस
3. अज्ञेय, तार सप्तक(प्रथम), पृ.सं. 308
4. नामवर सिंह, कविता के नए प्रतिमान, पृ.सं.108
5. बरूवा, शंकरदेव : वैष्णव सेंट ऑफ असम, पृ.सं. 53
6. काकासाहेब कालेलकर,
7. कार्तिक घोष, विश्वभारती पत्रिका, बांग्ला, 1362, पृ.सं. 111
8. महेश्वर नेओग, श्री शंकरदेव, पृ.सं. 163
9. हरिश्चंद्र भट्टाचार्य, असमिया नाट्य साहित्यर जिलिंगनि, पृ.सं. 22
10. डॉ. लालजी शुक्ल, असमिया और हिंदी वैष्णवों काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ.सं. 266
11. डॉ. बी. के. काकोटी, असमीज : इट्स फॉरमेशन एंड डेवलपमेंट, पृ. सं. 380
12. डॉ. दशरथ ओझा, प्राचीन भाषा नाटक का संग्रह, पृ.सं. 140

– ग्राम–डफी, पोस्ट–डफी (बी एच यू), जिला वाराणसी, उत्तर प्रदेश–221012

❑❑❑

गांधी जी के स्वराज्य चिंतन की वैश्विक परिकल्पना

डॉ. जयपाल सिंह प्रजापति

प्रत्येक मनुष्य को अपना जीवन जीने का अधिकार है। उसे बिना किसी के अधिकारों का हनन किए अपनी सोच के अनुरूप जीवन जीना चाहिए। यह जीवन जीने का अधिकार उसे प्राप्त प्रकृति प्रदत्त अधिकारों में से एक है। मनुष्य को प्रकृति, परिस्थिति के अनुरूप अपने आप कैसे जीना है, कैसे विकास करना है, और कैसे लोक कल्याण की भावना के अनुरूप कर्म करना है इसके लिए उसे चिंतन की भी स्वतंत्रता है। यह सच है कि मनुष्य को जीवन जीने के अधिकार से स्वाभाविक चिंतन करने की स्वतंत्रता अधिक है। यद्यपि जीवन जीने के अधिकार में चिंतन का अधिकार भी समाहित है। फिर भी कोई व्यक्ति क्या चिंतन कर रहा है यह कोई दूसरा भला कैसे जान सकता है! लेकिन, जब कोई व्यक्ति अपने चिंतन के अनुरूप जीने लगता है, कर्म करने लगता है तब उसके चिंतन करने का तरीका धीरे–धीरे उद्घाटित होने लगता है।

महात्मा गांधी (2 अक्तूबर 1869– 30 जनवरी, 1948 ई.) का स्वराज्य चिंतन मनुष्य की स्वाभाविक प्रकृति पर आधारित है। उनके अनुसार मनुष्य अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ, तर्कवान एवं बुद्धिजीवी प्राणी है। मनुष्य की तर्क क्षमता उसे प्रकृति प्रदत्त ऐसे उपलब्ध विकल्पों में से बेहतर विकल्प का चुनाव करने के लिए प्रेरित करती है जो उसके और तत्कालीन समाज तथा राज्य के लिए बेहतर हों। वे इसे एक ऐसी प्रक्रिया मानते हैं जो मनुष्य में स्व–शासन की क्षमता विकसित कर सके और उसका जीवन इसी स्व–शासन की क्षमता पर आधारित हो। किसी व्यक्ति का यह स्व–शासन उसे अनुशासित रहने को कहता है।

गांधी जी का स्वराज्य संबंधी चिंतन विस्तृत व वैश्विक है। गांधी जी के स्वराज्य से अभिप्राय ब्रिटिश शासन अथवा ईस्ट इंडिया कंपनी को भारत से खदेड़ना मात्र स्वराज्य का उद्देश्य नहीं था। अपितु वे हर उस विदेशी अथवा वाह्य शासन से मानव समाज की स्वतंत्रता चाहते थे जो किसी व्यक्ति अथवा राष्ट्र पर बल अथवा छलपूर्वक शासन करना चाह रहा हो या शासन करता हो। इसलिए गांधी जी का स्वराज्य संबंधी चिंतन केवल भू–सीमा, जाति, संप्रदाय अथवा वर्ग विशेष तक सीमित नहीं था बल्कि उनके स्वराज्य का विस्तार स्व = स्वयं (मन) और राज्य = सुचारु राजव्यवस्था तक विस्तारित है। अर्थात् स्वयं से लेकर राज्य व्यवस्था के अनुरूप संयम, सिद्धांतों का अनुपालन एवं संचालन भी शामिल है।

विश्व कल्याण का भाव ऐसा नहीं कि अनायास ही गांधी जी के स्वराज्य चिंतन में उद्भूत हो गया हो, ऐसा नहीं है। बल्कि इसके बीज भारत में अनादिकाल से चली आ रही परंपरा "सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्।" अर्थात् सभी सुखी हों, सभी स्वस्थ और निरोगी हों, सभी का सदैव कल्याण हो तथा किसी के भाग्य में कोई दुख न हो, पर

आधारित है। वैश्विक दृष्टि से उनका यह चिंतन प्रकृति प्रदत्त अधिकारों में से यह प्रकृति किसी एक व्यक्ति की अपनी नहीं, सबकी है, सबके लिए है की इस भावना का संचार करती है। उनके अनुसार "व्यक्ति के स्तर पर स्वराज्य का अर्थ यह था कि व्यक्ति का अपने ऊपर पूर्ण नियंत्रण होना चाहिए। इस तरह ये आत्मसंयम का पर्याय था जो व्यक्ति को सच्चरित्र और महान बनाता है और उसे समाज की उन्नति एवं कल्याण में महत्वपूर्ण योगदान देने का सामर्थ्य प्रदान करता है।"[1]

गांधी जी ने जो स्वराज्य संबंधी चिंतन किया उसमें एक ऐसे वैश्विक समाज की कल्पना है जिसमें गरीब, वंचित एवं शोषित वर्ग का स्वराज हो, जिसके मूल में वर्गविहिन, शोषण एवं भेद–भावमुक्त समाज बीज रूप में विद्यमान है। वे एक ऐसा समाज चाहते हैं जहाँ सभी वर्गों में समानता, सहिष्णुता एवं सद्भावना के भाव अखंडित रूप से प्रज्ज्वलित होते रहें जो आपसी टकराव एवं वैमनस्य रहित ऐसे मनुष्यों का सुदृढ़ समाज हो जिनके मन, वाणी एवं कर्म में तारतम्यता हो और जो निरंतर सत्य और अहिंसा के मार्ग का अनुसरण करते हुए शांति, सौहार्द, आपसी भाईचारे के आधार पर स्वराज्य प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता हो।

इसलिए वे अपने स्वराज्य चिंतन में एक ऐसे स्वाधीन भारत की कल्पना करते हैं जिसमें आग्रहपूर्वक स्वराज्य प्राप्ति है; दुराग्रह का कोई स्थान नहीं। उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिंद स्वराज' में भी स्वराज्य इस तरह स्पष्ट किया है–

(1) अपने मन का राज्य स्व–राज्य है।

(2) उसकी कुंजी सत्याग्रह, आत्मबल या करुणा बल है।

(3) उस बल को आजमाने के लिए स्वदेशी को पूरी तरह अपनाने की ज़रूरत है।

(4) हम जो करना चाहते हैं वह अंग्रेज़ों के लिए (हमारे मन में) द्वेष है इसलिए उन्हें सजा देने के लिए नहीं करें, बल्कि इसलिए करें कि ऐसा करना हमारा कर्तव्य है। तात्पर्य यह कि अंग्रेज़ अगर नमक–महसूल रद्द कर दें, लिया हुआ धन वापस कर दें, सब हिंदुस्तानियों को बड़े–बड़े ओहदे दे दें और अंग्रेज़ी लश्कर हटा लें, तो हम उनकी मिलों का कपड़ा पहनेंगे, या अंग्रेज़ी भाषा काम में लाएँगें, या उनकी हुनर–कला का उपयोग करेंगे ऐसी बात नहीं है। हमें यह समझना चाहिए कि वह सब दरअसल नहीं करने जैसा है, इसलिए हम उसे नहीं करेंगे।

"मैंने जो कुछ कहा है वह अंग्रेज़ों के लिए द्वेष होने के कारण नहीं बल्कि उनकी सभ्यता के लिए द्वेष होने के कारण कहा है"[2] इसलिए गांधी जी का स्वराज्य चिंतन केवल शासन व राज्य व्यवस्था को हासिल करने का उद्देश्य लेकर नहीं चलता बल्कि उनका स्वराज्य चिंतन मनुष्य के मन में परिवर्तन लाकर भाईचारा स्थापित करने को कहता है और इसी के आधार पर अंग्रेज़ों के मन को शुद्ध किया जा सकता है।

स्वभावतः मनुष्य का आत्मबल उसके सत्मार्ग और सत्कर्म से बढ़ता है। यही नहीं उसके आत्मविश्वास की वृद्धि के लिए भी सत्मार्ग और सत्कर्म के अनुसंगिक मार्ग पर अहिंसात्मक संघर्ष का योगदान महत्वपूर्ण है। इसलिए गांधी जी के स्वराज्य चिंतन का उद्गम बिंदु 'स्व' की परिशुद्धि और समाजोन्मुखी चिंतन स्वराज्य के मूल में प्रदिप्त है। प्रत्येक मनुष्य में यह सोच विकसित करना कि 'स्व' का मतलब आत्मकेंद्रित चिंतन न होकर समाज और प्रत्येक प्राणी के कल्याण के लिए चिंतन है। मनुष्य का समाज के प्रति सकेंद्रण, सद्भावना और सदाचार एवं समाजोत्थान के लिए निश्छल चरित्र सभ्यता के विकास के लिए आवश्यक है। यह तभी संभव है जब मनुष्य स्व को पहचाने व परिशुद्ध मन से समष्टिहित चिंतन के सर्वे भवंतु सुखिनः भाव से कार्य करे। मनुष्य के अंदर का यह भाव स्वराज्य के मार्ग का पहला मील का पत्थर है।

उनका यह चिंतन मनुष्य व संस्कृति एवं समाज व विकास के साथ–साथ मनुष्य और विकास का प्रकृति के साथ शक्ति संतुलन है। जो सभ्यता के विकास को अधोगामी न ले जाकर उर्ध्वगामी

ले जा सकेगा। आज के तीव्रतम तकनीकी विकास के आधारस्थल पर खड़े होकर हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जिस सभ्यता का जितनी गुणात्मक गति से विकास हुआ है उनका पतन भी उसी गति से संभव है, स्वाभाविक गति से विकसित सभ्यता आज भी जीवित है; भारत और मिश्र इसके उदाहरण हैं।

इसलिए गांधी जी भारतीय स्वाधीनता के लिए उन बिंदुओं और विकल्पों के पुनर्सृजन की बात करते हैं जो प्राचीन भारतीय समाज को सदियों तक व्यवस्थित रखे रहे हैं और उन बिंदुओं को भी जिन्होंने भारत के इस सुदृढ़ देश को आंशिक रूप से खंडित किया। उनके अनुसार खादी का दैनिक जीवन में उपयोग, हिंदू–मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता, सत्य और अंहिसा तथा आपसी सद्भाव स्वराज्य प्राप्ति के आधार स्तंभ हैं और ये सभी अल्पकालीन नहीं अपितु किसी भी देश के स्वराज्य के लिए आधार स्तंभ रहे हैं। हिंसक प्रवृत्ति व हिंसक साधनों का उपयोग करते हुए विस्फोट, विध्वंसक तोड़–फोड, अवज्ञा अथवा विरोधपूवर्क कार्यों से प्राप्त स्वराज्य स्थाई नहीं होगा, उसकी बुनियाद इतनी दृढ़ नहीं होगी कि वो किसी राष्ट्र की स्वाधीनता स्थाई रखे और भविष्य निर्धारित कर सके। जब तक की शासन वर्ग के जेहन में यह परिवर्तन न आ जाए कि हमारा अधिकार व कर्तव्य क्या है और इसकी सीमा क्या है?

गांधी जी द्वारा कल्पित स्वराज्य में मूलतः अमीर–गरीब, छोटा–बडा, ऊँच–नीच का भेदभाव न हो अपितु जीवनयापन हेतु सभी को आवश्यक मूल–भूत सुविधाएँ उपलब्ध हों। गांधी की यह कल्पना उनकी निम्न पंक्तियाँ स्पष्ट करती हैं–''स्वराज्य में राजा से लेकर प्रजा तक एक भी अंग अविकसित रहे, ऐसा नहीं होना चाहिए। उनमें कोई किसी का शत्रु ना हो सब अपना–अपना योगदान करें, कोई निरक्षर न रहे, उत्तरोत्तर सबके ज्ञान की वृद्धि होती जाए, सारी प्रजा में कम से कम बीमारियाँ हों, कोई भी दरिद्र न हो, परिश्रम करने वालों को बराबर काम मिलता रहे, उसमें जुआखोरी, मद्यपान और व्यभिचार न हो, वर्ग विग्रह न हो धनिक अपने धन का विवेकपूर्वक उपयोग करें, भोग विलास की वृद्धि करने अथवा अतिशय संचय करने में नहीं। ऐसा नहीं होना चाहिए कि मुट्ठी भर धनिक पच्चीकारी के महलों में रहें और हजारों अथवा लाखों लोग हवा और प्रकाशविहीन कोठरियों में रहें।''[3]

इसलिए स्वराज्य प्राप्ति के क्या कारगर उपाय हो सकते हैं जिससे कि समाज सुदृढ़ हो जाए और आत्मनिर्भर बन सके। इसके लिए उन्होंने निम्न बिंदु निर्धारित किए–

1. ''हम सभी को देश के लिए कम से कम एक घंटा रोज सूत कातना चाहिए।

2. हम सभी को हाथकता और हाथबुना खद्दर पहनना चाहिए।

3. हर एक को विदेशी वस्त्रों का त्याग करना और खद्दर पहनना चाहिए।

4. हिंदुओं को चाहिए कि वे अस्पृश्यता को अपराध और पाप समझें।

5. हिंदुओं, मुसलमानों, ईसाइयों, पारसियों और यहूदियों सभी को मिल–जुलकर शांतिपूर्वक और भाई–भाई की तरह रहना चाहिए।

6. हमको जुआ खेलना और शराब पीना छोड़ देना चाहिए।

7. अपनी–अपनी पद्धति के अनुसार विनम्र भाव से ईश्वर की पूजा करनी चाहिए।

8. हम सभी को सुबह तड़के मुँह धोकर, दाँत साफ करके और अपने आपको पूरी तरह स्थिर चित्त बनाकर ईश्वर का नाम लेना चाहिए।

9. हमें ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि वह हमें नेक बननें और नेक रहने में सहायता दें।

10. हमें ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि वह हमें अपने देश के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करने में सहायता दें।

11. हमें किसी का अहित करने या किसी को आघात पहुँचाने का विचार मन में नहीं लाना चाहिए। यदि हम ये सब काम कर सकें तो बहुत

कम समय में हम स्वराज्य प्राप्त कर लेगें। अगर हमें ये सब काम करने हैं तो हमें अनुशासन पालन सीखना होगा।''[4]

उपर्युक्त बिंदु वैश्विक मानव समाज को आत्मनिर्भर बनाने के लिए आवश्यक हैं। यद्यपि शासन व आधिपत्य का दूसरा मार्ग बलपूर्वक, हिंसात्मक भी हो सकता है जैसा कि वर्तमान परिवेश में वैश्विक घटनाक्रम लगातार इस ओर संकेत कर रहा है, लेकिन यह सच नहीं है।

गांधी जी राष्ट्रीय आंदोलन को सदैव ही अनुशासित एवं लक्ष्योन्मुख बनाने के पक्षधर रहे हैं। उन्होंने सदैव ही अंहिसा द्वारा स्वराज्य प्राप्ति को सर्वश्रेष्ठ माना है। स्वराज्य प्राप्ति में खादी किस प्रकार मदद कर सकती है? यह प्रश्न बार–बार गांधी से पूछा जाता रहा है। इसके लिए उनका जवाब था –

1. भारत की तीन–चौथाई आबादी ऐसे किसानों की है जिनके पास न पूरा काम है और न पूरा भोजन। खादी उन्हें काम और भोजन प्रदान कर सकती है।

2. इंग्लैंड के लिए भारत को गुलाम बनाए रखने का एक प्रमुख कारण यह है कि उनके सूती कपड़े के लिए भारत एक बहुत अच्छा बाजार है और खादी उनके इस बाजार को खत्म कर सकती है।

3. खादी करोड़ों ऐसे दीन–दुखी किसानों को अतिरिक्त रोजागार प्रदान कर सकती है जो अपनी जमीन नहीं छोड़ सकते और इसलिए मिलों में काम करने के लिए नहीं जा सकते।

4. सूती कपड़ा मिलें इतना पर्याप्त रोजगार मुहैय्या नहीं करा सकती जिससे बेरोजगारों के बहुत बड़े समुदाय को कोई राहत पहुँच सके।

5. खादी के उत्पादन को बहुत थोड़ी लागत पर शीघ्र ही एक अत्यंत व्यापक स्तर पर संगठित किया जा सकता है जबकि मिलों की संख्या में कोई ठोस वृद्धि करने के लिए जबर्दस्त खर्च करना पड़ेगा और इसमें कई वर्ष लग जाएँगे।''[5]

राज्य की प्रांसगिकता के संदर्भ में गांधी जी के विचार प्रसिद्ध अमरीकी दार्शनिक थॉरो (12 जुलाई, 1817–6 मई, 1862) से प्रभावित थे। थॉरो पर प्राचीन भारतीय दर्शन पड़ा। उन्होंने होमर, हीगल, वड्सवर्थ, कॉलरिज, मिल्टन का अध्ययन किया था। थॉरो प्रकृति प्रेमी थे उन्होंने आत्मनिर्भरता आधारित जीवनयापन करने का प्रयास किया। कान्कॉर्ड नामक सरोवर के निकट स्वनिर्मित झोपड़ी में निवास किया बाद में अपने स्वतंत्र चिंतन के आधार पर उन्होंने 'लाइफ इन द वुड्स' पुस्तक लिखी जो 1854 ई. में बोस्टन से प्रकाशित हुई। थॉरो अपने निबंध "सविनय अवज्ञा" के लिए जाने जाते हैं। इसका प्रकाशन फरवरी 1849 ई. में हुआ। इस निबंध के प्रथम प्रकाशन का शीर्षक 'रेजिस्टेंस टू सिविल गवर्नमेंट' था जिसमें उन्होंने राज्य संबंधी विचार लिखे हैं। थॉरो राज्य को विवेकहीन संस्था मानते हैं क्योंकि राज्य बहुमत के पक्ष में राज्य चलाती है और यह जरूरी नहीं की राज्य सत्य के पक्ष में हो इसलिए वे राज्य व्यवस्था को कृत्रिम मानते हैं और व्यक्ति को सार्वभौमिक प्राणी। वे मानते हैं हम पहले व्यक्ति हैं प्रजा बाद में। लेकिन राज्य के दृष्टिकोण से हम पहले प्रजा हैं। उनके अनुसार "यदि प्रत्येक व्यक्ति सचेत है तो समूह स्वयं भी सचेत हो जाएगा क्योंकि समूह व्यक्तियों का ही योग है।''[6]

थॉरो की तरह गांधी भी राज्य को एक अनिवार्य बुराई मानते हैं तथा हिंसा पर आधारित मानते हैं। गांधी जी के अनुसार स्वशासन से अभिप्राय एक ऐसी शासन प्रक्रिया से है जहाँ पर जनता को अपना संविधान बनाने, अपनी इच्छा के अनुरूप उपयुक्त शासन व्यवस्था का चयन करने एवं अपने अधिकारों को सहजतापूर्वक प्राप्त करने की स्वतंत्रता प्राप्त हो। इसके अलावा जनता के अधिकार केवल प्रतिनिधि चुनने तक ही सीमित न हों, अपितु, यदि जनप्रतिनिधि जनता के हितों का संरक्षण करने में सक्षम नहीं है तो वे उन्हें चुनौती देने, आलोचना करने तथा वापस बुलाने का भी अधिकार रखते हों।

वस्तुतः गांधी जी का स्वराज्य संबंधी चिंतन ब्रिटिशकालीन भारत की तत्कालीन परिस्थितियों की उपज अवश्य कही जा सकती है लेकिन

वास्तविकता यह है कि इसके बीज मानव के आत्मबल तथा किसी भी अन्याय, शोषण एवं पराधीनता के विरुद्ध मानव मुक्ति जैसे तत्व विद्यमान रहे हैं जिसमें अयं निजः परोवेत्ति गणनालघुचेतशाम्। उदारचरितानांतु वसुधैव कुटुम्बकम्।। अर्थात् यह मेरा है, यह उसका है, ऐसी सोच संकुचित चित्त वाले व्यक्तियों की होती है; उदार चरित वाले लोगों के लिए तो यह संपूर्ण धरती ही एक परिवार है जैसी चिंतन परंपरा विद्यमान रही है। इसी प्राचीन भारतीय परंपरा का उद्घोष होता रहा है अथर्ववेद में कहा भी गया है कि 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' अर्थात् धरती हमारी माँ है और हम उसकी संतान। गांधी जी के इस स्वराज्य चिंतन की परिकल्पना में यह बीज बिंदु कहीं–न–कहीं विद्यमान रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गाबा, ओम प्रकाश (2007) भारतीय राजनीति विचारक नोएडा : मयूर पेपरबैक्स प्रकाशन

2. गांधी जी (1949) हिंद स्वराज, अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन मंदिर पृ. 87

3. संपूर्ण गांधी वांड्मय, खंड 69, पृ. 59

4. शर्मा, शैलबाला (2016), गांधी चिंतन जयपुरः शील सन्स प्रकाशन

5. संपूर्ण गांधी वांड्मय, खंड 40, पृ. 456

6. hhttps://machetegroup.files.wordpress.com/2011/10/resistance.pdf.

– विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, पंडित सुंदरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

❑❑❑

भक्ति साहित्य आधारित सर्जनात्मक लेखन : कबीर केंद्रित पक्ष

नेहा मिश्रा

हिंदी में भक्ति साहित्य आधारित अकादमिक लेखन विपुल मात्रा में है। कबीर को खारिज करने से लेकर प्रतिष्ठित करने तक धुआँधार आलोचकीय प्रतिक्रियाएँ होती रही हैं। शुक्ल जी से लेकर धर्मवीर, कमलेश वर्मा तक ने कबीर की नई व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं। दलित चिंतक धर्मवीर ने तो कबीर पर कब्जे की राजनीति शीर्षक लेख ही लिख दिया था जिसका सार–संक्षेप यही है कि सब कोई अपने–अपने कबीर को तलाश रहे थे, अपने–अपने राम की तर्ज पर। कबीर की प्रासंगिकता व अप्रासंगिकता को लेकर काफी बहस हो चुकी है और आज हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हुए हैं कि कबीर निस्संदेह भक्ति साहित्य की उपलब्धि हैं। किसी भी कवि की ख्याति या स्वीकृति के तीन पैमाने हो सकते हैं या होने चाहिए–

1. अकादमिक जगत में स्वीकृति
2. जन सामान्य में स्वीकृति
3. उस कवि को केंद्र में रखकर किया गया सर्जनात्मक लेखन

उपरोक्त पहले और दूसरे बिंदुओं के निकष पर कबीर बिल्कुल खरे उतरते हैं, उनकी महानता असंदिग्ध है। इस शोध पत्र का उद्देश्य कबीर को केंद्र में रखकर किए गए सर्जनात्मक लेखन की खोजबीन एवं विश्लेषण करना ही है।

कबीर केंद्रित सर्जनात्मक लेखन की खोजबीन के पहले भक्ति साहित्य के अन्य कवियों पर किए गए सर्जनात्मक लेखन पर एक विहंगम दृष्टि डालना यहाँ जरूरी है। भक्तिकाल के महत्वपूर्ण कवि तुलसीदास के जीवन को आधार बनाकर अमृतलाल नागर ने जीवनी परक उपन्यास लिखा। तुलसी के जीवन और समय को समझने के लिए वह एक जरूरी दस्तावेज की तरह है। निराला ने 'तुलसीदास' शीर्षक एक लंबी कविता लिखी। जिसमें तुलसी के जीवन–संघर्षों को उन्होंने बहुत ही मार्मिक ढंग से उकेरा है। तुलसी अपने बाद की पीढ़ियों के रचनाकारों के रचनात्मक प्रेरणा–स्रोत बने रहे। यह अकारण नहीं है कि त्रिलोचन जैसा कवि यह घोषणा करता हो कि *तुलसी बाबा, भाषा मैंने तुमसे सीखी / मेरी सजग चेतना में तुम रमे हुए हो*। अमृतलाल नागर ने 'सूर' के जीवन को आधार बनाकर 'खंजन नयन' लिखा। माधव हाड़ा ने मीरा केंद्रित 'पंच चोला पहिर सखीरी' जैसी रचना लिखी। जायसी भी समकालीन रचनाशीलता के केंद्र में रहे हैं। युवा कवि अरुण देव की पंक्ति है– *जो मुझे देखकर हँसते हैं मेरी कविता पढ़कर रो देंगे।*[1] भक्तिकाल के प्रायः सभी प्रतिनिधि कवियों ने हिंदी की रचनाशीलता को किसी न किसी मायनों में अनुप्राणित किया है। बाद की पीढ़ी की रचनाशीलता को प्रभावित करने की परंपरा पश्चिम में भी रही है। मैथ्यू अर्नाल्ड की कविता 'शेक्सपीयर' का यहाँ उल्लेख जरूरी है– 'Others abide our question/Thou art free'[2]

जहाँ तक मेरी दृष्टि है हिंदी साहित्य में कबीर ऐसे रचनाकार हैं जिनके व्यक्तित्व व कृतित्व

ने आगामी पीढ़ी की रचनाशीलता को बहुत दूर तक प्रभावित किया है। सर्जनात्मक रचनाशीलता की विभिन्न विधाओं के केंद्रीय थीम कबीर रहे हैं। न केवल लेखन बल्कि कलाओं के अन्य रूपों में भी। हिंदी के अलावा अन्य भारतीय भाषाओं में भी कबीर का व्यक्तित्व रचनात्मक स्रोत का रहा है। बांग्ला के क्षितिमोहन सेन और रवींद्रनाथ टैगोर ने कबीर के सारे पदों का अंग्रेजी अनुवाद करके विश्व के सम्मुख पहले पहल उपस्थित किया। उन अनुवादों की एक दीर्घ भूमिका एडविन अंडरहिल ने लिखी। अंग्रेजी के कवि अरविंद कृष्ण मेहरोत्रा ने कबीर के पदों कि अनुरचना की है। कबीर के प्रसिद्ध पद्य 'बोलना का कहिए रे भाई / बोलत बोलत तत नसाई के आधार पर एक लंबी कविता लिखी। टैगोर एवं अंडरहिल के बाद समकालीन अंग्रेजी लेखन पर भी कबीर का प्रभाव स्पष्टतया देखा जा सकता है।

कबीर सदियों से हिंदी सहित संपूर्ण भारतीय भाषाओं के रचनाकारों के प्रेरणा स्रोत रहे हैं। कुमार गंधर्व के गायन को शास्त्रीय ऊँचाई तक पहुँचाने में कबीर के पदों की महत्वपूर्ण भूमिका है। 'उड़ जाएगा हँस अकेला', 'हिरना समझ बूझ बन चरना', 'झीनी झीनी बीनी चदरिया', 'सुनता है गुरुग्यानी' आदि पद कुमार गंधर्व के गायन की उपलब्धि हैं। कबीर के इन निर्गुण भजनों का लोक में भी काफी प्रचलन है। विभिन्न बोलियों में अलग–अलग तरीकों से इन पदों को गाया जाता है। रेणु का 'मैला आँचल' यूँ तो कबीर पर केंद्रित उपन्यास नहीं पर कबीर के निर्गुण की गूँज उस पूरे उपन्यास में आसानी से सुनी जा सकती है। कबीर मठ उस उपन्यास का प्रमुख प्लॉट है, जिसके इर्द–गिर्द कहानी चलती रहती है। कथा के विस्तार के क्रम में जगह–जगह पर कबीर के पद दर्शाए गए हैं। जैसे– "काँचहि बास के पिंजरा, जामे दियरा न बाती, हंसा उड़ जाए आकास, कोई संगी न साथी।"[3] कबीर मठ के महंत के मरने पर कथा भूमि की पृष्ठभूमि में यह पद एक उदास वातावरण की सृष्टि करता है। जुलाहों के जीवन पर लिखे उपन्यास 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' की कथा सृष्टि कबीर से अनुप्राणित है। हिंदी फिल्मों के चर्चित लेखक निर्देशक कवि गुलजार का पूरा का पूरा लेखन ही कबीर को अपने भीतर जज्ब किए हुए है। "मुझको भी तरकीब सिखा दे यार जुलाहे।"[4] कहने का आशय यह है कि चाहे फिल्म हो, लोक हो, लोकगीत हो, शास्त्रीय संगीत हो, समकालीन लेखन हो। सभी जगह कबीर अनिवार्य रूप से उपस्थित हैं– किसी न किसी रूप में।

समकालीन कविता के वरिष्ठ कवि कुंवर नारायण अपने साक्षात्कारों में कबीर से प्रभावित होने का उल्लेख बार–बार करते रहे हैं। उनकी एक प्रसिद्ध कविता है– 'आजकल कबीरदास' जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है कि वे कबीर की व्याप्ति मध्यकाल तक सीमित न होकर 'त्रिकाल' तक मानते हैं। इस लंबी कविता में कबीर की वर्तमान संभाव्यता को कई कोणों से विश्लेषित किया गया है। जैसे यही कि आज अगर कबीर होते तो उनकी स्थिति क्या होती। क्या वे पहले की भाँति निर्द्वंद्व और निर्भीक होकर अपनी बात कर सकते या यह समाज उन्हें अपनी रुखाई और बेहयाई से 'अनमना' करने पर विवश कर देता।

सह न सके जब
जग की उलट बाँसी
छोड़ दिया कासी।[5]

इस कविता में कुंवर नारायण वर्तमान की विसंगतियों से पीड़ित–उत्पीड़ित कवि रचनाकार की बानी को दर्ज करते हैं। यहाँ सुरेंद्र वर्मा के एक नाटक 'आठवाँ सर्ग' का स्मरण हो जाना लाज़िमी है जिसमें महाकाल के मुख्य पुजारी द्वारा कालिदास को यह निर्देश दिया जाता है कि आप अपने शिव–पार्वती के शृंगार–रीति संबंधी पदों को हटा लें। कालिदास दृढ़ता से उसको इनकार कर देते हैं। कालिदास के इस फैसले ने उनका राज्याश्रय तक छीन लिया। लेकिन रचना की शर्त पर वे सब कुछ कुर्बान कर देते हैं। 'अकुतोभया वृत्ति' की यह प्रवृत्ति कालिदास से लेकर कबीर के रास्ते ईमानदार लेखकों में अब भी वर्तमान है। कुंवर नारायण इस कविता में कबीर के साहस को अंकित करते हुए कहते हैं–

नापसंद था मुझे
सत्ता के दरबारों में सर झुकाना
जंजीरों की तरह लगते थे मुझे
दरबारी कपड़े
जिनमें अपने को जकड़े
पेश होना पड़े किसी को भी
भरे दरबार में
चाहिए एक ऐसी मुक्ति
जिसमें न प्रसन्नता हो न उदासी
न किसी का प्रभाव हो न दबाव।[6]

प्रसिद्ध उपन्यासकार मिलान कुंदेरा का मानना है कि "यदि आप एक ही ढर्रे का जीवन जीते हैं तो आपका जीवन व्यर्थ है।"[7] मनुष्य होने की पहली शर्त ही है कि जीवन के समांतर एक और जीवन होना, कबीर जुलाहा थे। कपड़ा बुनते थे और बाजार में उसे बेचते थे। प्रसिद्ध इतिहासकार हरवंश मुखिया का मानना है कि कबीर का स्वावलंबन ही उन्हें इतना निर्भीक बनाता है। कबीर दो तरह के जीवन को अपने भीतर संभव बनाते हैं। एक जीवन जिसमें उनके दुनियावी कार्य व्यापार हैं मसलन कपड़ा बुनना व बाजार में उन्हें बेचना। दूसरा उनका रचनात्मक जीवन जिसमें कबीर की बानी है, व उनके पद हैं। यह भी महत्वपूर्ण है कि इन दोनों जीवन में कोई द्वैत नहीं है बल्कि वे एक दूसरे के पूरक लगते हैं। कबीर कोई वैरागी संत नहीं थे, वे बाकायदा गृहस्थ थे, वस्तुओं से घिरे रहने वाले थे। बावजूद वस्तुओं या बाजार को अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया। कबीर का एक प्रसिद्ध पद है– "कबीरा खड़ा बाजार में", यहाँ यह देखने योग्य है कि कबीर कहीं एकांत में खड़े होकर आह्वान नहीं कर रहे हैं, बल्कि सरे बाजार लोगों को पुकार रहे हैं। बाजार में रहकर बाजार से अप्रभावित होना यह कोई कबीर से सीखे। मिथकों में जनक को 'विदेह' कहा गया है इसी तर्ज पर कबीर भी बाजार की हर तरह की परिघटना में शामिल होकर उससे रंच मात्र भी प्रभावित नहीं होते। कवि कुँवर नारायण कविता में लिखते है– *अनर्गल वस्तुओं/और आत्मरत दुनिया से विमुख/एक निरूद्वेल में/लिखकर एक अमिट हस्ताक्षर प्रेम।*[8]

कुँवर नारायण की ही तरह केदारनाथ सिंह कबीर को अपनी कविता का विषय बनाते हैं। केदारनाथ सिंह के एक कविता का नाम ही है 'उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ' केदार जी के संग्रह के शीर्षक पर ज़रा गौर फरमाए– 'उत्तर कबीर' (पोस्ट कबीर), कबीर को आज के समय में शिफ्ट करना या अवस्थित करना, कबीर को आज के समय में रखकर जाँच–परख करना है। केदार जी कविता में यही कार्यवाही कर रहे हैं। कबीर जो कि मध्यकाल के एक संत हैं उनको आज के समय में रखकर देखने का जतन हिंदी के इन दो शीर्षस्थ कवियों ने अपनी कविता में किया है। मध्यकाल से समकालीन समय में कबीर का यह प्रक्षेपण उनकी रचनात्मक प्रासंगिकता को ही दर्शाता है। यह बड़ा दिलचस्प अध्ययन होगा कि जिस भी रचनाकार ने कबीर को अपनी रचना का विषय बनाया है, उन्हें मध्यकाल से समकालीन समय में स्थापित किया है। कबीर जैसा रचनात्मक सौभाग्य बहुत कम रचनाकारों व लेखकों को नसीब होता है। भीष्म साहनी अपने एक साक्षात्कार में कहते हैं कि "कबीर का जीवन और लेखन दोनों ही मुझे बड़ा प्रभावित करता रहा है। वैसा बेबाक लेखन दुर्लभ है। मैंने तो उन पर उपन्यास लिखने की योजना भी बनाई थी पर अधूरी ही रह गई। हालाँकि वह योजना 'कबीर खड़ा बाजार में' दूसरी विधा नाटक के रूप में सामने आई।"[9]

नई कविता के महत्वपूर्ण कवियों में शुमार विजयदेव नारायण साही के एक कविता संग्रह का नाम ही 'साखी' है, सर्वविदित है कि कबीर के दोहों का संकलन भी इसी नाम से पुस्तककार प्रकाशित है। यह अकारण नहीं है कि नई कविता के शीर्षस्थ कवि विजयदेव नारायण साही, कुंवर नारायण, केदारनाथ सिंह ने कबीर पर कविताएँ लिखी हैं। सच बोलने का साहस, निर्भीकता, निरूद्वेल, बेबाकपन, फक्कड़ाना प्रवृत्ति आदि जैसे पद कबीर के व्यक्तित्व से गहरे जुड़े हुए प्रतीत होते हैं। ज्यादा विस्तार में न जाकर साही की कविता 'प्रार्थना गुरु कबीर दास के लिए' की इन पंक्तियों को देख सकते हैं–

कि इस दहाड़ते आतंक के बीच
फटकार कर सच बोल सकूं
और इसकी चिंता न हो
कि इस बहुमुखी युद्ध में
मेरे सच का इस्तेमाल
कौन अपने पक्ष में करेगा।।[10]

'दहाड़ते आतंक के बीच/फटकार कर सच बोल' सकने का साहस हिंदी की समूची कविता को कबीर से ही मिलता है। कबीर का यह आत्मबल हिंदी कविता के श्रेय और प्रेय दोनों हैं। कबीर का यह साहस हिंदी कविता के लिए वरेण्य है। कबीर की कविता के बारे में, उनके व्यक्तित्व के बारे में बात करते हुए हम प्रायः ओजपूर्ण कबीर को याद करते हैं जबकि उनमें बहुत नाजुकी और मुलायमियत भी है। कबीर केवल ज़ख्म देने वाले कवि नहीं हैं, बल्कि संत्रस्त मानवता पर मरहम लगाने वाले कवि भी हैं। साही की ये पंक्तियाँ *परम गुरु/दो तो ऐसी विनम्रता दो/कि अंतहीन सहानुभूति की वाणी बोल सकूँ/और यह अंतहीन सहानुभूति/पाखंड न लगे।।*[11]

कबीर को आज बहुवचन में देखा– समझा जाता है। पूरे हिंदी साहित्य में कबीर ही ऐसे व्यक्तित्व हैं जिन पर सभी अपना दावा पेश करते रहे हैं। दलित, सवर्ण, वैश्य, मुसलमान सभी। यह कबीर की ताकत है कि उनमें से सभी अपने 'हित' की बातें निकाल लेते हैं।

समकालीन हिंदी कविता के वरिष्ठ कवि अशोक वाजपेयी का तो यह मानना है कि इस निर्लज्ज और क्रूर होते समय में 'कहीं कोई कबीर' नहीं है। सभी की चादर मैली है। सबके पैरहन फटे हुए हैं। हम जिस समय में रह रहे हैं वह एक दागदार समय है। कबीर का समय भी कम कलुषित नहीं था। ऐसे दागदार व कलुषित समय में भी कबीर की यह घोषणा कि जो 'चादर' उन्हें मिली थी उसे उन्होंने 'जस का तस' बिना किसी दाग के लौटा दिया, हमें रोमांचित कर जाता है। ऐसा बेदाग जीवन और व्यक्तित्व समकालीन रचनाशीलता के लिए हमेशा काम्य रहा है। हालाँकि यह दुर्लभ कामना कभी अभीष्ट नहीं हो सकती। अशोक वाजपेयी अपनी 'कोई कबीर नहीं' शीर्षक कविता में लिखते हैं–

गुड़ की तरफ आने वाली चीटियों की तरह
पता नहीं कहाँ–कहाँ से
दाग चादर की ओर खिंचते से हैं।।[12]

जब हमारा जीवन ही साफ़ नहीं रहा, प्रेम और ईर्ष्या, लालच और चाहत, औरों की बेहतर जिंदगी से पैदा जलन, शब्दों से बार–बार हार खाने की किस्मत ने जिंदगी को इतना और इतनी बार मैला किया है कि बेचारी इस चादर की क्या बिसात कि वह साफ़–सफ़ेद रह पाती। इतनी प्रतिकूल परिस्थितियों में जब चादर थोड़ी और झीनी हो गई है, उसके ताने–बाने कुछ छितराने से लगे है तो दृष्टि पथ पर कंदील की तरह केवल एक रोशनी हमारे सम्मुख होती है और वह है– कबीर, उन जैसा कोई नहीं है। अशोक वाजपेयी उसी कविता में लिखते है–

पास पड़ोस में कोई कबीर नज़र नहीं आता
जिसे यह चादर दे आऊँ कि
वक़्त मिले तो इसे रफू कर दे
या किसी भी भरोसे मंद साबुन से धोकर
कुछ तो उजला कर दे।।[13]

यह नाउम्मीदी का समय है और इसीलिए रचनाशील के उत्कर्ष का समय भी है। महान रचनाएँ नाउम्मीदी में ही रची गई है।

अभी हाल ही में गुजरे दूधनाथ सिंह प्रायः अपने व्याख्यानों में कहा करते थे कि कबीर का 'जस की तस धर दीन्ही चदरिया' मुझे अतिशय कथन लगता है। यदि चादर का उपयोग होगा तो वो मैली होगी ही। लाख जतन करने के बाद भी उस पर मैल लगना स्वाभाविक है। दूधनाथ सिंह का मानना था कि आदर्श स्थिति हो सकती है, पर यथार्थ में ऐसा हो इसकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है। कबीर का यह पद कहीं से भी व्यावहारिक नहीं है। यहाँ दूधनाथ सिंह के कथन में एक व्यावहारिक व्याख्या छुपी हुई है, जबकि कविता की व्याख्या के लिए आलोचक या रचनाकार को स्वयं को व्यावहारिकता से या दुनिया की व्याख्या से ऊपर उठाना चाहिए। दुनियावी निकष या टूल्स

कविता को खोलने का जरिया नहीं हो सकते। मानविकी विषयों के अध्ययन में जो टूल्स सहायक हैं, पर साहित्य के लिए अनिवार्य नहीं होते। तुलसी का एक पद है– *डासत की गई बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ नींद भर सोए।*[4] अगर इन पंक्तियों की सर्फेस मीनिंग पर हम जाएँ तो हमें अर्थ बिल्कुल ही नहीं मिलेगा, अर्थ के लिए हमें डीपर मीनिंग के पास जाना होगा। क्या कविता केवल शब्दों से लिखी जाती है? क्या कविता के अर्थ को एक शब्द के पर्याय रूप में दूसरा शब्द रख देने मात्र से पाया जा सकता है या कविता स्वप्न भी देखती है, आकांक्षा भी रखती है।

कबीर पर लिखी कविताएँ उसी तरह की आकांक्षा को जन्म देती हैं। जैसे पीड़ा के समय में की गई प्रार्थना समकालीन कविता के अलावा समकालीन कथा के केंद्र में भी कबीर रहे हैं। रांगेय राघव की कृति 'लोई का ताना' कबीर की कथात्मक जीवनी है। कबीर के जीवन–संघर्षों उनके समय की समीक्षा करता हुआ यह उपन्यास मध्यकालीन सामंती समय को समझने का मार्ग प्रशस्त करता है। कबीर के व्यक्तित्व के ढेर सारे आयाम इस उपन्यास में उद्‌भासित होते हैं। यह उपन्यास जुलाहे कबीर के संत कबीर बनने तक की एक रचनात्मक यात्रा है। 2015 में आए कैलाश नारायण तिवारी के उपन्यास 'विरले दोस्त कबीर के' की कथा भूमि भी कबीर का जीवन व उनका समय रहा है। फक्कड़ कबीर और उनके शागिर्दों को लेकर लिखा गया यह उपन्यास कबीर की गुरु–शिष्य परंपरा को समझने में हमारी मदद करता है। कबीर की ही भाँति उनके शिष्य भी 'विरले' थे। कबीर व उनके शिष्यों के संवाद को बड़े ही रोचक तरीके से लेखक ने दर्ज किया है। इन संवादों से कबीर के व्यक्तित्व के अनछुए पहलू पहले–पहल प्रकाश में आते हैं। उर्वशी सूरती ने कबीर के जीवन दर्शन को केंद्र में रखकर 'कबीर : जीवन और दर्शन' शीर्षक से एक उपन्यास लिखा। नई कहानी के प्रमुख स्तंभ भीष्म साहनी ने कबीर के जीवन पर आधारित 'कबीर खड़ा बाजार में' शीर्षक से एक नाटक लिखा जो उनके सबसे चर्चित नाटकों में से एक है। इस नाटक के सैकड़ों मंचन भी हो चुके हैं। बाजार व कबीर का रिश्ता बड़ा पुराना है। वे एक दूसरे से अंतर्संबंधित होते हुए भी अलहदा हैं। इस नाटक में भीष्म साहनी कबीर के बाजार के साथ संबंध को दर्शाते हैं और वही युक्ति अपनाते हैं जैसा कि नई कविता के कवि विजयनारायण देव साही, कुँवर नारायण व केदारनाथ सिंह अपनाते हैं – कबीर को अपने समय में लाकर अवस्थित कर देना। कबीर की नज़रों से समकालीन दुनिया को देखना। समकालीन क्रूरता पर कबीर की टिप्पणियों की संभावना करना इत्यादि–इत्यादि।

चर्चित टीवी पत्रकार व कवि मुकेश कुमार का सद्‌यः प्रकाशित कविता संग्रह 'साधो जग बौराना' कबीर की दृष्टि से जीवन जगत को देखने का ही एक नवीन प्रयास है।

समकालीन कलाओं के विविध रूप उपन्यास नाटक, कविता, संगीत, लोकगीत आदि सभी विधाओं में कबीर अपरिहार्य रूप से उपस्थित हैं। कलाओं के विविध रूपों में ऐसी स्वीकार्यता किसी और रचनाकार को नहीं मिली है, जितनी कि कबीर को। ये कलाएँ चाहें आधुनिक हों, अत्याधुनिक हों या मध्यकालीन सभी पर कबीर की स्पष्ट छाप है। संगीत के ही क्षेत्र में देखें तो जैज और पॉप संगीत में भी कबीर गाए जाते हैं। कबीर के पदों ने मुखड़े के तौर पर बार–बार इनके गीतकारों ने अपनाया है। इस उत्तर आधुनिक दौर के ढेर सारे स्टूडियोज ने कबीर को नए तरीके से गाया है। अभी हाल ही में प्रदर्शित फिल्म 'मसान' के सभी गीत कबीर के पदों से हैं। मध्यकाल के अन्य किसी भी कवि को यह सौभाग्य नहीं मिला। आधुनिक, अत्याधुनिक व पारंपरिक तीनों तरह की शैलियों में कबीर की स्वीकार्यता आश्चर्यचकित भी करती है। ठीक इसी तरह कविता, नाटक, उपन्यास इन सभी के केंद्र में कबीर की बानी रही है। आचार्य द्‌विवेदी की जिस परंपरा को नामवर सिंह ने 'दूसरी–परंपरा की खोज' कहा है, उसके सिरमौर कबीर ही रहे हैं, जो सदियों से हिंदी की प्रगतिशील जमात को प्रेरित, प्रभावित, निर्देशित करते रहे हैं। उनके

व्यक्तित्व में बहुत कुछ ऐसा है जो अनुकरणीय व अनुरचनीय है तथा जिसकी प्रासंगिकता हमेशा बनी रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कोई तो जगह हो, अरुण देव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014, पृ. 73
2. Poetry foundation.org/Matthew Arnold.
3. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 12वीं आवृत्ति, 2007, पृ. 65
4. यार जुलाहे, संपा. यतींद्र मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002, आवरण पृष्ठ
5. इन दिनों, कुँवर नारायण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय आवृत्ति 2014, पृ. 16
6. वही, पृ. 17
7. सबद ब्लॉग, संपा. अनुराग वत्स
8. इन दिनों, कुँवर नारायण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय आवृत्ति 2014, पृ. 17
9. मेरे साक्षात्कार, भीष्म साहनी, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ. 35
10. साखी, विजयदेव नारायण साही, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993, पृ. 125
11. वही
12. कुछ रफू कुछ थीगडे, अशोक वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2002, पृ. 76
13. वही
14. विनय पत्रिका, तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, 500वीं आवृत्ति 2003, पृ. 66

– असिस्टेंट प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय देहरी, काँगड़ा, हिमाचल प्रदेश

❑❑❑

दुनिया की सबसे खूबसूरत खराब हो गई पेंटिंग

सुशांत सुप्रिय

कूड़ा–कचरा बीनने वाले जिन पहले बच्चों ने उसे देखा उन्हें लगा कि वह कूड़े के ढेर पर ऐसे ही पड़ी कोई बड़ी–सी चीज है। हालाँकि ध्यान से देखने पर उन्हें लगा कि उस चीज में कुछ तो खास था। उस पर लगी गंदगी, लिपटी पत्तियों और लताओं को हटाने के बाद जाकर उन्हें पता लगा कि दरअसल वह तो एक खराब हो गई बड़ी–सी पेंटिंग थी।

कूड़ा–कचरा बीनने वाले बच्चों ने उसे वहीं छोड़ दिया क्योंकि उन्हें लगा कि वह उनके किसी काम की नहीं थी। कुत्ते भी उसे सूँघकर आगे बढ़े जा रहे थे। लेकिन वहाँ से गुजर रहे इलाके के एक चित्रकार की निगाह इत्तिफाक से उस पर जा पड़ी। उसने फोन, एस. एम. एस. और व्हाट्स ऐप के माध्यम से अपने अन्य चित्रकार यार–दोस्तों के बीच यह खबर फैला दी। जल्दी ही आस–पास के सभी चित्रकार उस पेंटिंग को देखने वहाँ पर आ पहुँचे। जो चित्रकार उस पेंटिंग पर लगी गंदगी को साफ करके उसे इलाके के चित्रकार के घर ले गए उन्होंने देखा कि वह पेंटिंग खराब हालत में भी बेहद खूबसूरत लग रही थी। जैसे कूड़े के ढेर पर पड़े रहने के बावजूद उसके निखार में ज्यादा कमी नहीं आई हो। हालाँकि वह बड़ी–सी पेंटिंग कहीं–कहीं से खराब जरूर हो गई थी, पर साफ नजर आ रहा था कि वह अब भी एक बहुत खूबसूरत पेंटिंग थी।

पेंटिंग को ज्यादा साफ किए बिना ही उसके किनारे पर अंकित पेंटर का नाम देखा जा सकता था। हालाँकि वह नाम क्या था, यह साफ–साफ पढ़ पाना लगभग असंभव था, क्योंकि ठीक वहीं से पेंटिंग का खराब हो गया हिस्सा शुरू हो रहा था। इलाके के चित्रकार के ड्राइंगरूम में जमा अन्य सभी चित्रकार तरह–तरह के कयास लगा रहे थे कि आखिर वह पेंटिंग किसने बनाई होगी और इतनी खूबसूरत पेंटिंग खराब होकर कूड़े के ढेर पर कैसे पहुँच गई। वहाँ मौजूद सभी लोग पेशेवर चित्रकार थे जो स्वयं बहुत बढ़िया पेंटिंग बनाते थे। पर कूड़े के ढेर से मिली उस पेंटिंग जितनी खूबसूरत पेंटिंग बनाने की वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे। वे सभी उस खराब हालत में मिली उस पेंटिंग की सुंदरता से मंत्रमुग्ध थे।

उस शाम वे सभी चित्रकार उस इलाके के अपने साथी चित्रकार के ड्राइंगरूम में बैठकर उस सुंदर पेंटिंग को निहारते रहे, उसके बारे में चर्चा करते रहे। इलाके के चित्रकार के पास एक द्रव्य था जिससे उसने पेंटिंग पर लगी धूल–मिट्टी और गंदगी को थोड़ा और साफ कर देना चाहा। तब उस पेंटिंग की खूबसूरती और ज्यादा उभर कर सामने आई। यह देखकर उस चित्रकार के सभी साथियों ने दाँतों तले उँगलियाँ दबा लीं और कई चित्रकार एक स्वर में बोल उठे, "अरे, यह तो इस हालत में भी लेओनार्डो द विंची की मशहूर पेंटिंग 'मोनालिसा' से कहीं ज्यादा सुंदर पेंटिंग लग रही है। "बल्कि कुछ अन्य चित्रकारों को वह अपनी इस अवस्था में भी वैन गॉग की प्रसिद्ध पेंटिंग

भाषा ISSN 0523-1418

'सनफ्लावर्स' से भी अधिक खूबसूरत पेंटिंग लगी। इलाके के चित्रकार को भी यह पेंटिंग 'द विंची' की एक और प्रसिद्ध पेंटिंग 'द लास्ट सपर 'से कहीं अधिक बेहतर और चित्ताकर्षक पेंटिंग लगी। उस पेंटिंग का सौंदर्य देखकर उन सभी चित्रकारों के मुँह खुले–के–खुले रह गए।

थोड़ा और साफ करने पर उन सबको ऐसा लगा जैसे उस खराब हो गई पेंटिंग में से कोई आभा फूट रही थी। सभी चित्रकार उसके क्षतिग्रस्त फ्रेम की मरम्मत करने में जुट गए और देखते–ही–देखते उन्होंने उसके फ्रेम को फिर से ठीक कर डाला जिससे उस पेंटिंग में चार चाँद लग गए।

चाय पीते हुए वे सभी चित्रकार गहन विचार–विमर्श करते रहे कि आखिर इतनी बढ़िया पेंटिंग का क्या किया जाए। कुछ चित्रकारों ने सलाह दी कि इसे किसी विख्यात आर्ट–गैलरी को गिफ्ट में दे दिया जाए ताकि यह पेंटिंग भी अन्य बढ़िया पेंटिंग्स के साथ उस आर्ट गैलरी की शोभा बढ़ाए। किंतु इलाके का चित्रकार इस पेंटिंग का स्वामित्व छोड़ने के पक्ष में नहीं था। अंत में यह राय बनी कि अगले हफ्ते शहर की प्रसिद्ध आर्ट–गैलरी में लगने वाली प्रदर्शनी में अन्य पेंटिंग्स के साथ इस खूबसूरत पेंटिंग को भी रखा जाए ताकि वहाँ आने वाले चित्रकला–प्रेमी इस अद्‌भुत पेंटिंग के सौंदर्य से अभिभूत हो सकें और इसे देखने का आनंद ले सकें।

जब चित्रकारों की सभा खत्म हुई और बाकी सभी चित्रकार अपने–अपने घरों को लौट गए, तब भी इलाके का चित्रकार अपने घर के ड्राइंगरूम में मौजूद उस बड़ी–सी विरल पेंटिंग को विभिन्न कोणों से निहार कर प्रफुल्लित होता रहा। रात में जब वह अपने शयन–कक्ष में सोने गया तो उसकी नींद में आने वाले सपने उस खराब हो गई बेहद खूबसूरत पेंटिंग से भरे रहे। हालाँकि यह भीषण ठंड का मौसम था किंतु उस पेंटिंग की वजह से उस चित्रकार के सपने में वसंत ऋतु छाई रही, रंग–बिरंगे खुशबूदार फूल खिले रहे, मनमोहक तितलियाँ उड़ती रहीं, कोयलों की मधुर कूक सुनाई देती रही। उस चित्रकार के स्वप्न के आकाश में एक साथ कई इंद्रधनुष छाए रहे।

आखिर वह दिन भी आ गया जिस दिन उस अद्‌भुत पेंटिंग को शहर की विख्यात आर्ट–गैलरी में प्रदर्शन हेतु रखा जाना था। एक बार फिर इलाके के चित्रकार की जान–पहचान के सभी चित्रकार उसके यहाँ इकट्ठा हुए। आज पहले दिन की अपेक्षा और ज्यादा भीड़ थी क्योंकि अन्य चित्रकारों ने अपनी जान–पहचान के और चित्रकारों को भी इस अवसर पर बुला लिया था, उन और चित्रकारों ने अपनी जान–पहचान के और भी चित्रकारों को वहाँ पहुँचने का न्योता दे डाला था।

अंत में उस खराब हो गई खूबसूरत पेंटिंग को एक जुलूस की शक्ल में शहर की विख्यात आर्ट–गैलरी में ले जाया गया, जहाँ उसे अन्य लगी हुई पेंटिंग्स के साथ एक महत्वपूर्ण स्थान पर विधिवत लगा दिया गया। उस पेंटिंग के वहाँ लग जाने से उस प्रदर्शनी में जैसे रौनक आ गई। लोग उस पेंटिंग की ओर खिंचे चले आते थे।

चित्रकला–प्रदर्शनी देखने आने वालों के बीच वह खराब हो गई खूबसूरत पेंटिंग चर्चा का विषय बनी रही। वहाँ मौजूद कई कला–प्रेमियों ने उस पेंटिंग के चित्रकार का नाम जानने का प्रयास किया और अपने इस प्रयास में विफल रहने पर दुखी हुए। कई रईस कला–प्रेमियों ने उस खराब हो गई खूबसूरत पेंटिंग को खरीदने के लिए लाखों रुपए देने की बात कही, किंतु उसे लेकर आए इलाके के चित्रकार ने वह विरल पेंटिंग बेचने से इनकार कर दिया।

वह खराब हो गई खूबसूरत पेंटिंग इतनी अद्‌भुत और जीवंत थी कि कुछ लोग उस बड़ी–सी पेंटिंग में बने दरवाजे को असली दरवाजा समझकर उसमें घुसने का प्रयास करते हुए पाए गए और हँसी का पात्र बन गए। एक मधुमक्खी, जो न जाने कहाँ से उड़ती हुई प्रदर्शनी–कक्ष में घुस आई थी, उस विरल पेंटिंग में बने फूल को असली फूल समझकर उस पर जा बैठी और मूर्ख बन गई। एक बच्चा गिलास लेकर आया और उस पेंटिंग में बने नल में से बहते हुए जल को असली पानी

समझकर उसे अपने गिलास में भरने का विफल प्रयास करने लगा। हद तो तब हो गई जब एक बुजुर्ग कला–प्रेमी ने उस पेंटिंग की दीवार पर बने पर्दे को असली पर्दा समझकर उसे थोड़ा–सा खिसका देने की कोशिश कर डाली और वहाँ मौजूद लोगों की हँसी का पात्र बन गया।

तीन दिन और तीन रातों तक वह पेंटिंग शहर और बाहर से आए कला–प्रेमी दर्शकों की चर्चा का केंद्र–बिंदु बनी रही। उसे देखने आए सभी लोगों ने ऐसी खराब हालत में भी उसे दुनिया की सबसे खूबसूरत पेंटिंग का दर्जा दिया। 'विजिटर्स बुक' में सभी कला–प्रेमियों ने उस खूबसूरत पेंटिंग को सराहने वाले उद्‌गार व्यक्त किए। सबको बस एक ही कमी खल रही थी। काश, यह पता चल पाता कि ऐसी अद्‌भुत पेंटिंग को बनाने वाले चित्रकार का नाम क्या था। यदि वह चित्रकार उन कला–प्रेमियों के समक्ष उपस्थित होता तो वे उसका महिमामंडन करते व उसे दुनिया के श्रेष्ठतम चित्रकार के खिताब से अलंकृत कर देते।

चित्र–प्रदर्शनी के खत्म होने वाली शाम को फिर से वही विकट समस्या उत्पन्न हो गई कि आखिर अब इस पेंटिंग का क्या किया जाए। कुछ कला–प्रेमियों ने फिर से सलाह दी कि इसे देश की राजधानी के सबसे बढ़िया म्यूजियम को गिफ्ट में दे दिया जाए ताकि यह पेंटिंग वहाँ आने वाले कला–प्रेमियों का मन मोहती रहे। किंतु पहले की तरह ही इसका मालिकाना हक रखने वाले इलाके के चित्रकार ने यह सलाह ठुकरा दी। चार घंटे तक चली एक हंगामेदार बैठक के अंत में सर्वसम्मति से यह राय बनी कि ऐसी अद्‌भुत पेंटिंग कोई इंसान बना ही नहीं सकता है। उस बैठक के अंत में एक प्रस्ताव पारित किया गया जिसके अनुसार यह एक असाधारण पेंटिंग थी जिसके दैवीय होने के अधिक आसार थे। उसी बैठक में यह तय किया गया कि दुनिया की सबसे खूबसूरत खराब हो गई इस पेंटिंग को पवित्र गंगा नदी के जल में विसर्जित कर दिया जाए। तय किया गया कि वह महान पेंटिंग प्रकृति का अंश थी और यही उचित होगा कि वह वापस उसी विराट प्रकृति में मिल कर उसका अभिन्न अंग बन जाए।

अगले दिन सभी चित्रकार बंधु, कला–प्रेमी तथा जन–सामान्य एक जुलूस के रूप में विधिवत् उस विरल पेंटिंग को लेकर गंगा नदी के तट पर पहुँचे। लोगों की भीड़ ' "दुनिया की सबसे खूबसूरत पेंटिंग, अमर रहे," अमर रहे ' के नारे लगा रही थी। भीड़ का उत्साह देखते ही बनता था।

उस अद्‌भुत पेंटिंग के सम्मान में उस दिन सभी मंदिरों में विशेष पूजा की गई। गुरुद्‌वारों में विशेष अरदास की गई तथा कड़ाह प्रसाद बाँटा गया। गिरिजाघरों में भी विशेष प्रार्थना–सभाएँ आयोजित की गईं तथा मस्जिदों से मौलवियों ने उस पेंटिंग के लिए खास तौर पर दुआ माँगी। इस तरह वह विरल पेंटिंग सांप्रदायिक तनाव से भरे इस कठिन समय में एकता और सांप्रदायिक सद्‌भाव का प्रतीक बन गई।

अंत में वह पेंटिंग लेकर इलाके का वह चित्रकार अपने साथी चित्रकारों के साथ एक बड़ी–सी नाव में सवार हुआ। गंगा नदी के बीच में पहुँचकर उन्होंने उस अद्‌भुत पेंटिंग के साथ एक भारी पत्थर बाँध दिया ताकि पानी में बहाए जाने पर वह पेंटिंग तैरती–उतराती हुई दोबारा किनारे पर न आ लगे बल्कि सीधा नदी के तल में डूब जाए। और इस प्रकार दुनिया की सबसे खूबसूरत खराब हो गई पेंटिंग को गंगाजल के जल में विसर्जित कर दिया गया।

इस घटना को हुए बरसों बीत गए हैं किंतु आज भी कला–प्रेमियों की स्मृति में यह घटना बरसात की काली रात में बिजली के कौंधने जितनी स्पष्ट है। जैसा कि होता है, अब इसके इर्द–गिर्द लोक–कथाएँ और किंवदंतियाँ बन गई हैं। हर साल गंगा नदी के तट पर उसी जगह पर साल के उसी दिन एक चित्रकला–मेला लगता है जहाँ दूर–दूर से नामी चित्रकार अपने चित्रों और पेंटिंग्स की प्रदर्शनी लगाते हैं। यह जगह अब कला–प्रेमियों के लिए किसी तीर्थ–स्थल जैसी बन गई है। मेले

में मौजूद कोई बच्चा जब किसी चित्र की तारीफ करता है तो कई जोड़ी हाथ उसे नदी के बीच में स्थित वह स्थल दिखाने लगते हैं जहाँ बरसों पहले दुनिया की सबसे खूबसूरत खराब हो गई पेंटिंग को नदी के जल में विसर्जित कर दिया गया था। गंगा नदी के बीच में मौजूद उस स्थल के पास से गुजर रहे स्टीमर और नावों पर सवार लोगों को नाविक अक्सर इशारा करके बताते हैं – "वह देखिए। वहाँ! हाँ, वहाँ! वही वह जगह है जहाँ बरसों पहले कुदरत की नायाब चीज वापस कुदरत में जा मिली थी। जहाँ बरसों पहले दुनिया की सबसे खूबसूरत खराब हो गई पेंटिंग को नदी के जल में विसर्जित कर दिया गया था ..."

– ए–5001, गौड़ ग्रीन सिटी, वैभव खंड, इंदिरापुरम्, ग़ाज़ियाबाद – 201014

❑❑❑

किस गुनाह की सज़ा?

शमा ख़ान

मुझे लगा वो मुझे ही आक्रोश से भरकर उलाहना देगी। लेकिन उलाहना तो दूर शिकायत करना भी उसकी फितरत में नहीं था। मैं उसे तब से जानता हूँ जब से फ्रिल वाला फ्रॉक पहनकर पीठ पर बस्ता टाँगे उछलती कूदती हुई स्कूल जाती थी।

मेरे स्वर्गवासी दोस्त की इकलौती बहन रिया पोस्ट ग्रेजुएट होते ही निकाह के रेशमी धागे में बाँध दी गई। शहदिले सपनों को पलकों पर सजा भी नहीं पाई थी कि राज़ खुला। शौहर मैट्रिक फेल ही नहीं शराबी और सट्टेबाज भी है छह साल से तंग गली के झोपड़ेनुमा मकान की हर सहर आँसुओं से भीगती और हर शब रिया के गरम गोश्त को नुचते हुए देखकर भी अपनी ज़बान पर सौ ताले लगा लेती। जुल्म के मुँह में लंबी ज़बान होती है न मुँह खुलता न रिया के मरहूम भाई और माँ–बाप के लिए गालियों का भभका फूटता।

दो बच्चे, भूख का जमघट, त्रासदी और अवहेलना के चुभते अल्फाज़ का ज़हर, उस वक्त कहर बनकर टूटा जब तलाक! तलाक! तलाक! का भयानक धमाका गोली की तरह कानों में धंस गया। रिया किरचियों में बिखर गई।

रिया की सिसकियाँ सुनकर मैं अतीत के बियाबान से लौट आया।

"क्या बात है आज तुम बहुत परेशान लग रही हो रिया"? मैंने हमारे बीच खिंची खामोशी की लंबी लकीर को चीरते हुए पूछा। कुछ देर तक वो अपनी बड़ी–बड़ी आँखों की पलकों में आँसुओं की लड़ियाँ समेटे मुझे बड़ी बेबसी से देखती रही फिर अस्फुट स्वर में इतना ही बोल पाई "कैलाश भाई ज़िया साहब का इंतकाल हो गया"। सुनकर मैं सन्न रह गया।

"कब"?

"आठ दिन पहले"।

"तुम्हें कब और कैसे पता चला"? मैंने बौखला कर पूछा।

"आज ही मामूज़ाद भाभी का फोन आया था"। रिया की सिसकियाँ बंध गई।

"कैलाश भईया मुझसे बर्दाश्त नहीं हो रहा है क्या करूँ मैं"? सीने को कस के दबाकर फर्श पर उकड़ू बनकर बैठ गई रिया...।

"ख़बर देर से मिली, मगर मिली तो सही... रिया तुम्हें हिम्मत रखनी होगी, बर्दाश्त करना होगा"।

"कैसे करूँ बर्दाश्त भईया... मेरा मसीहा..."। दर्द से बिलबिला पड़ी रिया।

"रिया तुम्हें ज़िया साहब के पुर्से में जरूर जाना चाहिए"। मैंने उसका ध्यान बाँटने के लिए कहा।

"कैसे जाऊँ भईया, रज़िया आपा तो मुझे ही ज़िया साहब की मौत का जिम्मेदार ठहराएँगी न। ये भी तो हो सकता है मुझे अपने घर में घुसने ही

भाषा ISSN 0523-1418

न दें। तब मैं तमाशा बनकर रह जाऊँगी। मैंने जिया साहब के सहारे रजिया आपा की नफरत को झेला है.... उनके बिना... रजिया आपा का आक्रोश..."?

"रिया मैं जानता हूँ, इस वक्त तुम्हारे सीने में विवशता के भंवर उठ रहे हैं लेकिन बहन... जिया साहब की मौत पर भी उनके घर न जाना तुम्हें निहायत खुदगर्ज़ साबित कर देगा। मैं जानता हूँ दर्द को चुपचाप सहना तुम्हारी फितरत में है। लोगों की हमदर्दी हासिल करना तुम्हारे मिजाज़ में नहीं लेकिन कभी–कभी एहसास का इज़हार भी लोक संतुष्टि के लिए बहुत जरूरी होता है। रस्में दुनिया निभाने के लिए ही जाओ रिया। अगर अभी नहीं गई तो पूरी जिंदगी तुम्हारी रूह तुम्हें कोसती रहेगी और तुम्हारे बहनोई ज़िया साहब के साथ तुम्हारे बेगर्ज़ रिश्तों पर लगाई गई तोहमतों की मुहर तुम्हारी सच्चाई को रूसवा कर देगी। वक्त हाथ से निकल जाएगा और जिंदगी भर तुम पश्चाताप की अग्नि में झुलसती रहोगी।"

"चलो, चलो, उठो, तैयारी कर लो, मैं ले चलता हूँ तुम्हें जबलपुर। रजिया आपा की हर तोहमत को चुपचाप सुन लेना। बहना, इस नाज़ुक दौर में तुम्हारी खामोशी ही किला बनकर तुम्हारी हिफाज़त करेगी"। मैंने समझाया।

उसी शाम रिया मेरे साथ जबलपुर के लिए रवाना हो गई। रिया रास्ते भर अतीत की खोहों में भटकती, भविष्य की पलपल टूटती तस्वीर को अपने आँसुओं भरी आँखों में समेटने की कोशिश करती रही।

"रिया के साथ जाकर, अपने मुताल्लिक बेबुनियाद सवालों से रिया को बचाने के लिए मैंने सलाह दी "रिया मैं वेटिंग रूम में तुम्हारा इंतजार करता हूँ"। ऑटो वाले को ज़िया साहब का पता समझाकर मैंने रिया को रजिया आपा के पास भेज तो दिया मगर रिया के जाने और आने के बीच मेरी साँस गले में ही अटकी रही। कहीं रजिया आपा की दो जवान बेटियाँ, दामाद, दो बेटे.... बहुएँ कोई बदतमीजी न कर बैठे रिया के साथ। कमज़ोर तो वो है ही। कहीं सदमें से बेहोश... या... कुछ...। तब कौन संभालेगा उसे? मुझे अपने आप पर गुस्सा आने लगा। क्या ज़रूरत थी रिया को ईर्ष्या द्वेष की दहकती भट्टी में झोंकने की? क्या जरूरत थी टूटे रिश्तों की लाश को कब्र से बाहर निकालकर हमदर्दी जतलाने की? क्या इतना जरूरी है रस्में दुनियाँ निभाना?

तीन घंटे बाद रिया वेटिंग रूम में लौट आई। चेहरा... जैसे किसी ने खून चूस लिया हो। रो–रोकर आँखें सूज गई थी और नीले पड़े होठों पर जमी चुप्पी की पपड़ी। पानी की बोतल उसकी तरफ बढ़ा दी मैंने। घूँट गिटकने में भी उसे ज़बरदस्त तकलीफ हो रही थी। निढाल सी पड़ गई। आधे घंटे के बाद अपनी आदत के मुताबिक धीमे–धीमे स्वर में बतलाने लगी...।

फ्लैट की घंटी बजते ही रज़िया आपा की अम्मी यानी रिया की सगी फूफी से सामना हो गया। पूरे बीस साल बाद फूफी ने रिया को देखा था, चश्मा साफ करके पहचानने की कोशिश की, फिर भी पहचान नहीं सकी।

"जी मैं हूँ रिया"।

याद्दाश्त पर ज़ोर देकर पहचानते हुए गर्मजोशी से बोली रिया।

"अस्सलाम अलेकुम फूफीजान"।

"वालेकुम सलाम बेटा, जीती रहो... "ममत्व भरा बूढ़ा हाथ रिया के सर पर आ टिका।" "रज़िया देख..तो...रिया...आई है...मुन्नू...नन्हू... अरे पप्पु देखो तो तुम्हारी ख़ाला आई है..."। लहक कर बोली फूफी। कमरे के परदे के पीछे हिलती–डुलती परछाइयाँ दिख रही थी मगर अंदर घुटन भरा सन्नाटा तैर रहा था।

"आ बैठ...बेटी...इधर...मेरे पास..." और रिया के दोंनों हाथों को छाती से भींचकर फूफी हिचकियों से रो पड़ी..." पहाड़ सा दामाद चला गया रिया... ये सदमा बर्दाश्त करने के लिए खुदा ने मुझे क्यों जिंदा रखा है आज तक? तीन साल पहले ही तो तुम्हारे फूफा का इंतकाल हुआ था... अब तुम्हारे बहनोई का सदमा... सहा नहीं जाता मेरी बच्ची... सहा नहीं जाता... या पाक परवरदिग़ार अब तो

उठा ले मुझे"? सब्र का बाँध टूट गया और आँसूओं का सैलाब बह निकला। रिया फूफी से लिपटकर दहाड़ मार कर रो पड़ी....।

रज़िया आपा ने रिया को देख तो लिया मगर मुख़ातिब नहीं हुई। अंदर वाले कमरे में सोफ़े पर मूर्ति की तरह बैठी रही...।

रिया को याद आ गई मरने से पहले ज़िया साहब के साथ आखिरी मुलाकात... तना हुआ चेहरा.... हाथ का निवाला हाथ में, मुँह का निवाला भी जस का तस। "कुछ परेशान नज़र आ रहे हैं. .. क्या बात है दुल्हा भाई"? हमेशा मुस्कुराती रहने वाली जिंदगी से भरी आँखों में आँसू छलछला गए. .." जब से हम आपके पास आने लगे हैं... आपकी बहन हमसे बोलती नहीं है, न हमारे कमरे में आती है... न कोई रिश्ता...."। शब्द गले में अटकने लगे।

"लेकिन क्यों"? आश्चर्य से आँखें फैल गई रिया की।

"हमें आपकी और बच्चों की फ़िक करते देख वो समझती हैं हमने आपसे..."।

"या खुदा... इतनी बड़ी गलतफहमी। आपने समझाया क्यों नहीं..."?

"अगर उन्होंने सिर्फ हमसे कहा होता तो हम बर्दाश्त कर लेते मगर उन्होंने तो पूरे ख़ानदान को यही बतला रखा है... हम जिससे भी मिलते हैं... वो पहले... तुम्हारी ख़ैरियत पूछकर हमें तंज़ करता है"।

"तो आपने सफ़ाई क्यों नहीं दी...? सच क्यों नहीं बताया..."? रिया बेचैन हो गई।

"रिया...हम सफ़ाई दें...? हम सच बतलाएँ...? रजिया ने इतना ही समझा है हमें...। तीस साल की हर साँस हमने उनके नाम कर दी फिर भी उन्हें अपने शौहर पर एतबार नहीं...। उन्होंने ऐसा सोच भी कैसे लिया... बस यही दर्द घुन बनकर हमें खाए जा रहा है"। दुल्हा भाई की टूटन ने रिया को भीतर तक आहत कर दिया।

"आप कहें तो मैं बात करूँ रज़िया आपा से ...."।

"कोई फायदा नहीं रिया... मैंने उन्हें हर तरह से समझाया, तुम्हारी और बच्चों की मजबूरी का हवाला देकर बड़ी बहन के फर्ज की भी याद दिलाई मगर....वो पत्थरदिल औरत ज़रा नहीं पसीजी। शक...और...सिर्फ...शक... शायद जीते जी अब ये खाई कभी नहीं भरेगी...। हमनें भी सोचा लिया है जिस दिन उन्हें हमारे पर एतबार हो जाएगा... वो खुद पश्चाताप करेंगी...और खुद...हमारे...पास..."। सिसक पड़े दुल्हा भाई।

"मैं खुद उनसे मिलकर... सारी बात... साफ करूँ"। रिया का आत्मसम्मान सर उठाने लगा।

"रिया आपकी जिद्दी बहन आपकी शक्ल तो क्या...नाम तक सुनना नहीं चाहती...छोड़ो...सच्चाई. ..खुद...सामने आ जाएगी...मेरा और आपका दिल साफ है न...खुदा बेहतर जानता है... वही उन्हें सलाहियत देगा..."। घर वापस लौटने के बाद पहला दिल का दौरा पड़ा था जिया साहब को।

बेटे बहुओं, बच्चों से भरापूरा घर, मगर कोई अदद फर्द भी रिया से मिलने नहीं आया बाहर।

रिया ने सागर में रज़िया आपा के घर रहकर ही पोस्ट ग्रेजुएशन किया था। ये वही बच्चे थे जो बचपन में रिया के साथ ही सोने, उसके ही हाथ से नहाने और खाने की जिद किया करते थे। ज़रा सा बुखार हो या सर्दी, खांसी हो जाती तो रिया कॉलेज की छुट्टी लेकर दिन–रात उन्हें छाती (गोदी) से लगाए रहती थी। रज़िया आपा बेफिक्री से जिया साहब के चौड़े सीने पर सर रखकर चैन की नींद सोती थी। एक बार पाँच साल के नन्हू ने घूमने न ले जाने पर रिया के कंधे पर इतनी जोर से दाँत गड़ा दिए की खून छलछला गया। बरसों गुज़र गए, ज़ख्म भर गया मगर हाथ ऊपर उठाने पर दर्द की टीस आज भी महसूस होती है। उन्हीं जान से ज़्यादा अज़ीज़ बच्चों के लिए रिया आज अजनबी बन गई। गलतफहमी की फूस पर स्वार्थ की चिंगारी ने आग लगा दी...रिश्ते...धू...धू करके जलने लगे...।

लेकिन वक्त की बेरहम आँधी के थपेड़ों से दूर, फूफी जान के चेहरे पर रिया से शिकायत की

हल्की सी लकीर भी न थी। प्यार, वात्सल्य और ममत्व को आँचल में समेटे बरसों बाद भी फूफी अम्मा पुरईन के पत्तों पर ठहरी शबनम की तरह रिया की हथेलियाँ अपने हाथों में लिए मुहब्बतों और दुआओं के खज़ाने लुटा रही थी।

"चल उठ रिया... हाथ–मुँह धो ले...कब से चली थी...अकेली क्यों आई...? बच्चों को क्यों नहीं लाई...? चल...कुछ खा–पी ले..."। एक साथ कई सवालों के जवाबों का इंतजार किए बिना ही आवाज लगाई... "अरे नूरजहाँ रिया खाला के लिए चाय, नाश्ता ले आ बेटी"। मगर अंदर का सन्नाटा पूर्ववत् बना रहा।

फूफी का हाथ आँखों से लगाकर सिसक पड़ी रिया। "फूफी ये सब कैसे हुआ? कब हुआ फूफी"?

"जाने कौन सा ग़म खाए जा रहा था जिया साहब को। चुप रहने लगे थे, दो बार तो दिल का दौरा पड़ चुका था, इलाज चल रहा था कि आठ दिन पहले मग़रीब की नमाज़ पढ़कर उठ ही रहे थे कि सीने को दबाए चीख मार कर ऐसे गिरे की फिर उठ न सके"। फूफी अम्मा सिसकने लगी।

रिया का जी चाहा कि भीतर जाकर रज़िया आपा के कंधे झिंझोड़ कर पूछे "दुल्हा भाई की मौत की खबर मुझे क्यों नहीं दी?...क्या मेरा उनका कोई रिश्ता नहीं था..."? क्या उनके आखिरी दिदार का हक मुझे नहीं था लेकिन सौम्यता की सीमा न लाँघने और हर बर्ताव झेलने का कौल कैसे तोड़ सकती थी भला? संयम की पराकाष्ठा छूती मुँह में आँचल ठूँसे रोती रही रिया।

"तुम्हें इस हादसे की ख़बर कब और कैसे मिली"? फूफी का अप्रत्याशित सवाल चाबुक की तरह सीने पर पड़ा। नज़रे फूफी के भाव टटोलने लगी मगर उनके झुर्रियों भरे चेहरे पर किसी मक्कारी भरे षड्यंत्र की झलक तक न थी।

"कल मामूजाद भाभी ने फोन पर बतलाया"। फूफी ठंडी साँस भर कर रह गई। फूफी ने ही तो बचपन में गोद में खिलाया था रिया को। अम्मी की तबीयत अकसर खराब रहती थी। फूफी उसे चम्मच से दूध पिलाती, दिन–रात उसकी तवज्जों में लगी रहती। घर में आने–जाने वाले मज़ाक करते "दूसरी बेटी कब हुई...छिल्ले की दावत न देनी पड़े इसलिए बतलाया नहीं हँ...अ...ऊँ...अ...अ"।

"भाई की बेटी, मेरी ही तो बेटी हुई न"। फूफी चुटकी का जवाब मुस्कुराकर देती।

अम्मी के इंतकाल के बाद फूफी ने रिया और उसके बड़े भाई को पाल–पोसकर पढ़ाया लिखाया।

फूफी के बर्ताव में कोई कड़वाहट नहीं...कोई छलकपट या दिखावा नहीं... मकरोफरेब नहीं, आखिर किस रिश्ते से...फूफी–भतीजी...या माँ–बेटी... या इंसानी रिश्ता...कहना मुश्किल था।

रिया परदा उठाकर भीतर के कमरे में पहुँच गई जहाँ जिया साहब का पूरा कुनबा मूर्तिवत खड़ा रिया को विषैली नज़रों से घूर रहा था।

रज़िया आपा पत्थर की तरह खामोश बैठी थी। "कौन कहता है औरत कमज़ोर है। डरपोक है। अपने हक–हकूक छीनने वाली औरत को और खुद के शौहर को उन्होंने सिरे से नकार दिया था। कोई बहस नहीं, कोई जिरह नहीं, कोई लड़ाई–झगड़ा नहीं। खामोशी से किया गया तर्के ताल्लुक, उन्हें हमेशा ज़िया साहब पर हावी रखा। अपना अहम, अपनी खुद्दारी की सीढ़ियाँ चढ़कर अपना मुकाम खुद बनाने का हौसला पालती रहीं। अपने अपमान की सज़ा देती रही उस शक्स को जो एक लम्हाँ भी उनके ख्याल से कभी बेदार न रहा... गलतफहमी...एक...पूरा परिवार उजाड़ देगी"...रिया काँपने लगी...।

"रज़िया आपा मैं जा रही हूँ।" रिया की मध्यम आवाज तैर कर उसी के कानों से टकराने लगी.....।

"पता नहीं अब कभी मुलाकात हो या न हो. ..इसलिए जाने से पहले बतलाना चाहती हूँ कि दुल्हाभाई मेरे लिए फरिश्ताशिफ़त इंसान थे। मेरे और बच्चों की फिक्र करके उन्होंने रिश्ते को इंसानियत की बुलंदी तक पहुँचाया। आपने उनके साथ बहुत ज्यादती की... उन पर! अपने शौहर पर...! अपनी बहन पर कभी यकीन नहीं किया।

यही...दर्द...उन्हें...ले...डूबा। रज़िया आपा ये पूरी कायनात गवाह है उन्होंने मुझसे निकाह नहीं किया था? आपने मुझसे मेरा मसीहा छीन कर मेरे बच्चों को फिर से यतीमी के गुमराह अंधेरे में ढकेल दिया..."।

रजिया आपा ने पहली बार नज़र उठाकर रिया की तरफ देखा। शून्य...सपाट...निस्तेज आँखों में सैकड़ों रेगिस्तानों की वीरानी और होठों पर अनगिनत बियाबानों की जानलेवा खामोशी...।

रिया के फ्लैट से बाहर निकलते ही रजिया धड़ाम से कुर्सी से गिरकर फर्श पर बिखर गई... "ज़िया साहब...मुझे माफ कीजिए...माफ कर दीजिए मुझे..."। एक चीख उभरी और फिर गहरी नीरवता छा गई।

– 6/2, केवल विहार, सहस्रधारा रोड, देहरशदून–248001

❑❑❑

कोई हँसी बेचने आया था

अजय मलिक

कोई हँसी बेचने आया था
और दर्द थमाकर चला गया
जीने की जोत जगा मन में
चुप मौत थमाकर चला गया

कुछ दूर चला बहलाने को
फिर दिशा बदल ली जाने को
देकर सपने, जन्नत दिखला
खुदगर्ज़, सताकर चला गया

लिख हर पत्ते पर नाम अपना
टूटे दिल का बनकर सपना
कुछ पल संग में हँसकर गाकर
तकलीफ़ बढ़ाकर चला गया

कट जाती थीं शामें वीरानी
पी लेते थे चुप हर नाकामी
कर चकाचौंध, महफ़िल सुलगा
वो जाम चुराकर चला गया

एक दिन जब सीना चाक हुआ
उसकी ख़ातिर सब ख़ाक हुआ
तब वो पत्थर दिल चाँद मेरा
घुप रात थमाकर चला गया

कोई हँसी बेचने आया था
और दर्द थमाकर चला गया

– आई–5, आई ब्लॉक, गोविंदपुरम, ग़ाज़ियाबाद–201013

❑❑❑

नर्मदा के घाट

प्रियदर्शी खैरा

ब्रह्म मुहूर्त में जग जाते, नर्मदा के घाट।
पौ फटते तक भर जाते, नर्मदा के घाट।

नर–नारी उत्साह से, चले नर्मदा तीर।
मन ही मन सुमिरन करें, भूल गए सब पीर।
रंग–बिरंगे परिधान में, शोभित है नर–नार।
घाट क्यारियाँ हो गए, पुष्पों से गुलजार।
इंद्रधनुष से सज जाते, नर्मदा के घाट।
पौ फटते तक भर जाते, नर्मदा के घाट।

छटा मनोहर घाट की, दृश्य नयनाभिराम।
गूँजे हर–हर नर्मदे, नाद यहाँ अविराम।
कोई अवमज्जन करे, लेकर प्रभु का नाम।
कोई तैरे मीन सम, कोई करे प्रणाम।
नित नव त्योहार मनाते, नर्मदा के घाट।
पौ फटते तक भर जाते, नर्मदा के घाट।

नाव सजी है घाट पर, चलने को तैयार।
पूर्ण समर्पण से यहाँ, होता बेड़ा पार।
कण–कण में भोले बसें, रेवा को वरदान।
भक्ति सुधा बरसे यहाँ, जी से करिए पान।
हर–हर महादेव गाते, नर्मदा के घाट।
पौ फटते तक भर जाते, नर्मदा के घाट।

श्रद्धा से अभिषेक कर और नवाए शीश।
जाति न पूछे नर्मदा, देती खूब अशीष।
रेवा के दर्शन करें और गंगा में स्नान।
दोनों पुण्य समान हैं, कहते वेद पुराण।
सूरज को अर्घ्य चढ़ाते, नर्मदा के घाट।
पौ फटते तक भर जाते, नर्मदा के घाट।

अस्ताचल सूरज भए, सजे आरती थाल।
दीपदान के साथ ही, बजे घंट घड़ियाल।
नमामि देवी नर्मदे, गूंजे माँ का गान।
हाथ जोड़ मस्तक नवा, करते माँ का ध्यान।
धर्म ध्वजा को फहराते, नर्मदा के घाट।
पौ फटते तक भर जाते, नर्मदा के घाट।

– 90–91/1, यशोदा विहार, चूना भट्टी, भोपाल, मध्य प्रदेश

❑❑❑

भाषा ISSN 0523-1418

मैं ब्रिटेन में हूँ आजकल... लेकिन

तिथि ढोबले

मैं ब्रिटेन में हूँ आजकल
लेकिन आज समूची वसुंधरा मेरी भँवों के बीच गर्व से घूमती है
कभी–कभी उसमें नज़र आती है एक ठंडी और आत्मीय चमक
नहीं... कोई संदेह नहीं मुझे,
मेरी देह में घुला सबसे ज़्यादा नमक हिंद महासागर से आया है
आज भी करवट दाईं ओर लेते हुए उठती हूँ
उठने से पहले नासिका के समीप तर्जनी ले जाती हूँ
सुनिश्चित करती हूँ दाएँ या बाएँ स्वर की सक्रियता
और मेरे अस्तित्व का कवच होता है शब्दों का महामृत्युंजय
भोर की इस सिद्धि को अपने पैरों की पीठ पर निश्चिंत छोड़ देती हूँ।
रसोई में जाती हूँ, तो खाना
पकाते समय मेरी अनेकानेक अनुभूतियों का अमिय,
ईश्वरीय स्मरण के पैराशूट लिए स्वाद की कड़ाही में उतरता है।
मेरा उदर जब भोजनोपरांत
मस्तिष्क को मैत्री का संकेत भेजता है
तो शीश झुक जाता है और हथेलियाँ अभिवादन का आकार ले लेती हैं।
पानी अपनी आँखें झपका कर देता है.....
चाँदी के गिलास में अपने आनंदित होने का प्रमाण
इस तरह और भी न जाने क्या–क्या घटता है
दिन भर में मेरे साथ
मेरे संस्कारों की वायु का बढ़ जाता है शुद्धता स्तर,
उस वक़्त जब.... पड़ोसी का साझा किया हुआ मर्तबान
खाली होकर अपने साथ मिठास का बंधन लिए
अलमारी में चुपके से बैठ जाता है।
अब कहाँ–कहाँ कैसे, कब और किन रूपों में
मेरा भारत मुझसे संवाद करता
पता नहीं चलता
जब तक कोई नहीं कह देता
अरे अब भी बिंदी और सिंदूर लगाती हो
और न जाने कहाँ–कहाँ लिए फिरती हो
तुम्हारी काया से लिपटी हुई साड़ी में सोखा हुआ भारत।

– अभिकल्प ब्रूकर्स हिल शिनफील्ड रीडिंग, बर्कशायर, आर जी 29बी एक्स, यूनाइटेड किंगडम

❑❑❑

अनूदित खंड
मैथिली कहानी

औकात

'पद्मश्री' उषाकिरण खाँ

अनायास जाने क्यों रंभा का मन आकुल–व्याकुल हो उठा। आज वह साठ वर्ष की हो गई। इकसठवाँ लग गया। शरीर सौष्ठव नानी की भाँति दुबला–पतला है। गेहुँए रंग की है मुखड़ा छोटा सा। छरहरे बदन की, सुंदर व्यक्तित्व की स्वामिनी है रंभा। संतानवती हो नहीं पाई, दिन भर शारीरिक श्रम करती रही; कभी फुरसत नहीं मिली कि उम्र का बड़ा भाग निकल गया, उस पर कुछ सोचती रंभा। आज भी पंद्रहवें पर अटकी हुई है; कवि तथा काव्यरसिकों द्वारा वर्णित सोलहवें वर्ष के क्लासिकल मुहुर्त की प्रतीक्षा में। दिन भर के काम–काज से थकी मादी रंभा रात को भतीजा–भतीजी को अँकबार में भर कर जो कथा सुनाती, आज भी उस कथा में हक्का धारा और पिरथिया श्मसान ही उपस्थित रहता। भतीज–भतीजी के बच्चों को कथा सुनाते चालीस साल बीत गए। अब उनके बच्चों को वही कथा सुनाती। रंभा कथा में गाय, बकरी, कौआ, कोयल की आवाज की नकल उतारती, वही कारण था कि पीढ़ी दर पीढ़ी के बच्चों को इसकी कहानियाँ भातीं यह सदाबहार कथावाचक रही। कटिहार में रहते भी तीस–चालीस साल हो गए। छोटा भाई और भौजाई सेवानिवृत्त हो गए। रंभा की इच्छा थी कि रिटायरमेंट के बाद भाई स्थायी घर सहरसा अपने गाँव के निकट ही बनाए। उन्होंने अपने बेटे–बेटियों की शादी इसी इलाके में कर ली थी। चालीस साल इधर रहकर भी रंभा का मन रमा नहीं कभी। सहरसा में रहती रंभा तब कभी–कभी नानी के गाँव जाती। उसका बचपन नानी के गाँव में ही बीता था। पूरे गाँव की नानी, मामी सब लोग बहुत प्यार करते। नानी गाँव के प्राईमरी स्कूल में रंभा ने पढ़ाई की थी। रंभा पाँच बहनों में दूसरे नंबर पर थी। पंद्रहवाँ लगा नहीं कि विवाह कर दिया गया। नानी गाँव से गाय की तरह पिता के पीछे–पीछे आ गई। दूल्हा झरिया के कोयला खदान में सुपरवाईजर था, सरकारी नौकरी वाला वर मिला था सो लोग इसके भाग्य को सराहते।

ममेरी बहन शिखा गोद से कहाँ उतरना चाहती थी, रो–रोकर हलकान हो रही थी। सब कुछ साफ–साफ दीखता जब यह जरा सी अकेली होती। रानी और शिखा जवान हुई पढ़–लिखकर बड़ी अफसर हो गई हैं। कटिहार में किसी महिला प्रोफेसर या अफसर को देख रंभा उन्हें ही याद करने लगती। दोनों बहनों की इन स्त्रियों से मन ही मन तुलना करने लगती। सुना कि वे दोनों भी रंभा से मिलना चाहती हैं पर आज तक न मिल पाईं।

रंभा की ससुराल से मधुश्रावणी त्योहार का सौगात आने वाला था। वह नहीं आया। आया मर्मांतक समाचार। उसके पति खदान की बड़ी दुर्घटना में मारे गए। सोलहवें साल के जादुई प्रवेशद्वार पर रंभा के पैर थम गए। उसी मुहाने पर उसकी चूड़ियाँ तोड़ दी गईं, सिंदूर पुँछ गए शृंगारहीन हो गई रंभा सोलहवें साल में वह काले

जादू के गर्हित गहवर में ढकेल दी गई। रंभा हत्वाक् टुकुर–टुकुर ताक रही थी। समझ रही थी कि अब वह सिंदूर, चूड़ी तथा शृंगार की अधिकारिणी नहीं रही। मछली की गंध से भी दूर रहना होगा, रस और स्वाद की क्या बात? और कुछ नहीं। देह और गेह के बारे में सोचने की न अक्ल थी, न फुरसत। अभी तक वो पँचगोटिया और छुपम–छुपाई में मशगूल थी। खाना नानी बनातीं, रंभा चचेरी मामी, मौसी लोगों के साथ मस्ती करतीं। थोड़ा बहुत सीना पिरोना सीख रही थी। काले कपड़े पर सफेद रूई का खरगोश, गाय आदि बनाती। फ्रेम करा के दीवार में टाँग लेती। क्रोशिया का थालीपोश बुनना सीखती। कोई काम संपन्न किए बिना रानी को गोद में ले शिखा की उंगली पकड़ घूमने–फिरने निकल जाती। सभी नानी और मामी के आँगन प्रतिदिन जरूर जाती। सबसे छोटी नानी बाट जोहतीं– रंभा आ बेटी मैंने तुम्हारे लिए अनरसा छुपा कर रखा है।

मँझली नानी गुलगुला सँभालकर रखतीं। कोई मामी वड़ा कटोरदान में रखतीं तो कोई सौगात में आया पेड़ा रखे रहतीं। बदलें में रंभा उन लोगों के लिए, झरबेरी, खेसारी, मटर का साग और टिकोले समयानुसार ला देती और उनसे चटपटे झक्के बनाने में मदद करती। अपनी नानी गुस्सा करतीं–

"अरी पगली तू तो सब आँगन जाकर खाती ही है शिखा और रानी को भी अपनी तरह की क्यों बना रही है, बड़े नाना नाराज होंगे।"

रंभा को कोई फर्क नहीं पड़ता। रंभा ने कभी ससुराल का मुँह भी न देखा कि यह विपत्ति आन पड़ी। वह अम्माँ के आँचल में मुँह छुपाए बिसूरती रही। ससुराल की ओर से कोई आँसू पोछने भी न आया। दोषारोपण रंभा पर करते रहे वे लोग कि यही कुलक्षणी है। सरकारी पेंशन और मुआवजा भी किसी को खड़ा कर उन लोगों ने हड़प लिया। कुछ लोगों ने रंभा के पिता को उसके ससुर पर मुआवजा, पेंशन वगैरह के लिए मुकदमा करने की सलाह दी पर शोकाकुल पिता ने कहा – "मैं अपनी बेटी को पाल सकता हूँ। उन्हें ममता नहीं है तो जाने दीजिए" बात आई गई हो गई। दो–तीन साल यूँ ही बीत गए। रंभा को नानी के गाँव कभी जाने न दिया गया। नानी स्वयं आकर मिल जातीं। कुछ साल और बीते। रंभा का छोटा भाई नौकरी करने लगा। उसकी शादी पढ़ी–लिखी लड़की के साथ हुई। उसे भी नौकरी मिल गई। कटिहार में एक कॉलेज में भाई प्रोफेसर हुआ तथा स्कूल में भावज टीचर हो गई। दोनों की नई गृहस्थी बसाने रंभा कटिहार अपनी अम्मा के साथ ही गई। भावज को पहली संतान होने वाली थी। संतान होने के एक महीने बाद माँ–बेटी लौटने लगीं। तब भाई ने बड़े आहलाद में भरकर अपने बेटे को बहन की गोद में रख दिया– "यह बेटा तुम्हारा हुआ छोटी दी, कहीं न जाओ तुम।"– अम्मा रोने लगी।

"बाबू, जो कहा है, सदा याद रखना भूलना नहीं।"

"कभी नहीं भूलूँगा अम्मा, तुम छोटी दी को यहीं छोड़ दो। तुम्हारी बहू बच्चे को दूध पिलाती है। दीदी चली जाएगी तो...।"

"समझ रही हूँ बाबू।"– अम्मा का गला भर आया।

"यह घर छोटी दीदी का ही है। यह मालिक हम मजूर अम्मा।"– रंभा अबूझ सी अपने भतीजे को छाती से सटाकर बैठी थी। अम्मा घर चली गई। भाभी ने हल्के रंग की साड़ी खरीद दी, सफेद रंग से निजात मिली। रोल्ड गोल्ड की चार–चार चूड़ियाँ पहना दी। कलाई अब सूनी न रही। कंघी चोटी करने की प्रेरणा दी। कहा–

"छोटी दी, विधाता ने जो कुछ छीन लिया वह हम लौटा नहीं सकते पर जीना आसान कर दें यही चाहते हैं। विधवा ब्राह्मणी के लिए जो कुछ वर्जित है उसका निराकरण नहीं कर सकती।"– कहने का अर्थ था कि यम नियम का पालन करती रहें, व्रत तप करती रहें।

दो वर्ष में बच्चा दौड़ने लगा; माँ–पापा–दीदी बोलने लगा। रंभा बच्चे में लिप्त–तृप्त थी। भौजाई ने दूसरी संतान बेटी को जन्म दिया। दोनों बच्चों को पालने का पूर्ण दायित्व रंभा पर था। चौका भंडार और गृहकार्य का संपूर्ण भार उसने स्वतः

अपने सर पहले से ले रखा था। भाई भावज की छुट्टियों के वक्त गाँव आती तब भी दोनों बच्चे उसी से चिपके रहते। उसे देख दादी, काकी के उम्र की स्त्रियाँ आहें भरतीं। यह कहती भी नहीं अघाती कि भागों वाली है रंभा जो भाई भावज ने अपने साथ इज्जत प्रतिष्ठा से रखा हैं। दोनों बच्चे अम्मा से बढ़कर पीसी माँ को प्यार करते। रंभा के मन की बात कोई नहीं जानता था। कटिहार में अच्छा स्कूल नहीं था। दोनों बच्चे पीसी माँ के साथ रहकर शोख हुए जा रहे थे ऐसी धारणा थी भाई भावज की। बेटे को उन लोगों ने दार्जिलिंग के बोर्डिंग स्कूल में भेज दिया। रंभा तथा बेबी घर में रहकर उदास हो गए। अब बेबी रंभा से अधिक चिपकने लगी थी। खाना साथ ही खाना चाहती। जिद की हद तक चली जाती। मछली–माँस के समय बहुत परेशानी हो जाती। भावज कई बार बेहद चिढ़ जाती। सारी चिढ़ रंभा पर उतारती। अब रंभा को नई साड़ी खरीद कर नहीं देती; अपनी पुरानी साड़ियाँ पकड़ा देती। बाल में लगाने वाले तेल कम देने लगी। भंडार के राशन पानी को खुद देखने जाँचने लगी। मछली–माँस के टुकड़े– गिनने लगी थी, उसे शक हो गया था कि रंभा छुपकर खा तो नहीं लेती है? अकेले में बेबी से पूछती कि पीसी माँ मछली खाती है क्या कभी? रंभा को इसका भान नहीं था। भाई के व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं आया था। परंतु भावज परेशान करने लगी थी। रंभा की बातचीत किसी से नहीं होती, घर के काम निपटाकर ट्रांजिस्टर पर गाना सुनती वह आराम करती भर दुपहरी। एक दिन एक चोटी बना, साधारण सा जूड़ा बना रंभा हाथ में छोटा आइना ले अपने को देख रही थी कि भावज ने झपट लिया हाथों से, कहा– "दीदी जैसे–जैसे बुढ़ा रही हैं वैसे–वैसे शौक बढ़ रहे हैं। सदा आइना कंघी हाथों में ही रहता है! हमें कलंक लगाएँगी क्या आप?" – रंभा अवाक् रह गई।

एकाध हफ्ते बाद भाई ने पूछा– "दीदी तबियत खराब है क्या?"

"ना बबुआ।"

"तब मुँह क्यों सूख रहा है? बाल उलझे–उलझे हैं।" छुटपन में बहन की लंबी चोटी पकड़ खींचने वाला भाई पीठ पर बैठ कर घोड़े की लगाम बना कर खींच लेता था बदले में बहन मुक्का मारती थी। वही याद आया चिंतातुर अनुज को।

"छोटी दी, किसी ने तेल कंघी के लिए आपको रोका है क्या?"– भावज ने पूछा।। "भाई की उदासी के कारण रंभा ने कंघी चोटी की। अब जब बेबी रंभा की गोद में बैठती अपनी माँ से डाँट खाती। जाओ, टेबुल पर बैठकर पढ़ो।"

रंभा के घर में एक और वज्रपात हुआ। रंभा की बड़ी बहन पाँचवी संतान को जन्म देते समय मर गई। छोटी बच्ची डेढ़ साल की थी। जीजा जी व्यवसायी थे। रंभा पिता और भाई के साथ बहन के गाँव पहुँचे। रंभा को देखते ही मीरा जो मात्र डेढ़ वर्ष की थी कलेजे से लग गई। कहते हैं– मरे माय तो जियावै मौसी"

श्राद्ध कर्म के बाद साले, ससूर, साली के साथ ओझा जी सासू माँ के आँसू पोछने ससुराल पहुँचे। सासू अपनी प्रथम संतान की मृत्यु से पीड़ित थी, उसकी पीड़ा को कौन हर सकता था? बेटों का स्कूल छूट रहा है यह कहकर जीजा जी लौट गए। मीरा मौसी को छोड़ नहीं रही थी सो नहीं गई। रंभा को अपनी अम्मा और मीरा ने पकड़ लिया था। दिन–रात बेटी की उत्पत्ति से लेकर जन्म से किशोर होने की कथा और विवाह की कथा गाती रहती। अम्मा की गोद में मीरा को बैठा दिया गया था। बच्चे कई बार बड़े बूढ़ों का कान काटते। वह नानी के आँसू पोंछकर कहती– "मत रोओ नानी, माँ आती होगी वह बाग में टिकोले चुनने गई है। चुनकर लाएगी तो तुम गुडम्मा बनाना। "आस–पास बैठी सारी स्त्रियाँ रूआँसी हो जाती। मीरा यह सब देखकर विह्वल हो जाती। मीरा के मोह में पड़कर नानी प्रकृतिस्थ तो हो गई पर 40–45 साल की आयु में 60 से ऊपर की दिखाई देने लगी। एक नजर रंभा पर डालती, सुंदर युवती बेटी सब कुछ होते हुए रसहीन हो गई है। मीरा को देख मोह उपजता ही मातृहीन बालिका पर। जाने कौन सा पाप किया था जो ये दिन देखना पड़ा।

रंभा के बाबू पटना से कोई कार्य संपन्न कर गाँव लौटे थे। रात्रि भोजन के बाद पान खा, सरौता से सुपारी का कतरा करते हुए अपनी घरनी से बोले – "आपके चचेरे भाई के यहाँ गया था"।

"अच्छा? कैसी है भौजी, रानी, शिखा और बाबू?" पूछा घरनी ने।

"सब ठीक है। आपकी भौजी कह रही थी कि... छोड़िए क्या बताऊँ?– बात टालने की चेष्टा की।

"कहिए न, क्या कहा भौजी ने?"

"कहने योग्य बात नहीं है।"

"तब तो जरूर कहिए, भौजी ने ऐसा क्या कहा?"

"अरे शहर बाजार की हुई अब, कहा कि रंभा की शादी करा दें।" – घरनी अबूझ सी चुपचाप उनकी ओर देखती रही।

"मैंने तुरंत जवाब दिया कि हमारे समाज में यह चलता नहीं है। उस पर तर्क करने लगी, दृष्टांत देने लगी मैंने कहा कि मैं भी जाहिल नहीं हूँ। अपनी विधवा बेटी को सामने देख मुझसे ज्यादा कौन दुखी होगा? खाना, कपड़ा सुख से मिलता है बेटी को। मेरी और भी दो बेटियाँ हैं ब्याहने को। जाति निकाला हो जाएगा तब क्या होगा? इस पर उन्होंने कहा – उसे पढ़ा क्यों नहीं रहे हैं?"

"हूँ" – इतनी देर पर घरनी एक अक्षर बोली

"अब पच्चीस–छब्बीस की आयु में क्या पढ़ेगी? हमलोग किसी प्रकार की तकलीफ कहाँ होने देते हैं? विधाता का लिखा अभाग्य।" – कहकर वे दालान की ओर निकल गए। रंभा की माँ आकाश के अँधेरे में टिमटिमाते तारे देखने लगी चुपचाप मूर्ति की मानिंद। विवाह हो जाए तो क्या बुरा है? जवान बेटी के भौरें से गुंजार करते घने काले केश के बीच सूनी माँग से आहत हो स्वयं भी सिंदूर बिंदी लगाना छोड़ चुकी थी। किंतु पुरुष का सेज कहाँ छूटा? रंभा के वैधव्य से दो साल बाद एक बेटी को जन्म दिया। रंभा की माँ का जीवनानंद बेटी के वैधव्य के बाद समाप्त हो चुका था परंतु पिता पुरुष था। उसकी अपनी जरूरतें थी, पूर्ति होनी जरूरी थी।

रंभा के दालान पर देवी बैठतीं। पूजा के दसों दिन घर क्या गाँव गुलजार रहता। कटिहार से बेटा बहू–बेबी को लेकर आ गए। नानी आई बड़े दामाद बेटों को लेकर आए। दामाद जी सबों के लिए ढेर सारे उपहार लाए। बेबी और मीरा, रंभा की गोद में दाएँ–बाएँ कब्जा जमाए हैं। दुछत्ती में रंभा, देवी के कलश पर जलाने के लिए कच्ची मिट्टी के 108 दीए गढ़ रही थी। नानी भी वहीं थीं बच्चे खेल रहे थे जीजा जी बैठे थे। नानी ने पूछा–

"पाहुन, बच्चों को वहाँ कौन देख रहा है?"

"नौकर चाकर नानी जी, मेरी अम्मा है ही नहीं, भाई में अकेला ही हूँ।

"विवाह कर लें। उम्र भी कम है आपकी?"

"हाँ, लोग कह तो रहे हैं।" – सर झुका लिया।

"एक बात कहूँ? बुरा तो न लगेगा?"

"कहिए नानी, आप अनर्गल कभी नहीं कहेंगी।"

"रंभा से विवाह कर लें"– धीमे स्वर में कहा

"जी?" – चकित होकर कहा। रंभा क्रोध में भरकर नानी की ओर देखने लगी। मीरा पिता की गोद में कूद गई। आनंदित थी। विजयादशमी के दिन वे जाने लगे। साले–सलहज स्टेशन जा रहे थे।

बहू के लिए बेबी को संभालना, घर देखना स्कूल जाना भारी पड़ रहा था। वह ननद के लल्लो चप्पो में लगी थी। पति से कहा–

"अब अम्मा जी का मन स्थिर हुआ। क्यों न छोटी दीदी को ले चलें? किसी को कोई एतराज नहीं था। रंभा का मन उद्विग्न था। वह मीरा को और मीरा इसको छोड़ना नहीं चाहती।

"मैं मीरा को ले जाता हूँ इसके स्कूल जाने का समय हो गया है।" – दामाद जी ने कहा। पर मीरा रंभा का आँचल छोड़ ही नहीं रही थी। बेहद रोने लगी।

"भाई साहब, मीरा मेरे साथ कटिहार चलेगी। दीदी के साथ रहेगी। वहीं पढ़ेगी। आप निश्चिंत हो जाइए।– भाई ने यानी साले ने जीजा से कहा। सर्वसम्मति से तय हो गया। मीरा मामा–मामी और मौसी के साथ कटिहार चली गई। मीरा की पढ़ाई और किताब ड्रेस वगैरह के बहाने अच्छी धनराशि दामाद ने साले के हाथ पर रखा जिसे ना ना करते भी उन्होंने रख लिया। रंभा दोनों को तैयार कर स्वयं जाकर स्कूल पहुँचाती और ले आती। बच्चियों को ड्रेस में गेम खेलते देखते उसकी आँखों में सपना उतर आता। आज भी गाँव में कहाँ ऐसी छूट है?

भावज के चेहरे पर सदा तामसी भाव विराजमान रहता। उस भाव का भेद खुल गया दामाद जी ने दूसरा विवाह कर लिया था सो गाँव से चिट्ठी आई थी। रंभा ने सुना तो उसे नानी की बात याद आई। रंभा को हैरत हुई कि नानी के मन में यह विचार कैसे आया कि यदि दामाद जी दूसरी शादी कर सकते हैं तो रंभा क्यों नहीं? रंभा ने याद किया कि नानी गाँव की लक्ष्मी कितनी अपरूप सुंदर थी। उसकी शादी कोलकता के एक लोको–ड्राइवर से हुई थी। लक्ष्मी कोलकता गई भी थी एक बार। कितनी खुश थी रूपगर्विता कि अकस्मात् उसका पति आकस्मिक अनजान बुखार की चपेट में आकर चल बसा। लक्ष्मी का नैहर, ससुराल नितांत गरीब था। अब पेंशन से पूरे परिवार को पालती है। सिलाई का काम कर कुछ अधिक आमदनी हो जाती है। लक्ष्मी की बुआ, बौआ दाई बाल विधवा है। गंगा में माँग धोने के बाद कमर से नीचे लटकते केश बड़ी बेरहमी से काट दिए गए। उसे कभी बढ़ने न दिया। तेल बिना जटाजूट जैसे केश। दिन भर काम करने के बाद भी पेट भर खाना नहीं देती भावज। अनाज कूटते पीसते हाथ में घट्ठे पड़े हैं। बौआ दाई जी तो जीते जी मृत हैं। रंभा की आँखें भर आईं।

स्कूल से बेबी और मीरा आईं। पीठ से बस्ता उतार पटका और रंभा से पूछने लगीं।

"मौसी माँ, मेरे पापा ने शादी की? किससे की? नहीं की न?"– मीरा ने उत्तेजित होकर पूछा।

"पीसी माँ, पीसा जी ने शादी की न? कहिए!"

"तुम लोग चुप बैठो तो कहूँ।"

'बेबी दी, मौसी माँ से पापा की शादी होगी, बड़ी नानी ने कहा था। हाँ, बोलिए मौसी माँ।"– मीरा उत्साह से बताने लगी।

"बेवकूफ की तरह मत बोलो। सचमुच तुम्हारे पापा ने शादी की है। वह तुम्हारी नई अम्मा हुई। अब तुम्हारे पापा तुम्हें घर ले जाएँगे।" – आवेश में आकर कड़वे शब्दों में रंभा ने कहा। दोनों बच्चियाँ चुपचाप अपने वस्त्र बदलने चली गईं। रंभा देर तक अपने मन आँगन में पसरे फूल और काँटे समेटती रही। मन से यह पूछने की ताब न रही कि क्या मन में कोई आकांक्षा दबी ढँकी थी? क्या जीजा के उत्तर की प्रतीक्षा थी?

अपनी जीप से जीजा जी सपत्नीक कटिहार आए थे। रंभा से छोटी उम्र की लड़की थी, पर इससे व्यवहार बड़ी बहन जैसा कर रही थी। रंभा ने उसे हँसकर समझाया कि वह इससे बहुत छोटी है, बड़ी बनने का भ्रम न पाले। जीजा की नजरें इसके सामने उठी नहीं। बहुत चेष्टा करने के बाद भी मीरा रंभा को छोड़ कर नहीं गई। पापा खर्चे का रुपया भेजते रहे। बेबी और मीरा कॉलेज साथ ही पहुँच गई। मीरा ने पापा से कह दिया कि वह विवाह नहीं करेगी। वह पढ़–लिखकर अपने पैरों पर खड़ी हो चुकी थी। जिद्दी थी, किसी की सुनती कहाँ थी। उसी जिद में आकर रंभा को अपने साथ ले आई। रंभा को घर में रहने न दिया। सभी बैठकों में उसे साथ ले जाती। गहरे रंग की साड़ी और कत्थई बिंदी में पैंतालिस साल की रंभा पच्चीस की लगने लगी थी। मीरा ने उसे आइने के सामने खड़ा कर दिया। अपने आपको सहसा पहचान न सकी रंभा।

"यह क्या किया?"– माथे से बिंदी उखाड़ने लगी।

"क्यों मौसी माँ, यह रूप सुंदर न लगा?"

"पगली, इस उम्र में मज़ाक सूझ रहा है?"

"क्या उम्र मौसी माँ 45–50? पापा ने शादी की तब क्या उम्र थी उनकी?"

"धत्"

"मौसी माँ पापा ने क्यों नहीं तुमसे शादी की?"

रंभा चुप थी।

"यह न कहना कि समाज का भय था। किसी समर्थ व्यक्ति का समाज कुछ नहीं कर सकता है।"

"मैं कुछ नहीं समझती बेटी।"

"मामी ने तुम्हें बँधुआ बनाकर क्यों रखा? मामा–मामी पढ़े–लिखे शहरवासी थे।"

"गार्जियन मेरे बाबू जी थे।"

"नाना ने तुम्हारे लिए क्यों नहीं कुछ विचारा?"

"उन्होंने देखा कि साड़ी, भात मिल रहा है बेटी को लक्ष्मी की तरह...।"

"उससे बड़ी औकात कहाँ रहने दी तुम्हारी?"

बीच में बोल पड़ी मीरा। रंभा सब समझती है।

"छोड़ो, तुम शादी कब करोगी मेरी बेटी?"

"तुम्हारे बाद मेरी मौसी।"

"धत् पगली"– दोनों ने एक दूसरे को अँकवार में भर लिया कस कर।

– 1–आदर्श कॉलोनी, श्रीकृष्ण नगर, पटना–800001

❑❑❑

एक वृक्ष की मृत्यु

राजेश्वर सिंह 'राजू'

अनुवाद : डॉ. भारत भूषण शर्मा

रघुबीर सिंह को वृक्षों से बहुत ही लगाव था। बचपन से ही जब भी बापू उसे भेड़–बकरियों के लिए पत्ते छाँट कर लाने के लिए कहते तो दराट उठाते हुए उसे घबराहट होती। उसे यह सब अच्छा नहीं लगता, पर बापू की बात को मना भी नहीं कर सकता। इसलिए वह दराट उठाता और परेशानी की हालत में भेड़–बकरियों के चारे के प्रबंध के लिए चल पड़ता।

उसके गाँव में बड़ी हरियाली है। वहाँ के निवासियों को प्रकृति से बहुत लगाव है। हर किसी ने अधिक संख्या में पेड़ लगाए हुए हैं। केवल पेड़ लगाए ही नहीं हैं अपितु उनकी सुरक्षा भी करते हैं ताकि पशु पेड़ को खा न जाएँ?

वैसे तो यह अलग बात है कि अधिकांश लोग समय–समय पर आरे वालों को सूखे पेड़ बेचकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पैसे धेले का प्रबंध भी कर लेते हैं। यदि एक पेड़ काटा तो उसकी जगह दो पेड़ लगाते हैं। वैसे इसे हम व्यापार भी कह सकते हैं। गाँव के लोगों की इसी आदत के कारण प्रकृति गाँव पर पूर्णरूप से दयालु है।

रघुबीर गली से आगे बढ़ते हुए एक 'धम्मन' के पेड़ के नीचे आ खड़ा हुआ। बहुत देर तक वह उस वृक्ष को ध्यान से देखता रहा फिर उसका मन उदास हो गया। एक गहरी साँस भर कर पेड़ पर चढ़ गया।

पत्ते छाँटने के लिए दराट चलाने की उसकी हिम्मत ही नहीं हो रही थी। उसे हरे–भरे पेड़ पर दराट चलाना अच्छा नहीं लगता। अंततः अपने मन पर काबू पाकर पत्ते छाँटने के लिए जब उसका दराट चलने लगा तब पेड़ से बहुत अजीब–अजीब सी आवाजे आने लगीं। घबराया हुआ रघुबीर दराट से प्रहार करते हुए पसीना–पसीना हो गया। उसे ऐसा अनुभव हो रहा था जैसे वह किसी की हत्या कर रहा हो।

हत्या ही तो थी। रघुबीर को पत्ते छाँटते हुए ऐसा अनुभव हो रहा था जैसे वह किसी जीवित प्राणी पर दराट से प्रहार कर रहा हो। उसे आत्मग्लानि होने लगी परंतु पत्ते छाँटे बिना कोई उपाय भी तो नहीं था। भेड़–बकरियों के चारे का प्रबंध भी तो करना था।

देखते ही देखते पत्ते से भरपूर 'धम्मन' का पेड़ नंगा हो गया। पत्ते समेट कर उनका गट्ठर बनाते हुए उसने धम्मन के पेड़ पर दृष्टि डाली तो उदास हो गया। उसने पत्तों का गट्ठर सिर पर उठाया और उसे ऐसा अनुभव हुआ जैसे किसी का शव उठाया हुआ हो। पत्ते लेकर जैसे ही रघुबीर घर पहुँचा तो खूँटे से बंधी हुई भेड़–बकरियों की जिह्वा लपलपाने लगी। पत्ते उनके आगे रखने की ही देर थी कि वे टूट पड़ीं। रघुबीर रसोई की ओर चला गया।

चूल्हे के पास बैठी उसकी माँ ने रघुबीर को आते देखा। रघुबीर चूल्हे के पास आकर बैठ गया

और आग सेंकने लगा। उसकी आँखों में गहरी उदासी के भाव साफ झलक रहे थे। "क्या बात है रघुबीर? परेशान क्यों हो? माँ ने पूछा था।" "कुछ नहीं माँ—।" रघुबीर ने टाल–मटोल करने की बहुत कोशिश की थी पर माँ से उसके मन की झुंझलाहट छिपी न रह सकी। माँ के बार–बार पूछने पर वह अधिक समय तक सच छुपा नहीं सका।

"माँ पता नहीं क्या बात है कि मुझसे पत्ते छाँटे ही नहीं जाते। पेड़ों पर दराट का प्रहार करूँ तो घबराहट होने लगती है। मुझे ऐसा अनुभव होता है, जैसे मैं किसी की हत्या कर रहा हूँ।"

यह सुनकर उसकी माँ ने कहा था "बेटा निस्संदेह मैं बहुत पढ़ी–लिखी नहीं हूँ लेकिन इतना मुझे पता है कि पेड़ों में भी जान होती है। यदि पेड़ काटते हुए तेरे मन में ऐसे भाव पैदा होते हैं तो इसका इलाज भी है।"

'लेकिन————'

"लेकिन बेटा यदि हम पत्ते नहीं छाँटेंगे तो भेड़–बकरियाँ भूखी मर जाएँगी? उनका पेट पालने के लिए किसी न किसी को तो ग्रास बनना ही पड़ेगा। पेड़ हमारे लिए बहुत उपयोगी हैं, यह सच है। हम जितने भी पेड़ काटें, हमें उतने ही नहीं अपितु उससे अधिक पेड़ लगाने चाहिए तुम अपने मन में उबर रहे आत्मग्लानि के भावों से अवश्य ही मुक्ति पा सकोगे।"

माँ की यह नसीहत रघुबीर ने गाँठ बाँध ली थी। उस दिन के उपरांत रघुबीर को पत्ते छाँटते हुए या पेड़ काटते हुए दुख तो होता परंतु वह अधिक से अधिक पेड़ लगाकर अपने मन की वेदना को कम करने की चेष्टा करता

रघुबीर भाँति–भाँति के पेड़ लगाकर अपने गाँव को और भी हराभरा बनाने में पूरा योगदान देता। उसने जैसे पेड़ लगाना अपने जीवन का ध्येय ही बना लिया था। भाग्य ने ऐसा संयोग बनाया कि उसकी नौकरी भी वन विभाग में लग गई.....बतौर फॉरेस्ट गार्ड।

अवैध कटाई पर सख्ती से अमल करने के कारण उसे कई बार तबादले के रूप में कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ा। उसने कभी हार नहीं मानी। जंगल का चक्कर लगाते हुए उसे ऐसा लगता जैसे सारी–की–सारी प्रकृति उससे याचना कर रही हो कि उसे तबाह होने से बचा लिया जाए! अंततः जंगल का रक्षक होने के कारण यह उसका दायित्व भी था। अपने फर्ज की अदायगी के लिए पूरी नौकरी में उसे एक पल का भी आराम नहीं मिला। कभी जंगलात के ठेकेदार तबदीली करवा देते तो कभी फारैस्टर और डी. एफ. ओ से ठन जाती। जिसका परिणाम उसे भुगतना ही पड़ता। वह जब भी गाँव में अपने हाथों से लगाए हुए पेड़ों की ओर देखता तभी उसे अपने आप पर बड़ा गर्व अनुभव होता। छोटे–छोटे पेड़ अब वृक्ष बन चुके थे और उन्हीं वृक्षों में एक वृक्ष था– आम का।

आम का वह वृक्ष उसने तब लगाया था जब वह स्वयं बच्चा था। रघुबीर को आज भी याद है कि उसके बापू वो पौधा शहर से लाए थे और उसके हाथ से लगवाया था। शायद उसकी स्मृति में उसके हाथ से लगा हुआ वह पहला पेड़ था जिसकी सब जगह चर्चा थी।

छोटा बच्चा रघुबीर अब नाती–पोतों वाला हो गया है तथा फारैस्टर के रूप में रिटायर भी हो चुका है। तीन लड़कियों की शादी भी कर चुका है। और बड़े बेटे का भी विवाह हो चुका है।

आयु की इतनी लंबी यात्रा के पश्चात भी उसके मन में पत्ते छाँटते हुए आज भी वही भाव उमड़ आते जैसे भाव उसके बचपन में उमड़ आते थे। आज भी किसी को पेड़ काटते देखता है तो उदास हो जाता है।

वह सदा लोगों को वृक्षों का महत्व समझाता बिना मतलब लालचवश पेड़ों को काटने से मना करता और अधिक पेड़ लगाने की ओर प्रेरित करता। वह गाँववासियों को यह समझाता कि पेड़ों के बिना जीवन की कल्पना करना भी असंभव है। वह उन्हें अपने लगाए हुए पेड़ों के संबंध में भी गर्व से सुनाता कि इन पेड़ों के कारण गाँव में इतनी अधिक हरियाली, सुंदरता और वातावरण में ताजगी है।

गाँव वाले भी उसकी बात का मान रखते उसकी नसीहत के अनुसार अपने गाँव को हरा–भरा रखने की पूरी–पूरी कोशिश करते। उनको पता है कि रघुबीर एक ईमानदार आदमी है, उसकी बातों में दम है।

रघुबीर चाहता तो नौकरी के दौरान खूब पैसा कमा सकता था। उसे पेड़–पौधों का हत्यारा नहीं बनना था। पेड़–पौधों के शवों का सौदा करके पैसा कमाना उसे पाप लगता था। कुछ लोग उसे इस सनक के कारण मूर्ख भी कहते थे।

उसको मूर्ख कहलाना अच्छा लगता अपनी सनक मालूम थी उसे, अपने असूलों से समझौता करके वह अपने आप को पेड़–पौधों का कातिल नहीं कहलाना चाहता था।

इसी सोच के कारण अपने गाँव ही नहीं अपितु दूर–दूर तक रघुबीर की बहुत इज्जत थी। लोग उसका उदाहरण देते और उसके लगाए हुए आम के बाग पर भी गर्व अनुभव करते। आम के बाग में बचपन में उसके द्वारा लगाया हुआ पहला पेड़, लोगों की बातचीत में अवश्य शामिल रहता।

शामिल रहे भी क्यों न? जब भी आषाढ़ का मौसम आता, वह पेड़ आम से लद जाता। आम की सुगंध दूर–दूर तक फैल जाती। रघुबीर तो दूर से ही उसकी सुगंध को पहचान लेता और उसका सीना गर्व से और भी फूल जाता।

आम के पकने पर, वह पूरे गाँव में आम बाँटता। गाँव के लोगों की उस वृक्ष के आम खाने की आदत जैसी बन गई थी। जब भी आम पकने लगते तभी से सभी गाँव वालों का मन ललचाने लगता और आशा बनी रहती कि कब रघुबीर आम बाँटे और जिह्वा का स्वाद शांत हो।

आम का वह वृक्ष कई वर्षों से अपने मिश्री से भी मीठे सुस्वादु आमों से गाँव वालों को तृप्त कर रहा था। वह वृक्ष सारे गाँव की शान था। उससे बड़ा और सुस्वादु आम पूरे इलाके में ढूँढने पर भी नहीं मिलता।

जब आम फलता तभी से गाँव के लड़कों की नज़र उस पर लगी रहती। उन लड़को में रघुबीर का अपना छोटा लड़का भी होता–कमल वैसे तो ग्रैजुएशन करके नौकरी की तलाश में था, पके हुए आम को देखकर वह भी बच्चा बन जाता। गाँव के बाकी लड़कों की तरह वह भी आम के कभी एक टहनी पर और कभी दूसरी पर छलांग लगाता और आम चूसता। वृक्ष इतना अधिक फैला हुआ था और टहनियाँ इतनी ज्यादा थी कि लड़के वृक्ष पर पकड़म–पकड़ाई भी खेलते और मीठे आमों के चूसने का आनंद भी लेते।

रघुबीर ने भी कभी लड़कों को नहीं रोका, आम का वह वृक्ष, जहाँ मीठे फल देता, वहीं वह गाँव के लड़कों के खेलने का साधन भी बना हुआ था।

दोपहर को गाँव के सारे लड़के इकट्ठे हो जाते और आम की टहनियों पर बंदरों की तरह टपोलियाँ मारते उनको आम का वह वृक्ष अपनी माँ की गोदी के समान लगता।

एक दिन गाँव के बुजुर्ग तपती गर्मी में अपने–अपने घरों में आराम कर रहे थे। पर लड़कों को आराम कहाँ? गर्मी से छुटकारा पाने के लिए सभी आम के वृक्ष के नीचे इकट्ठे हो गए थे। देखते ही देखते सभी लड़के आम के वृक्ष पर जा चढ़े और लगे टहनों से लटकने। कमल भी शीघ्रता से टहनियों के सहारे ऊपर चढ़ने लगा।

तभी उसकी नजर एक पके हुए आम पर पड़ी और उसके ओठों पर मुस्कान फैल गई। आम की सुगंध उसे अपनी ओर खींच रही थी। उसने मन में निश्चय किया कि यह आम खाना ही खाना है।

फिर क्या था? कमल बड़ी कुशलता से एक हाथ से टहनी को दृढ़ता से पकड़कर दूसरे हाथ से आम की ओर लपकने लगा। अभी उसका हाथ आम तक पहुँचा ही था कि अचानक ही उसके हाथ से टहनी छूट गई वह टहनियों से टकराते हुए धम्म से जमीन पर आ गिरा और उसके मुख से जोर की चींख निकल गई। बेहोशी की हालत में कमल की आँखें बंद हो गईं।

लड़कों में अफरातफरी मच गई। कुछ लड़के कमल के घर की ओर दौड़ पड़े। कुछ तो इतने घबरा गए कि अपने–अपने घर को भाग गए।

थोड़ी ही देर में रघुबीर घबराया हुआ दौड़ता हुआ आम के पेड़ के पास आ पहुँचा। उसके

पीछे–पीछे कमल की माँ उमा तथा रघुबीर को दुर्घटना की सूचना देने वाले लड़के भी थे। रघुबीर ने कमल को झकझोरा तो कमल के मुँह से ऊँ–ऊँ की आवाज सुनकर उसे कुछ संतोष हुआ।

जा–जा काली को बुला ला कमल को शहर के अस्पताल ले जाना है, कहना गाड़ी लेकर जल्दी आओ। रघुबीर ने पास खड़े लड़के को कहा। लड़का दौड़ गया। पास बैठी हुई उमा घबराई हुई कभी अपने पति की ओर देखती, कभी कमल की ओर! वो बरस पड़ी——

'कमल को बचा लो—— मेरे कमल को——

धैर्य रखो उमा! कमल को कुछ नहीं होगा। यह बिल्कुल ठीक है, बस गिरने से बेहोश हो गया है'

"यह न तो आँखे खोल रहा है और न कुछ बोल ही रहा है। भली प्रकार देखो तो इसकी नाड़ी चल रही है या नहीं" कहते हुए उमा रोने लगी। कैसी बातें करती हो उमा! हमारा कमल बिल्कुल ठीक है। तुम्हें कहा न, गिरने के डर से बेहोश हो गया है। अभी होश आ जाएगा। बस परमात्मा के आगे प्रार्थना कर बाह्वे वाली माता के मन्नत माँग उमा——।'

" पर आप तो कह रहे हो कमल ठीक है——?" उमा घबराई हुई बोली थी।

उत्तर में अपनी आँखों से निकल आए आँसुओं को साफ करते हुए रघुबीर बोला।

"मुझे पूर्ण विश्वास है—— कमल बिल्कुल ठीक है।" कहते हुए रघुबीर डबडबाई आँखों से आम के वृक्ष की ओर देखते हुए बोला।

"यह आम भी तो मेरे पुत्र के समान है। बड़ी मेहनत और स्नेह से पाला हुआ है मैंने। यह कमल की जान—— नहीं—— नहीं।"

कहते हुए उसने उस आम के पेड़ से अपनी दृष्टि हटा ली तब उसे उस वृक्ष का पत्ता–पत्ता उदास और सारे फल शांत दिखे।

थोड़े समय में ही काली गाड़ी ले आया। काली ने कमल को उठाकर गाड़ी में लिटाया और रघुबीर उमा सहित अपने छोटे पुत्र को लेकर जम्मू शहर के बड़े अस्पताल में जा पहुँचे। कुछ देर बाद काली का बड़ा भाई योगेश तथा गाँव के कुछ अन्य लोग भी अस्पताल आ पहुँचे। अस्पताल में कमल का बड़ा ऑपरेशन हुआ। कमल को होश तो आ गया, पर रीढ़ की हड्डी का मनका टूट जाने से वह हमेशा–हमेशा के लिए वैसाखियों के पराधीन हो गया।

युवा लड़का! आयु मात्र 20–21 वर्ष और अपाहिज? रघुबीर पर तो जैसे पहाड़ ही टूट पड़ा हो। समय के आगे कब किसी की चली है। समय के आगे तो सभी विवश होते हैं। भाग्य की उलझनों में उलझता ही जाता है।

रघुबीर जब कमल को बैसाखियों के सहारे बड़ी मुश्किल से चलता देखता तो उसकी दृष्टि घर से कुछ दूर आम के बाग की ओर भी पड़ ही जाती। सामने आम का वह वृक्ष आज भी अपने विशाल अस्तित्व का परिचय देते हुए खड़ा दिखाई देता है। अब उसे देख रघुबीर की आँखों में गर्व के भाव नहीं उमड़ते। उल्टा वह दुखी होकर सोचता यदि आम का वृक्ष चाहता तो कमल अपने पाँव पर खड़ा होता।

रघुबीर सोचता, उसने हमेशा उस पेड़ को पुष्पित पल्लवित होने में सहयोग दिया। बच्चों की भाँति संरक्षण किया और वो उसके लड़के को भी संभाल न सका। कहते हैं कि पेड़ों में भी जीवन होता है और फिर निःसंदेह कमल अपनी गलती से ही गिरा हो पर वह तो पेड़ की कितनी ही टहनियों से टकराता, नीचे गिरा था। क्या कोई एक भी टहनी उसे पकड़ नहीं सकती थी? पकड़ लेता तो शायद कमल की यह दशा नहीं होती और उसे भी संतोष हो जाता कि वृक्षों ने भी अपना कर्तव्य निभाया है।

कमल अब अपने आप में ही गुम–सुम रहने लगा था। शायद भीतर ही भीतर घुलता जा रहा था। वह अक्सर आम के वृक्ष के नीचे आकर बैठ जाता और उसकी टहनियों को घूरता रहता।

आम के पेड़ को लेकर अब गाँव में चर्चाओं का बाजार गर्म था। इतने पुराने और सघन वृक्ष पर अवश्य ही किसी भूत प्रेत या शै बला का वास होगा। तभी तो वह अपनी प्रकार का है और उसके

फलों में अलग ही तरह की मिठास है, स्वाद है, जो एक बार उसका स्वाद चख लेता है, भुलाए नहीं भूलता है।

अब गाँव के लड़के बच्चे भी उस पेड़ पर चढ़ने से डरने लगे थे। लोगों में अक्सर यह खुसर–फुसर होती कि रात को तथा भरी दुपहरी में पेड़ पर भूत–प्रेतों का बसेरा होता है। तभी तो उस दिन भरी दुपहरी कमल को बाहरी शक्ति ने इतनी ऊँची टहनी से नीचें फेंका था।

जैसे–जैसे समय व्यतीत हो रहा था कमल के जीने की आस कम होती जा रही थी। बड़ा भाई योगेश उसे हौसला देता कि अपाहिज होते हुए भी कितने ही लोगों ने विश्व में अपना नाम रोशन किया हुआ है। जानता तो कमल भी था पर वह डिप्रैशन का शिकार हो गया था। उस पेड़ को लेकर जितने मुँह उतनी बातें सुनने में आ रही थीं।

गाँव वाले रघुबीर को बाहर इलाज करवाने की भी सलाह देते। अंततः रघुबीर ने बहुत ऊपर का इलाज भी करवाया, कन छटाएँ, जड़ियाँ खेलीं, क्या कुछ नहीं किया, जिसने जो कहा किया। न ही डॉक्टरी इलाज ही सिरे चढ़ा और न ही दुआएँ फलीभूत हुईं।

गाँव के लोग अब भी, जब आम के बाग के पास से गुजरते, आम के उस पेड़ को देखते ही उन्हें कमल का स्मरण हो आता आम और वह उस पेड़ को बद्दुआ देते हुए आगे बढ़ जाते। रघुबीर तो बिल्कुल भी उस वृक्ष की ओर देखता तक नहीं था। रघुबीर की बेरूखी से आम का वह बेजुबान वृक्ष भी कमल की भाँति मन ही मन घुटता जा रहा था।

कभी प्रातः उठते ही बाहर बरामदे में आकर आम के पेड़ को निहारने वाला रघुबीर अब उससे ऐसा व्यवहार करता जैसे उस वृक्ष से उसका कभी कोई संबंध ही न रहा हो। कभी भरी दोपहर में उस वृक्ष के नीचे चारपाई डाल सुख की साँस लेने वाला रघुबीर अब घर में ही कैद होकर रह गया था। कभी लड़कों–बच्चों के लिए खेल का साधन बनने वाला वह पेड़ आज उनकी सूरत देखने को भी तरसता रहता था।

वैसे कमल आज भी बैसाखियों के सहारे उसके पास आ ही जाता। भूमि पर ही बैठ कर टकटकी लगाकर उसे देखता रहता। गाँव वालों के अनुसार कोई बाहरी शक्ति कमल को उस ओर खींच ले जाती है।

कमल पेड़ की ओर सूनी आँखों से देखता कभी उसके ओठों पर मुस्कान बिखर जाती और कभी उसकी आँखों से आँसू ढलक पड़ते। वह मुस्कुराते हुए वृक्ष को जतलाता।

"देख लो सभी ने तुम्हें छोड़ दिया–परंतु मैं आज भी बैसाखियों के सहारे ही सही तुझे मिलने आ ही जाता हूँ। बेशक तेरी कोई भी टहनी समय पर मेरे काम नहीं आई, कोई बात नहीं——।" कमल मन ही मन यह भी सोचता कि दोष भी तो उसी का था। आम को लपकने से गिर पड़ा। लालच नहीं करना चाहिए था। फिर रोते हुए कमल वृक्ष की ओर देखते हुए कह उठता, ——"लालच क्यों न करता? तेरा फल ही इतना मीठा है। बचपन से ही तो तू भी याराना निभा ही रहा था भरी जवानी में ही——।" आम का वह वृक्ष शायद कमल की बात सुनकर और भी उदास हो जाता।

कमल अपना अधिकांश समय आम के उस वृक्ष के नीचे बैठकर व्यतीत करता और इसी प्रकार उस वृक्ष के साथ गुस्सा और शिकायत करता रहता। जो भी कोई आते–जाते उसकी इन हरकतों को देखता वह बाकी लोगों को सुनाता फिरता कि कमल पगला गया है और आम के पेड़ से बातें करता रहता है। अथवा यह भी हो सकता है कि वृक्ष पर वास करने वाली कोई शै बला ही कमल से बातें करती हो। इसी कारण गाँववासियों ने अपनें बच्चों को कमल से मिलने–जुलने की सख्ती से मनाही कर दी थी। अब कमल और आम का वृक्ष दोनों अकेले हो गए थे।

रघुबीर और उसके बड़े बेटे योगेश ने अपनी ओर से इलाज में कोई ढील नहीं बरती थी फिर भी जो कोई भी घर आता अपनी राय देने में संकोच नहीं करता। पिछले कुछ दिनों से कमल को लुधियाना या अमृतसर ले जाकर दिखाने की

सलाह मिल रही थी सलाह देने वालों के अनुसार असंभव को भी संभव बना देते हैं अमृतसर और लुधियाना के डॉक्टर। वे लोग यह बात कमल के दिमाग में भी डाल देते। कमल के बुझे हुए मन में पुनः एक आस जाग जाती।

लुधियाना या अमृतसर में इलाज करवाना कब आसान था। घर वाले पहले ही कमल के इलाज पर सारी जमां पूँजी लगाकर कंगाल हो गए थे। अब पैसे का प्रबंध कैसे होगा? यह सोचकर रघुबीर और योगेश चिंतित थे। कमल की सेहत में कोई सुधार नहीं हो रहा था। दिन–प्रतिदिन कमजोरी बढ़ती जा रही थी।

रघुबीर जब पैसे उधार लेने के लिए ठेकेदार जम्वाल के पास गया तो उनकी भी यही राय थी, शायद वहाँ के डॉक्टर ही तुम्हारे कमल के लिए भगवान बन जाएँ और वह ठीक हो जाए—— "ठेकेदार साहब जो भी पैसा–धेला था पहले ही लग चुका है। यदि आप ब्याज पर पैसा दे दो तो——" ठेकेदार साहब रघुबीर की बात पर हँस पड़े थे—— "रघुबीर जी आपके पास तो इतना कुछ है कि अमृतसर, लुधियाना क्या, आप तो कमल को गंगाराम अस्पताल दिल्ली भी ले जा सकते हो।"

रघुबीर की समझ में कुछ भी नहीं आया। जब जम्वाल ने खुलकर बात की तो रघुबीर कुछ देर के लिए व्याकुल हो गया था। वह घबराहट से पसीना–पसीना हो गया था।

दूसरे दिन प्रातः जब काली की गाड़ी में बैठकर रघुबीर, उमा, योगेश और कमल को लेकर अमृतसर जाने लगे तब आम के बाग के पास से गुजरते हुए कमल बोला था।

"काली पापा एक मिनट गाड़ी रोको—— काली ने गाड़ी रोकी तो कमल बड़े स्नेह से आम के वृक्ष को लेटे–लेटे ही निहारने लगा, जैसे कहीं दूर जाने से पहले कोई अपने सबसे स्नेही को मिलता है। उमा और काली कमल के मन में वृक्ष के प्रति आज भी स्नेह–प्रेम की भावना देखकर हैरान थे। रघुबीर की आँखे भी भीगी हुई थीं तब भी उसने वृक्ष की ओर नहीं देखा, उल्टे मुँह मोड़ लिया था।

गाड़ी चल पड़ी। कमल खिड़की से उस आम के वृक्ष को तब तक देखता रहा, जितनी देर वह वृक्ष उसकी दृष्टि से ओझल नहीं हो गया।

अमृतसर जाना भी सिर्फ दिल को सहारा देने वाली ही बात थी। वहाँ एक–एक दिन काटना भारी था। डॉक्टरों ने सभी घाव खोल दिए। डॉक्टरों को जितनी देर रघुबीर और योगेश की मनुहार ठीक–ठीक लगी, उन्हें उम्मीद नहीं छोड़ने का हौसला देते रहे। फिर जैसे–जैसे उनकी मनुहार बदलने लगी, वे भी समझ गए कि अब इनके लिए इलाज करवाना आसान नहीं है। तब डॉक्टरों ने भी सीधे और स्पष्ट शब्दों में राय दे दी।

"बड़ा ही कम्पलीकेटिड केस है। रीढ़ की हड्डी गल चुकी है। जहर बन गया है! जो घाव भरने ही नहीं देता। बेहतर यही है कि इसे घर ले जाओ और परमात्मा का नाम लो।"

घरवाले थक–हार कर वापिस लौट पड़े। कमल की हालत नाजुक थी। बस घड़ियाँ ही गिन रहा था। भाग्य से कोई नहीं लड़ सकता। शायद यही सोचकर सभी शांत होकर सफर कर रहे थे।

गाँव पहुँचते ही उमा की दृष्टि आम के बाग की ओर गई। आम का वह वृक्ष अपने स्थान पर नहीं था। उमा परेशान होकर बोली, "आम का पेड़ कहाँ गया?"

रघुबीर और बड़े लड़के योगेश ने गर्दन घुमा ली थीं। कमल ने बड़ी मुश्किल से आँखें खोली और बाहर की ओर देखा। आम का वृक्ष नहीं दिखने पर उसकी आँखों में अजीब से भाव आए थे। शायद कहना चाहता हो "एक को मौत देकर दूसरे का जीवन नहीं खरीदा जा सकता।"

उसने ऐसी आँखे बंद की जो फिर खुली ही नहीं।

– 55/4 नानक नगर, जम्मू 180004

❑❑❑

मूल ते ब्याज

पद्मा सचदेव

जदूं अऊँ सुत्ती दी रेही
सब ठीक हा
जागदे गै मिगी
बंदी रक्खने पे दिन–रात
सनैह्री संञ ते उजला परभात

सनैह्री संञ
रातीं दे सुखने इच
केसरी होइयै छप्पी गेई
उजला परभात मिगी बलगदा रेहा
रोहै कन्नै तपदा रेहा
ते फ्ही आपूं गै
ठंडा पेई गेआ

अऊँ उट्ठी खड़ोती
तदूं मिगी बंदै रक्खने पे पल–खिन
ते हून बंदै पेदा ऐ लूं–लूं
चढ़दा जा' रहा ऐ ब्याज
ते घटदी जा' रदी ऐ बरेस!

– बी–242, चितरंजन पार्क, नई दिल्ली–110019

❑❑❑

भाषा ISSN 0523-1418

मूल और ब्याज

अनुवाद : कृष्ण शर्मा

मैं सो रही थी तो
सब कुछ ठीक था
जागते ही मुझे
बंदी बनाने पड़े दिन–रात,
सुनहरी संध्या और प्रभात

सुनहरी संध्या
रात के सपनों में
केसरी होकर छिप गई
उजला प्रभात रहा
मेरी प्रतीक्षा में–

क्रोध में तपता रहा
फिर स्वयं ही ठंडा पड़ गया

मैं उठ खड़ी हुई
फिर मुझे बंदी बनाने पड़े
पल और क्षण–
और अब बंदी पड़ा है
मेरा पीड़ित रोम–रोम
चढ़ता जा रहा है ब्याज
घटती जा रही है ज़िंदगी.....

– 152/119, पक्की ढक्की, जम्मू–180001

❑❑❑

गुमशुदा मुहब्बत

शम्मी जालंधरी

ऐ शिव
तू कदे इश्तहार दित्ता सी
इक गुमशुदा कुड़ी दा
जेहड़ी हाले वी गुम ए
क्योंकि ओहनूं लभ्भण दा
किसे ने हीला ही नहीं कीता
ना तेरे जिउंदे जी
ना तेरे मरन तो बाद
नहीं तां ओहनूं लभ्भण वाला वी
तेरे वांगू
इश्तहार दे दे
गलियाँ दी ख़ाक छाणदा
फ़कीर हो जांदा

तूं उस कुड़ी दा इश्तहार दित्ता सी
जिस दा नाम सी मुहब्बत
जो कि दुनिया के हर रिश्ते'चों
ख़तम हो चुकी ए
तू ओहदी गल्ल कीती
जिसदी सूरत सी परियाँ वरगी
जो गुम हो चुक्की ए
नकली मखौटियाँ दी भीड़'च
तूं उसदा ज़िकर कीता सी
जिसदी सीरत सी
पाक साफ़ मरियम वरगी
जेहड़ी कि साडे मंदे ख़ियालां
दे हनेरे विच किधरे
अलोप हो चुक्की ए

ऐ शिव! इह केही जेही कुड़ी सी
कि जेहदी खातिर इस जग ने
तेरे तोहमताँ लाईयाँ
खरियाँ खोटियाँ सुणाईयाँ
सिरफिरा, पागल
ते की–की होर
कि तेरे ते तोहमताँ लाउण वाले वी
इक तेरे ते तोहमताँ लाउण वाले वी
इक कुड़ी दी भाल'च ने
पर इह तेरे वांग
उसनूं लभ्भदे–लभ्भदे
फ़कीर नहीं होण्गे
क्योंकि जिसनूं इह लभ्भ रहे ने
उसदा नम मुहब्बत नहीं
दौलत है, शोहरत है
जिस नूं कईयाँ लभ्भ लिया
ते कईयाँ नूं लभ्भ जावेगी
पर ऐ शिव!
जिय कुड़ी दा तूं इश्तहार दित्ता सी
यार ओह ते हाले वी गुम है
ऐ शिव!

– 49 पाइन एवेन्यू, वाराडेल, एस. ए. 5046, ऑस्ट्रेलिया

❑❑❑

भाषा ISSN 0523-1418

गुमशुदा मुहब्बत

अनुवाद : नीलम शर्मा 'अंशु'

ऐ शिव!
तूने कभी इश्तहार दिया था
एक गुमशुदा लड़की का
जो अभी भी गुमशुदा है....
किसी ने कोशिश ही नहीं की
उसे तलाशने की, तुम्हारे बाद
वर्ना वह भी फ़कीर हो जाता
तुम्हारी भाँति....

तूने उस लड़की का इश्तहार दिया था
जिसका नाम था मुहब्बत
जो कि दुनिया के हर रिश्ते से खत्म हो चुकी है
तूने उसकी बात की
जिसकी सूरत थी परियों जैसी
जो गुम हो चुकी है नकली मुखौटों की भीड़ में
तूने उसका ज़िक्र किया
जिसकी सीरत थी पाक और साफ
मरियम जैसी
जो कि ओझल हो चुकी है
मंद विचारों के अंधियारे में

ऐ शिव! ये कैसी लड़की थी
जिसकी ख़ातिर ज़माने ने तुझ पर तोहमतें लगाईं
खरी खोटी भी सुनाई
आज भी सुना रहा है
ये लोग भी एक लड़की की तलाश में हैं
परंतु ये तुम्हारी तरह फकीर नहीं होंगे
उसे तलाशते–तलाशते
क्योंकि जिसे ये तलाश रहे हैं
उसका नाम मुहब्बत नहीं
दौलत है, शोहरत है
जो उन्हें एक दिन अवश्य मिल जाएगी
या शायद मिल चुकी होगी
परंतु ऐ शिव!
जिस लड़की का तूने इश्तहार दिया था
वह अभी भी गुमशुदा है.....

– 15 यू एफ, सफदर हाशमी मार्ग, मंडी हाउस, नई दिल्ली–110001

❑❑❑

राष्ट्र, समाज और मानवीय मूल्यों पर केंद्रित कविताएँ

प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, डी. लिट्.

आज अमूर्त, बयान बाजी, ऊलजुलूल कविताओं का जंगल पसर गया है। वहाँ यह कहना कठिन है कि इन कविताओं की समाज सापेक्षता क्या है। इस निराशा, हताशा की स्थिति में कुमार हृदयेश ठोस ज़मीन पर खड़े हैं। उन्हें राष्ट्र, समाज, मनुष्य एवं उनकी समस्याओं से गहरा नाता है। वह उनकी समस्याओं, सीमाओं, शक्तियों से पूर्णतः भिज्ञ हैं और चाहते हैं हमारा देश, हमारे लोग सकारात्मक दिशा में चलें। मनुष्य, मनुष्य के दुख–सुख, जय–पराजय में सम्मिलित हो। मनुष्य की हृदयहीनता, शुष्कता पर प्रहार है। उसका समाज और मनुष्य से गहरा नाता हो। दुष्यंत कुमार ने बताया है कि आज मनुष्य–मनुष्य नहीं रहा, वह ठूँठ और पत्थर हो गया है–

वो कोई बारात हो या कि वारदात
अब किसी भी बात पै खुलतीं नहीं हैं खिड़कियाँ।

(साए में धूप)

वहाँ कुमार हृदयेश पहली ही कविता में देश की विकट समस्याओं से परिचित करा देते हैं–

आओ मिलकर अपने देश का उत्थान करें,
खूब करें पैदा खेतों में और गरीबी दूर करें।
भ्रष्टाचार हटाएँ, हम सबको कामयाब करें,
भाई–भतीजाबाद और ऊँच–नीच को बाहर करें।

(नवभारत, पृ.13)

फिर होती है ध्वज स्तुति, जिसमें भारत राष्ट्र की विशेषताओं का वर्णन है यथा हमारा तिरंगा झंडा। देश में जनता को मिलता है सर्वोच्च सम्मान क्योंकि राष्ट्र की धुरी वही है। फिर राष्ट्रीय झंडे की विशेषताओं का उल्लेख है। इसका प्रत्येक रंग एक मंत्र है, जिससे सारा तंत्र परिचालित, संचालित होता है। केसरिया शौर्य, वीरता, साहस का संदेश लाता है तो उजला रंग सौम्य, शांति और सद्भाव का प्रतीक है। नीला रंग धम्म चक्र है। प्रेरणा, प्रगति और देश प्रेम को अभिव्यक्ति का आकाश देता है। वहीं हरा रंग धरती की हरीतिमा दर्शाता है।

हरा रंग है हरी हमारी धरती की अंगड़ाई
कहता है यह चक्र हमारा कदम न कभी रुकेगा।

इसी कविता में केसरिया बल, पौरुष और पराक्रम का प्रतीक बनकर आया है और उजला रंग सच्चाई का द्योतन करता है।

केसरिया बल भरने वाला सादा है सच्चाई।

'राष्ट्रीयता' में मूर्त और अमूर्त राष्ट्रीयता का प्रत्यय प्रकट हुआ है। यहाँ के पर्वत, वन, सागर, नदियाँ मूर्त राष्ट्रीयता के विधायक तत्व हैं, तो कला, सौंदर्य, शिक्षा, कुशलता, प्रवीणता अमूर्त राष्ट्रीयता के दोनों प्रत्ययों का समाहार भव्य और

चेतना के स्वर / कवि : कुमार हृदयेश / प्रकाशक : प्रज्ञान साहित्यलोक, 8बी, गुरुनानक मार्केट, लाजपत नगर–IV, नई दिल्ली–110024 / प्रथम संस्करण : 2019 / कुल पृष्ठ : 80 / मूल्य : ₹80/–

प्रभावक बन पड़ा है। कवि को सदैव यह ध्यान रहता है कि प्रत्येक भारतवासी को राष्ट्र से गहरा नाता हो। उसके योगक्षेम के लिए सब चिंतित और जागरूक रहें।

हर हृदय देशप्रेम कर अलख जगाएँ,
देश प्रेम प्रति जागरूकता लाएँ
साहित्य–कला ऐसी विधि अपनाएँ
राष्ट्रप्रेम में जनता ओतप्रोत हो जाए
आओ राष्ट्र समृद्ध बनाएँ... ।

(राष्ट्रीयता, पृ.13)

इसके लिए चाहिए विविधता में एकता। जाति, धर्म, संप्रदाय, गुट से सर्वथा ऊपर रहना। किसी प्रकार के भेद, मनमुटाव को प्रश्रय नहीं देना। परस्पर भाईचारा का भाव। यह अपना है। यह पराया है। ऐसी गणना क्षुद्र बद्धि वालों की है। उदार हृदय वाले पूरे ब्रह्मांड को एक मानते हैं और सब परस्पर मिल–जुलकर रहते हैं। नीतिकार का कथन है–

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदार चरितान्नान्तु वसुधैव कुटुंबकम्।।

यह अपना है। यह पराया है। ऐसी गणना क्षुद्र बुद्धि वालों की है। उदार हृदय के लिए सारा संसार परिवार के समान है। यहाँ भारत की वंदना माता के रूप में की गई है। जननी और जन्मभूमि को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ माना गया है–

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

भारत माँ के सामने हम प्रतिज्ञा करें कि पारस्परिक मतभेद भुलाकर प्रेम का पाठ पढ़ेंगे। प्रेम की डोरी में सबको एक सूत्र में बाँधेंगे और ध्यान रखेंगे– "टूटे न प्रेम की डोरी। चाहे दुनिया जाए उस छोर।"

ईसामसीह ने कहा– "मैं रोया तुम्हारी आँखे नम नहीं हुई।" ध्वन्यार्थ यह है कि एक–एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की चिंता करेगा, तभी मानव जाति का कल्याण होगा। वे परस्पर जुड़ेंगे और मिलेंगे। राष्ट्र को मजबूत आधार मिलेगा। आज पारस्परिक संगठन, मिलन के स्थान पर अलगाववाद को प्रश्रय मिल रहा है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से अलग–थलग है। यही अलगाववाद फूट, भेद और आत्मकेंद्रण का कारण है। इसलिए कवि का संकल्प है कि वह आतंक, जातिवाद, धर्मवाद, मानवता पर हो रहे अनवरत अत्याचार से देश को मुक्त कराएँगें। गद्दार, देशद्रोही टिक नहीं पाएँगें। उनका नाश अवश्यंभावी है।

'माँ गंगे' की प्रार्थना है। इसलिए कि वह गंगोत्री से स्वच्छ, धवल और स्निग्ध शरीर लेकर उतरी है। उसका जल बलवर्धक है। मृतात्माओं का मुक्तिदाता हे। परंतु विडंबना यह है कि उसका जल कल– कारखानों (कानपुर के चर्म उद्योगों के कूड़े–कचरे के कारण भी) के कारण दूषित और विषाक्त हो गया है–

पावन जल को अवांछित वस्तुओं ने अपवित्र बनाया है।

(पृ.19, माँ गंगे)

भौतिक भारत की अंतर्यात्रा करता हुआ कवि स्वतंत्रता की देवी का आह्वान करता है। आजादी की बलिवेदी पर कितने ही वीरों ने शहादत दी है। यहाँ माखनलाल चतुर्वेदी की कविता 'मैं हूँ एक सिपाही' की बरबस याद आती है। सिपाहियों की अनाम कुर्बानी की यह दास्तान प्रत्येक वीर याद रखता है–

नित्य शीश का दान, रक्त तर्पण भर कर है ज्ञान,

———————

पूंजी है तीर कमान। परंतु कैसी विडंबना है। कैसा विपर्यय है कि मूक शहादत करने वाले इन वीरों का नाम लेने वाला कोई नहीं है–

मुझे भूलने में सुख पाती जग की काली स्याही,
दासो दूर कठिन सौदा है मैं हूँ एक सिपाही।

कवि ने ऐसे वीरों को यहाँ सादर स्मरण किया है–

नमन करें, हम सब उन वीरों की कुर्बानी
देश खातिर जिन्होंने निछावर कर दी जवानी

(स्वतंत्रता, पृ.21)

देश, राष्ट्र, वहाँ के वासियों की रक्षा–सुरक्षा तभी हो सकती है, जब वे नैतिक मूल्यों को जीवन में महत्व दें। मूल्यों पर जीवन–त्याग तक उनका

व्रत हो। अतः यहाँ 'नैतिक मूल्य' के अंतर्गत नैतिकता, कर्मठता, परिश्रम, उत्साह, एकता, व्यवहार, संस्कृति, जीवन शैली, शिष्टता, डर ऐसा शीर्षक देकर मूल्यों की व्याख्या, विवेचना की गई है। जरा कर्मठता पर ध्यान दिया जाए।

'कर्म ही पूजा है, उपासना है। 'यथा कर्म तथा फल' जैसा कर्म होगा, फल वैसा ही होगा। बबूल का पेड़ (बुराई) लगाने वाला आम कभी पा सकता है क्या? गीता का यही संदेश है कि हम ईमानदारी और समर्पण भाव से कर्म करें। फल उसका आनुसांगिक रूप है। कर्म के कई गुणों में रमता हुआ कवि आत्मविश्वास और श्रम के बल पर कर्म की ओर हमें प्रवृत्त करता है। कर्मठता आत्मविश्वास जगाती है। श्रम सीकर में नहाकर पौरुष दीप्त हो उठता है–

कर्मठता जगाती आत्मबल दिव्य प्रकाश
मेहनत से झलके पसीना, उर में प्रगतिवास।

(कर्मठता, पृ.27)

परिश्रम, उत्साह, व्यवहार, संस्कृति, एकता, जीवन शैली और शिष्टता पर अलग–अलग विचार किया गया है। वस्तुतः ये जीवन मूल्य हैं। इनके पालन, इन रास्तों पर चलने से ही पुरुषार्थ चतुष्ट्य (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की सार्थकता और मानव जीवन की सफलता है। परिश्रम के लिए चाहिए अदम्य, अडिग कर्मठता। 'कार्य वा साधुयामि शरीरं वा पातयामि'– कार्य सिद्ध करता हूँ या शरीर का नाश करता हूँ। महात्मा गांधी के अनुसार यही 'करो या मरो है।'

कर्म की कठोरता, उस मार्ग पर चलने में बाधाओं की विशाल सेना "फिर भी गिरिपथ का अथक पथिक ऊपर ऊँचे सब झेल चले।" (प्रसाद) 'परिश्रम' के अंतर्गत कवि श्रम की महत्ता, उस मार्ग की बाधा का उल्लेख करता है और बताता है कि कर्मपथ बड़ा जटिल, ऊबड़–खाबड़ है। वहाँ जल्दी चींटी के भी पाँव नहीं टिकते पर वीर, कर्मठ वहाँ भी आसानी से चलते रहते हैं। कबीर की साखी की एक पंक्ति याद आती है कि मन में उत्साह हो, संकल्प हो तो, मार्ग की बाधाएँ कुछ बिगाड़ नहीं पाती–

पाँव न टिकै पिपीलिका, पंडित लादे बैल।

(कबीर दास)

विषम, विपरीत परिस्थितियाँ हों, पग–पग पर पराजय की संभावना दिखाई पड़े, तो कवि अतीत में लौटता है। देखता है ऐसे वीर बाँकुडों से इतिहास भरा है जो अग्निपथ के पथिक हैं। वे उत्तरोत्तर उत्साह, जोश से आगे बढ़ते ही जाते हैं–

सन्नाटे में हो विकल पवन
पादप निज पद को चूम रहे
तब भी गिरिपथ का अथक पथिक ऊपर ऊँचे सब झेल चले।

('ध्रुवस्वामिनीः' जयशंकर प्रसाद)

कवि अतीत में लौटता है, जहाँ भगत, सुखदेव, राजगुरु के पराक्रम का स्वर्णिम अध्याय है। वर्तमान जब निराशाजन्य, निरुत्साह हो जाए तो वीर पलायन नहीं करता है। खंगालता है अपना अतीत और जुटाता है वहाँ से संबल, उत्साह कुछ करने का दृढ़ संकल्प–

भगत सुखदेव, राजगुरु, एकता, बल हिला फिरंगी राज।
एकत्व बल गांधी ने दिलवाया भारत को स्वराज।

(एकता, पृ.31)

जीवन, संस्कृति आचार के मूल्यों को कवि ने न केवल सैद्धांतिक आकाश दिया है, उन्हें व्यावहारिकता की तुला पर तौलकर स्थापनाएँ दी हैं। 'संस्कृति' की दीर्घ व्याख्या हो सकती है जीवन मूल्यों को अपनाकर। 'संस्कृति' में उसके तत्वों, घटकों और उपादानों का स्पष्ट वर्णन है। संस्कृति मार्ग दिखाती है सच्चाई, सद्भाव, सहयोग और सहिष्णुता का। वहाँ संप्रदाय, जाति, नस्ल, भाषा, मजहब आदि का कोई स्थान नहीं है। संपूर्ण मानव एक है। उनकी पारस्परिकता, उनकी शक्ति है।

तेजस्वी बनाए नैतिकता सिखाए
जीवन मूल्यों का कराती ज्ञान
रचनात्मक कार्यों की जननी
सृजनात्मकता का संस्कृति विज्ञान।

(संस्कृति, पृष्ठ 33)

पर्यावरण के प्रति हमारा समर्पण हो, प्रेम हो, त्याग हो–यह आज की माँग है। मानव जीवन के गहराते संकट का कारण पर्यावरण के प्रति हमारी उपेक्षा है। पर्वत काटकर मकान के लिए गिट्टी बनी। चौडे राजपथ बने। वृक्ष काटकर कागज बना। जलावन हुआ धरती हो गई नग्न, उजाड़। अब वहाँ हरियाली फटक नहीं पाती, तो फिर मेघ कैसे बनें, धरा कैसे हरी–भरी हो जाए। यह आधुनिक सभ्यता, वैज्ञानिक प्रगति का उपहार है मानव जाति को, जो हतदर्प, लुटापिटा निहार रही है शून्य में। तब हमें लौटना होगा अतीत में और देखना होगा कि मनुष्य का प्रकृति से कितना गहन नाता था। देवी, देवता के साथ धरती और वृक्षों की पूजा होती थी।

आज सर्वत्र विपर्यय है। असंतुलन है। हाहाकार है। कारण, पारस्परिकता को ग्रहण लग गया है। अब वन में एक साथ सर्प, मयूर, हरिण और बाघ नहीं रह सकते हैं। बिहारी लाल ने ग्रीष्म ऋतु में एक साथ सर्प, मयूर, हरिण और बाघ को देखा है। ग्रीष्म ऋतु ने अपने उत्ताप से संसार को तपोवन बना दिया है।

कहलाने एकत बसत, अहि मयूर मृग बाघ।
जंगल तपोवन सों कियो दीरघ दाग निदाघ।

(बिहारी सतसई)

परंतु आज ठीक इसके विपरीत पारस्परिकता पर प्रश्न चिह्न लग गया है और भोज्य–भोजक भक्ष्य–भक्षक का भाव प्रबल हो गया है। यहाँ परिवारिक और सामाजिक जीवन में भोज्य–भोजक, शोषित–शोषक का भाव व्याप्त है–

एक–दूजे के शिकार का चढ़ा भूत
सर्प निशाना मयूर रहा साध
परिंदों पर नज़र बाज
बाघ मृग पर बाँधता सूत
इंसान सत्ता संपूर्ण
नीयत खोटी स्वार्थपूर्ण।

(धरा, पृ.43)

दहेज की सुरसा ने इतना आतंक और भय फैलाया है कि लोग भ्रूण का लिंग परीक्षण कर बेटियों की भ्रूण हत्या करने लगे। कवि यहाँ प्राणपन से बेटियों की रक्षा का संकल्प लेता है। बेटियों न रहेंगी, तो फिर सृष्टि पर ही विरामचिह्न लग जाएगा। मनुष्य का स्वार्थ इतना प्रबल है कि वह अपनी कोख के भ्रूण पर भी दया नहीं कर सकता। धिक्कार है उस दंपति का जो प्रकृति के नियम –विरुद्ध आचरण कर रहे हैं।

कवि बेटियों की तारीफ करता है, तो उसकी रक्षा का प्रयास भी करता है। जन–जन में नारी–रक्षण की चेतना का संचार करता है। बेटियों को पुत्र के समान मानने पर बल देता है।

कोख बची तो सृष्टि बचेगी
इन शब्दों को तोल
बेटी शब्द में बसती दुनिया
बेटी है अनमोल।

(बेटियाँ, पृ.59)

आज के युग में ऐसी ही कृति मानव मूल्यों को जगाकर उसकी रक्षा करेगी और जन–जन में चेतना के स्वर भरेगी।

– वृंदावन, मनोरम नगर, एल. सी. रोड, धनबाद, झारखंड–826001

❑❑❑

एक विवेचन सात समंदर पार का

डॉ. रमेश चंद्र शर्मा

विलियम शेक्सपियर ने कहा है कि यदि यह सही है कि 'good wine needs no bash' , तो श्री योगेंद्र कुमार द्वारा प्रस्तुत 'वृत्तांत सात समंदर पार का' अपनी संयुक्त–राज्य अमरीका यात्रा के विवरण को किसी भी पूर्व प्रशंसापूर्ण समीक्षा की कतई आवश्यकता नहीं है, जैसा कि प्रस्तुत पुस्तक के प्रारंभ में कहा गया है। रचना स्वयं में पर्याप्त रूप से सशक्त है। जिस उद्देश्य से इसे लिखा गया है वह पूरी तरह से पूर्ण हुआ है। यह प्रौढ़ लेखक के संवेदनशील व्यक्तित्व से परिचित करवाती है।

वाणिज्य कर विभाग के एडिशनल कमिश्नर (विधि) के पद से सेवानिवृत्ति के बाद अपने छोटे पुत्र ऋषु (ऋषभ) के आमंत्रण पर लेखक सपत्नीक मेरीलैंड के बोई में जाता है। उसका बेटा उनके भ्रमण का प्रबंध करता है। वह भी उनके साथ जाता है। एक बड़ी बात यह है कि लेखक के बड़े भाई, अन्य रिश्तेदार तथा कुछ परिचित भी अमरीका में हैं। वे भी उन्हें विभिन्न स्थानों पर अपने यहाँ बुलाते हैं। इस तरह उनका भ्रमण के साथ–साथ अपने संबंधियों और परिचितों से मिलना–जुलना होता है। सात समंदर पार अपने परिवारजनों और परिचितों से मुलाकात संतुष्टिप्रद एवं रोचक रहती है।

इस यात्रा विवरण का यह एक पक्ष है। दूसरा महत्वपूर्ण पहलू लेखक द्वारा देखे गए स्थानों का सूक्ष्म अवलोकन–निरीक्षण के साथ उनकी विकास पृष्ठभूमि सहित विशद् विवरण पाठक को उन स्थानों से परिचित कराते हैं। उसका एक रोचक उदाहरण नियाग्रा फॉल्स का विशद विवरण है। इस प्रकार से यह वृत्तांत अमरीका के बारे में जानकारी लाने का काम भी करता है। उल्लेखनीय है कि लेखक के कवि होने के कारण उसके वृत्तांतों में सहज संवेदना के दर्शन होते हैं।

अमरीकन जीवन शैली, जिसे उसके परिवारजनों ने किसी हद तक अपना लिया है, और वहाँ के लोगों की कार्यपटुता पर भी उसका ध्यान गया है, जो किसी सीमा तक उसके परिवारजनों एवं परिचितों के जीवन में प्रवेश पा चुकी है। ये प्रसंग भारत की वर्तमान जीवन शैली और कार्य–व्यवहार की ओर उसका ध्यान आकर्षित करते हैं। इसलिए दोनों की तुलना स्वाभाविक रूप से हो जाती है। उदाहरण के लिए कैलीफोर्निया यूनिवर्सिटी के भ्रमण पर विस्तृत विवरण देते हुए उस विश्वविद्यालय की एक विशिष्ट अकादमिक उपलब्धि 2017 तक वहाँ के 62 "शोधार्थियों/ स्कॉलर्स" को "विश्व का सबसे प्रतिष्ठित नोबेल प्राइज " प्राप्त होने का जिक्र करते हुए अमरीका की "शिक्षा और शैक्षणिक योग्यता" को ही उसे विश्व में अग्रणी बनाने का श्रेय देता है। पर इसके साथ ही उसका ध्यान भारत की वर्तमान स्थिति पर जाता है और वह कह उठता है कि "यह

वृत्तांत सात समंदर पार का/ लेखक : योगेंद्र कुमार/ अग्रवाल पब्लिकेसन्स, आगरा / प्रकाशन वर्ष : 2018–2019/ कुल पृष्ठ : 166/ मूल्य : ₹350/–

आश्चर्यजनक है कि जिस देश में कभी नालंदा और तक्षशिला विश्व के सबसे अग्रणी शैक्षणिक संस्थान थे, उस देश में राजनीति का कुत्सित अजगर आज शिक्षा के परिवेश को ही निगलने को आतुर दिखाई देता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही उस क्षेत्र की ओर समुचित ध्यान न देने के कारण ही आज भारत विश्व गुरु की पदवी से पदच्युत हो चुका है और यहाँ की मेधा अमरीका और पश्चिमी देशों की ओर पलायन कर रही है। साथ ही यहाँ की छटपटाती हुई शिक्षा प्रणाली कहीं अपने अस्तित्व को तलाशती नजर आती है। आज हमारा देश शिक्षा के क्षेत्र में विश्व स्पर्धा में कहाँ खड़ा है। यह हमें सोचना होगा।"

लेखक का अपने एक रिश्तेदार के छोटे बच्चों के माध्यम से उनके स्कूल से परिचय होता है और वहाँ की स्कूली शिक्षा पद्धति पर उसका ध्यान जाता है। अमरीका के बच्चों की शिक्षा अधिकांशतः सरकारी स्कूलों में होती है। वह बच्चे 12वीं कक्षा तक निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करते हैं। "अभिभावक का कार्य केवल बच्चों को स्कूल में नामांकन कराना भर होता है। भारत में इस वर्ग की शिक्षा की स्थिति पर वह हताशा से भर विस्तृत टिप्पणी इस प्रकार करता है–

"किसी भी देश को वहाँ की शिक्षा पद्धति विकसित बनाती है। अमरीका के विकसित होने में यहाँ की शिक्षा पद्धति का कितना योगदान है, यह सहज ही समझा जा सकता है। पता नहीं हमारे देश में कब इसकी महत्ता को समझा जाएगा। कान्वेंट प्राइवेट स्कूल का आज भारत की स्कूली शिक्षा व्यवस्था में वर्चस्व है, जो अत्यंत महंगी है। फिर सिफारिशों का भी जोर बच्चों के मध्य पहले ही खाई पैदा कर रहा है। हमारे देश में ज्ञान की प्रधानता के स्थान पर धनाढ्यता ने समाज में अपना वर्चस्व बना लिया है। सरकारी स्कूलों की दशा तो नितांत दयनीय है और इस ओर शासन–तंत्र का कोई ध्यान नहीं है। इस ओर भी कोई ध्यान नहीं है कि हम अपने बच्चों को कौन सी शिक्षा दे रहे हैं तथा यह शिक्षा उनके कौन से चरित्र तथा व्यक्तित्व का निर्माण कर रही है। बच्चों में नकल करके पास होने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है और देश में शिक्षित और अशिक्षित का भेद सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में धीरे–धीरे कमतर होता जा रहा है।

वैसे भारत में शिक्षा के क्षेत्र में बहुत कुछ किया गया है। अनेक उत्साहवर्धक सुधारात्मक योजनाएँ आई हैं, पर उनके क्रियान्वयन में अपेक्षित पैनी दृष्टि के अभाव के चलते कुछ उल्लेखनीय नहीं हो सका है। अब हम नई शिक्षा नीति पर आशान्वित हैं।

अन्य अनेक स्थानों के सुंदर सुखद भ्रमण में माउंट मैडोना पर संकटमोचन हनुमान के भव्य मंदिर में दर्शनार्थी भारतीय मूल के लोगों का होना लेखक को सुखद अनुभूति कराता है, क्योंकि "आस्था तो वर्ग, संप्रदाय, धर्म और जाति का बंधन नहीं मानती। नहीं तो कोई रहीम नहीं होता और कोई रसखान कृष्ण भक्ति में लीन नहीं हो जाता।" लिबर्टी आइलैंड पर स्टैच्यू ऑफ लिबर्टी जो "आज न केवल अमरीका अपितु समस्त विश्व को स्वतंत्रता और मुक्ति का एक सशक्त संदेश देती है"

अपने अमरीका भ्रमण में लगभग ढाई महीने का समय हो जाने पर लेखक पर "अपने देश और घर की याद" हावी होने लगती है। अतः अपने सीमित भ्रमण में "अनेक महत्वपूर्ण स्थलों में घूमने की याद के साथ–साथ भविष्य में अवसर मिलने पर अन्य स्थानों को देखने की आशा लेकर अपने पुत्र ऋषु पर अपने बिछुड़ने के प्रभाव से सहज होने की चिंता करते हुए वह भारत और अमरीका की जीवन पद्धति की तुलनात्मक समीक्षा करते हुए लौटने की तैयारी करने लगता है। अमरीकी समाज के खुलेपन के बावजूद उसे लगता है कि उसमें "बंधन का वह माधुर्य नहीं जो भारत में है। भारत में संबधों की घनिष्ठता और परस्पर जुड़ाव का जो स्वरूप है, वह यहाँ दिखाई नहीं देता।" सामान्य जन–जीवन की औपचारिकताओं और अनेक ऐसी बातों और वहाँ लोगों की ग्रंथियों के बावजूद ऐसा भी बहुत कुछ है जो हम इस विकसित देश से सीख सकते हैं। अनुशासन, स्वच्छता, नियमबद्धता, समयबद्धता, अपनी बारी की प्रतीक्षा,

अपनी प्राकृतिक धरोहर को अक्षुण्ण रखने की प्रतिबद्धता, नागरिकों का सम्मान तथा शिक्षा व्यवस्था कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें हम इस देश का अनुसरण कर सकते हैं।" पर कौन जाने ग्लोबलाइजेशन का यह सकारात्मक पहलू हमारे देश के आम जन–जीवन में भी समीचीन एवं स्वस्थ परिवर्तन ला सके।"

इस सकारात्मक नोट के साथ–साथ समुचित चित्रों से सज्जित 'सात समंदर पार का' यह वृत्तांत भाषा शैली की दृष्टि से रोचक जिज्ञासा वाला पठनीय एवं संग्रहणीय है।

– 16/16, लक्ष्मी भवन, मोतीलाल नेहरू रोड, घटिया आजम खाँ, आगरा–282003

❑❑❑

कठिन जीवन की सहज कथा

डॉ. सुनील कुमार तिवारी

मृत्युंजय द्वारा मूलतः भोजपुरी में लिखित और स्वयं लेखक द्वारा हिंदी में अनूदित 'गंगा रतन बिदेसी' पिछले सौ वर्षों में अपनी जमीन से उखड़े गिरमिटिया लोगों के जीवन संघर्ष का औपन्यासिक आख्यान है। 357 पृष्ठों और 30 शीर्षकों के अंतर्गत समायोजित इस उपन्यास का फलक बड़ा है। मृत्युंजय ने इस कथा को कई स्तरों पर विविध संदर्भों के साथ चित्रित किया है। गिरमिटिया जीवन, विस्थापन, गंवई संवेदना, नगरीय चेतना, सत्याग्रह, मजदूर आंदोलन, महिला जागरण, तिनकठिया प्रथा के साथ–साथ इसमें एक ओर औपनिवेशिक नौकरशाही का बयान है तो दूसरी ओर जेलों में बंद कैदियों की त्रासदी और उनके प्रति असीम संवेदना का चित्र भी है।

विस्थापन की व्यथा को गर्भ में धारण कर 'गंगा रतन बिदेसी' की कथा आगे बढ़ती है। उपन्यासकार ने अपनी प्रस्तावना में भी विस्थापन की पीड़ा को उकेरा है। सचमुच, विस्थापन एक बहुस्तरीय क्रूर यथार्थ है, जिसका इतिहास अंग्रेजी उपनिवेशवाद से लेकर वर्तमान के कोरोना काल तक पसरा हुआ है। ज्ञातव्य है कि गिरमिटिया श्रमिकों की सर्वाधिक खेप भोजपुरी क्षेत्र से ही प्रवास पर गई। वहाँ अपने हाड़–तोड़ श्रम से बंजर इलाके को हरा–भरा करने में उन्होंने अपना यौवन तो कुर्बान कर दिया, पर शोषण के अंतहीन भँवर में घूमते हुए भी अपनी बोली–बानी, गीत, मुहावरों, तीज–त्योहारों को बचाने का पुरजोर यत्न करते रहे। दरअसल, हिंदी में 'विदेशी' शब्द दूसरे देश के निवासी के अर्थ में व्यवहृत होता है, जबकि भोजपुरी में 'बिदेसिया' शब्द उन लोगों के लिए प्रयुक्त होता है, जो अपनी मातृभूमि को छोड़कर दूसरे देशों में बस गए हैं। एक ओर बिदेसिया मजदूरों की अप्रवासन ने जहाँ संपूर्ण भोजपुरी क्षेत्र के दुख एवं वेदना को और ज्यादा गहरा किया, वहीं एक नए प्रकार के लोक सांस्कृतिक परंपरा को जन्म दिया, जिसे 'बिदेसिया' लोकायन परंपरा कहते हैं, जिसमें अप्रवासियों एवं विस्थापितों की स्मृति के कई रंग घुले–मिले हैं। इस प्रकार, भोजपुरी लोक संस्कृति में 'बिदेसिया' शब्द एक प्रकार का प्रतीक है, जो अनेक अर्थों से नियोजित है। इस उपन्यास में प्रवासी पुरखों की उसी संघर्षधर्मिता, श्रमशीलता और छटपटाहट का प्रामाणिक दस्तावेज प्रस्तुत है।

'गंगा रतन बिदेसी' शोधपरक ऐतिहासिक तथ्यों और कल्पना के सुमेल से बुनी गई पठनीय रचना बन पड़ी है। इस उपन्यास का रतन दुलारी नामक पात्र दक्षिण अफ्रीका के नटाल में पैदा हुआ, जिसे गन्ने के फॉर्म के अत्याचार और बाल मजदूर बनने

गंगा रतन बिदेसी (उपन्यास)/ लेखक : मृत्युंजय कुमार सिंह/प्रकाशन : भारतीय ज्ञानपीठ, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली–110003/ प्रकाशन वर्ष : 2020/ कुल पृष्ठ : 357/ मूल्य : ₹ 300/–

से बचाने के लिए उसके पिता राम स्वारथ छह वर्ष की अवस्था में महात्मा गांधी के फिनिक्स आश्रम में छोड़ आए थे। रतन दुलारी दो वर्ष यहाँ रहे, फिर गांधी जी के साथ उनके नए टॉलस्टॉय फार्म में आ गए। आश्रमवासियों के साथ हस्त–कौशल और ज्ञानानुशासन से सधकर रतन का बचपन धन्य हो उठा। दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी के लंबे संघर्ष और सत्याग्रह की सफलता से गिरमिटिया प्रथा का अंत होता है और गोखले के बुलावे पर गांधी जी भारत लौटते हैं। रतन दुलारी भी अपने बाप–दादा के देश को अंग्रजों के पंजे से छुड़ाने का ख्वाब लेकर भारत आ जाते हैं। पहले साबरमती आश्राम निर्माण के श्रमदान, फिर चंपारण आंदोलन में शामिल होते हैं। बारदोली आंदोलन में रतन दुलारी लंबे समय के लिए जेल जाते हैं। चौदह अगस्त, 1947 की रात जब नेहरु ने भारत की स्वतंत्रता की घोषणा की तो उस समय रतन दुलारी दिल्ली के सत्याग्राहियों के बीच थे। सब लोग आधी रात से भोर तक के उत्सव के बाद अपने–अपने घर लौट जाते हैं, पर रतन दुलारी कहाँ जाएँ– माँ, बाप, घर–दवार, खेत–बधार– उनका सब कुछ तो उसी दिन पीछे छूट गया जिस दिन गांधी बाबा का हाथ बँटाने की नीयत से दक्षिण अफ्रीका से भारत आ गए थे। नियति मोड़ लेती है, रतन दुलारी बेहोशी की अवस्था में गुरुद्वारा बंगला साहिब जा पहुँचते हैं, जहाँ दक्षिण अफ्रीका के गांधी आश्रम के पूर्व परिचित भाई परमानंद से भेंट हो जाती है। उन्हींके सहयोग से बनारस यात्रा का विधान बनता है। बनारस यानी पूर्वजों की जमीन पर पहुँचकर रतन की आँखों को सुकून तो मिलता है, पर पेट भरने और अदद ठिकाने की व्यवस्था उन्हें बेचैन भी करती है। संयोगवश जैतपुरा के रेशम–कारखाने के मुसलमान मालिक रहमत अंसारी से मुलाकात होती है और वे यह कहते हुए अपने यहाँ रतन को रख लेते हैं कि "..... सत्याग्रही हो, तुम्हें काम नहीं देंगे तो और किसे देंगे?" इस तरह, रतन दुलारी का अपने पूर्वजों के देश में अब नए सिरे से जीवन–क्रम चल पड़ता है। आगे बनारस की धरा पर ही उपन्यासकार कथा को तीव्र मोड़ देता है। चंपारण आंदोलन के दौरान की पूर्व परिचित गंगझरिया और रतन दुलारी की अकस्मात मुलाकात तब होती है, जब गंगझरिया बदमाशों द्वारा घेर ली गई है और एक स्त्री को संकटग्रस्त देखकर रतन दुलारी जान पर खेलकर उसे बचा लेते हैं। बरजेस और गंगझरिया का सहज प्रेम वर्णन अब बरजेस की मृत्यु के बाद रतन दुलारी और विधवा गंगझरिया के प्रेम और विवाह के संयोग से आ जुड़ता है। रतन को पहले ही गंगझरिया के प्रति उमड़ते स्नेह में नटाल की सोमवरिया दिखती थी। रतन और गंगझरिया के गार्हस्थ्य की गाड़ी हेमबती देवी की उदारता से पटरी पर लौटती है। रतन खेजुआ गाँव में पाँच बीघे के किसान बन जाते हैं। यहीं वे पिता बनते हैं। बेटे का नामकरण होता है– 'गंगा रतन' और रतन दुलारी उसके ऊपर 'बिदेसी' का विशेषण मढ़ देते हैं। कालांतर में गंगा रतन के बेटे दीपू की बीमारी के कारण इनका सारा खेत रेहन पर चढ़ जाता है। गंगा रतन बिदेसी गोदान के गोबर की तरह मजदूर बन शहर का रुख करता है और हावड़ा, कोलकाता, सियालदह की सड़कों तथा दार्जीलिंग के चाय–बागान का चक्कर काटता है। उपन्यास के उत्तरार्द्ध में गंगा रतन बिदेसी अपने बेटे दीपू के भरण–पोषण के लिए अपने मालिक ऋतिक मजूमदार को अपनी पत्नी की हत्या के आरोप से बचाने के लिए इस हत्या का इल्जाम अपने ऊपर ले लेता है और प्रेसीडेंसी जेल जा पहुँचता है। मजूमदार की बेटी डोना से बिदेसी के आत्मीय लगाव के ढेर सारे प्रसंग इस उपन्यास में गुंथे हुए हैं। डोना गंगा रतन के बलिदान से वाकिफ है, वह निरपराध को जेल से बचाने का पूरा यत्न करती है और सफल होती है। दीपू की जान बचाने हेतु धन की व्यवस्था करती है, रेहन पर चढ़ा खेत वापस कराती है, दीपू का भविष्य संवारने का यत्न करती है।

इस तरह, इस उपन्यास में बसने, उजड़ने और फिर बसने का पूरा एक वृत्त बनता है। रतन दुलारी का नटाल से भारत आना और उपन्यास के आखिर में उनके पोते दीपू का डोना के साथ

नटाल जाना– इस कथा वृत्त को सार्थक करता है। रतन दुलारी के दादा मुनेसर कभी मजबूरी में गिरमिटिया कुली बन नटाल गए थे, पर दीपू एक सुयोग के तहत नटाल जाता है। प्रेमचंद गोदान की कथा को दुखांत में रचते हैं, पर मृत्युंजय अगले फगुआ (होली) तक बिदेसिया के मिट्टी के घर के पक्कीकरण की तैयारी की शुभ सूचना के साथ सुखांत मोड़ पर 'गंगा रतन बिदेसी' का उपसंहार करते हुए लोकमन में बसी आशा की दीप ज्योति की महिमा को प्राणवान करते हैं।

मृत्युंजय इस उपन्यास में एकल नायकत्व के बदले पिता और पुत्र दोनों की कथा को साथ–साथ लेकर चलते हैं। पूर्वार्द्ध में उपन्यासकार ने कथा की स्वातंत्र्योत्तर मोहभंग का स्वर गाढ़ा होकर प्रकट हुआ है, पर कथा जब आगे बढ़ती है तो गंगा रतन बिदेसी केंद्र में आता है, फलतः किसान से मजदूर बनने की व्यथा–कथा और गाँव एवं शहर के बीच का द्वंद्व प्रमुखता पाता है। इसके अलावा रतन दुलारी और गंगझरिया, गंगा रतन बिदेसी और लछीमिया का दांपत्य अपनी अपूर्व दीप्ति में यहाँ विद्यमान है तो वहीं डोना का मानवीयता के प्रति असीम समर्पण एवं आग्रह जीवन के प्रति अशेष संभावनाओं का आख्यान बन जाता है।

प्रस्तुत उपन्यास में भोजपुरी क्षेत्र एक राजनैतिक इकाई के रूप में नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक इकाई के स्वरूप को ग्रहण करता है। उपन्यास की कथा यह ध्वनित करती है कि विस्थापित श्रमिक की विलगाव और वियोगजनित क्षति को चंद पैंसों के बदले कभी पूरा किया ही नहीं जा सकता। यह मात्र नॉस्टैलजिया नहीं है। विस्थापित समूह इस क्षति की पूर्ति एक सीमा तक स्मृति और लोकसंस्कृति की अपनी रागपरक अभिव्यक्ति के बूते ही कर सकता है। कदाचित् इसी उपक्रम के तहत उपन्यासकार ने कथा प्रसंगों के मध्य जगह–जगह लोकगीत–संगीत की रागमयी संयोजना उपस्थित की है। भोजपुरी लोकजीवन के प्रति उपन्यासकार की आसक्ति और अभिरुचि बेमिसाल है। यहाँ लोक वर्णन किसी प्रविधि के बतौर प्रयुक्त नहीं है, बल्कि उपन्यास में वृत्तांतों के बीच जो विविधवर्णी लोकगीत, लोकोक्तियाँ, मुहावरे, आह्वानपरक उद्बोधन और मंगलगान नियोजित हैं, वे वस्तुतः मनुष्य के सहजीवी संस्कारों की अहमियत के आख्यान बनकर आए हैं।

'गंगा रतन बिदेसी' वस्तुतः आकंठ आत्मीयता से आपूरित उपन्यास है, जिसमें मृत्युंजय ने कहीं भी शार्टकट नहीं अपनाया है। उपन्यास का फलक बड़ा है, पाट चौड़ा है, घटनाओं की बहुलता है, तथापि इतना भी नहीं कि पाठक तारतम्य न बिठा पाए। उपन्यासकार ने यथासंभव कालखंड का ऐसा गतिशील एवं जीवंत चित्र खींचा है कि पाठक इसके समग्र घटनाक्रम में तन्मय होकर डूब जाते हैं। इस उपन्यास को पढ़ते हुए जानकारी के कई स्तर खुलते हैं तथा नए संस्कृतिगत संवेदनतंत्र में प्रवेश होता है। साथ ही यह दृष्टिगत होता है कि इस उपन्यास की कथा की प्रमुख विशेषता देश–विदेश, भिन्न परिवेश एवं भाषा संस्कृति की सीमाओं को तोड़कर मनुष्यता के स्तर पर अपने अभिप्राय को अर्जित करना है। इस क्रम में अनुभव वृत्त में पूरी तरह आत्मसात् हो चुके संदर्भ कहानी की प्रासंगिकता से जुड़कर उसे एक विस्तृत सार्वभौमिक आयाम देने में सफल होते हैं।

इस उपन्यास की नायिकाएँ भारतीय स्त्री की संकल्पधर्मिता, प्रेम, करुणा और श्रमशीलता की आवाज बनकर प्रत्यक्ष हुई हैं। यहाँ स्त्री चरित्रों में मनुष्यता के प्रति अप्रतिम पक्षधरता, सामाजिक संबंधों में अपार विश्वास देश के रीति–रिवाजों, पर्व–त्योहारों और परंपरा के प्रति जो प्रबल आवेग दिखता है, वहाँ अतिरिक्त भावाकुलता न होकर एक गहन दायित्वबोध की भावना संरक्षित है। उपन्यासकार ने कथा–प्रसंगों के बीच सांद्र प्रेम के जो चित्र संजोए हैं और सहज प्रेम को गँवई रंग में रंगकर प्रकृति, पर्व और ऋतु के साहचर्य से उसे जिस तरह चटख और सजीव बनाया है, वह काबिलेगौर है। सहज दिखने वाले मानवीय संबंधों में व्याप्त जटिलता और भावों–विचारों के वे घात–प्रतिघात, जो सामान्य मनोविज्ञान की सीमा में रहने पर भी उलझनपूर्ण होते हैं, उसे भी

उपन्यासकार ने बखूबी साधा है और एक सघन अपनत्व, बतकही, गुफ़्तगू वाला अंदाज आद्यंत बरकरार रखा है।

इधर हिंदी कथा साहित्य में प्रकृति चित्रण की जो छीजती स्थिति दिख रही है, वह कमी इस उपन्यास में नहीं है। चाय के बागान के भोर की खूबसूरती, विविध चिड़ियों की आवाज, जाड़े की शीत से भीगी धूप, होली का खिलखिलाता रंग– सब कुछ बहुत लगाव और विस्तार से चित्रित किया गया है। गँवई संवेदना का फलक जगह–जगह बहुत विश्वसनीयता के साथ एक मद्धिमलय में उभर कर आया है। उपन्यासकार का सांझी संस्कृति से कोई तौबा नहीं है। कई मुसलमान पात्र अपने मानवीय चरित्र की उदात्तता के साथ गंगा–जमुनी तहजीब को आगे बढ़ाते हैं। ग्रामीण राजनीति की खींच–तान, जाति के प्रश्न पर गोलबंदी जैसे संदर्भों का भी पर्याप्त नोटिस लिया गया है। संघर्ष में यहाँ यथार्थ का पुट भले कम हो, पर अंतर्विरोधों की पहचान में उपन्यासकार से कोई चूक नहीं हुई है।

'गंगा रतन बिदेसी' को पढ़ते हुए गांधी, प्रेमचंद और रेणु की याद स्वाभाविक रूप से आती है। गांधी दर्शन का सत्यान्वेषण, प्रेमचंद का सरोकार और रेणु की भाषा–शैली किसी बैसाखी सदृश प्रयुक्त नहीं है। कथ्य और स्थापत्य दोनों का संतुलन यहाँ सहज संप्रेषणीयता की अभिवृद्धि में सहायक है। उपन्यास को चित्रोपम बनाने में इसकी भाषा का बहुत योगदान है। अनेक स्थलों पर वाक्य विन्यास विमुग्धकारी है। छोटे वाक्यों में बड़ी बात कहने की कला लेखक के शिल्प कौशल को उद्घाटित करती है। दरअसल, उपन्यासकार रचना की अंतर्वस्तु की माँग को बखूबी जानता–पहचानता है और उसे अपने सुगठित शिल्प और सारगर्भित भाषा में पाठकों से परिचित कराता है। उपशीर्षकों की छटा और सूक्तिपरक शुरुआत प्रयोगधर्मिता और अन्वेषण दोनों के सुमेल से साधा गया है और उपन्यासकार ने जिस तरह विचारों, उक्तियों और गीतों से कथा को आगे बढ़ाया है, उससे कथातत्व का ह्रास नहीं होता, बल्कि रसमयता की प्रभावान्विति होती है। जिस भाषा और मुहावरों के साथ उपन्यास का आंरभ होता है, बिल्कुल वैसा ही सहजता और कसावट भरा अंत भी होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भाषा को साध लेने के बाद ही उपन्यासकार ने हाथ लगाया है।

अनुवाद में भी मृत्युंजय ने परिपक्वता का परिचय दिया है। यूँ यह हमेशा ही कहा जाता है कि सर्जनात्मक साहित्य का अनुवाद वाकई संभव नहीं है। स्वयं अपने उपन्यास का अनुवाद करते हुए अनुवादक शब्द–चयन से जूझते दिखते हैं और इस प्रक्रम में नियोजित श्रम पाठ में बखूबी झलकता रहा है।

कुल मिलाकर, भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर में जब ज्यादातर लेखक मध्यवर्ग और बाजारवाद के बारे में ही लिखने में मशगूल हैं और गाँव–देहात की कथाएँ प्रस्तुत करने में बहुत कम लोग रुचि ले रहे हैं, मृत्युंजय ग्राम्य जीवन की विडंबनाओं के बीच चतुर्दिक घिरे लालित्य को पूरे अपनेपन और दायित्व के साथ प्रकट करते हैं। सचमुच अपने पूरे औपन्यासिक वितान में विस्मय, करुणा, विडंबना, त्रासदी और मार्मिकता के साथ उपन्यासकार ने जिस परिवेश का निर्माण किया है, वह प्रामाणिक, जीवंत और सार्थक बन पड़ा है। फलतः मृत्युंजय भविष्य में लोकजीवन केंद्रित और सघन, सुष्ठु और जीवंत कथा पाठकों को सौपेंगे, यह उम्मीद करना बेमानी नहीं है।

– डी ए–291, एस एफ एस फ्लैट्स, शीशमहल अपार्टमेंट, शालीमार बाग, दिल्ली–110088

❑❑❑

संपर्क सूत्र

1. डॉ. पी. राजरत्नम, एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग, तमिलनाडु केंद्रीय विश्वविद्यालय, तिरुवारूर–610005
2. प्रो. हरीशकुमार शर्मा, 29, आशुतोष सिटी, पीलीभीत बाईपास रोड, बरेली, उत्तर प्रदेश–243006
3. डॉ. अलका आनंद, एस.पी.एम. कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
4. डॉ. पुरुषोत्तम कुंदे, प्रभारी प्राचार्य, न्यू आर्ट्स, कॉमर्स एंड साइंस कॉलेज, शेवगाँव, जिला–अहमदनगर, महाराष्ट्र–414502
5. डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी, एन.जी. 22, टाइप–5, नयागाँव, चक्करगाँव, पोर्टब्लेयर, अंडमान–744112
6. डॉ. केशव राम शर्मा, पूर्व उपाचार्य, बी–59, सड़क सं.–3, उत्तरी छज्जूपुर, दिल्ली–110094
7. श्री शिव प्रकाश दास, शोधार्थी, 2–के.बी.एम. रोड, पोस्ट–बैद्यवाटी, जिला–हुगली, पश्चिम बंगाल
8. श्री अंबिकेश कुमार मिश्र, ग्राम–सतघरा, मधुबनी, बिहार–847224
9. डॉ. संध्या वात्स्यायन, एसोसिएट प्रोफेसर, अदिति महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
10. डॉ. सुमित्रा महरोल, डी–160, ग्राउंड फ्लोर, रामप्रस्थ कॉलोनी, ग़ाज़ियाबाद–201011
11. डॉ. गुरमीत सिंह, ई–27, सेक्टर–14, पंजाब विश्वविद्यालय परिसर, चंडीगढ़–160014
12. डॉ. तृप्ता, प्रवक्ता, हिंदी विभाग, अदिति महाविद्यालय बवाना, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
13. डॉ. ममता सिंगला, फ्लैट नं.–311, न्यू आशियाना अपार्टमेंट्स, प्लॉट नंबर–10, सेक्टर–6, द्वारका, नई दिल्ली–110075
14. प्रो. निरंजन कुमार, के द्वारा प्रो. पूनम कुमारी सिंह, फ्लैट नं. – 4, वॉर्डन फ्लैट्स, कोयना हॉस्टल, जे एन यू, नई दिल्ली – 110067
15. डॉ. प्रीति बैश्य, के द्वारा डॉ. रीतामणि बैश्य, एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, गुवाहाटी वि. वि., गोपीनाथ बारदलोई नगर, कामरूप, असम–781014
16. प्रो. सूर्यकांत त्रिपाठी, ग्राम एवं पोस्ट : डफी (बी एच यू), जिला–वाराणसी, उत्तर प्रदेश–221012
17. डॉ. जयपाल सिंह प्रजापति, विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, पंडित सुंदरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़
18. सुश्री नेहा मिश्रा, असिस्टेंट प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय देहरी, काँगड़ा, हिमाचल प्रदेश
19. श्री सुशांत सुप्रिय, ए–5001, गौड़ ग्रीन सिटी, वैभव खंड, इंदिरापुरम, ग़ाज़ियाबाद–201014

20. सुश्री शमा ख़ान, 6/2, केवल विहार, सहस्रधारा रोड, देहरादून–248001
21. श्री अजय मलिक, आई–5, आई ब्लॉक, गोविंदपुरम, ग़ाज़ियाबाद–201013
22. श्री प्रियदर्शी खैरा, 90–91/1, यशोदा विहार, चूना भट्टी, भोपाल, मध्य प्रदेश
23. सुश्री तिथि ढोबले, अभिकल्प ब्रूकर्स हिल शिनफील्ड रीडिंग, बर्कशायर, आर जी 29बी एक्स, यूनाइटेड किंगडम

    Ms. Tithi Dhoble, Abhikalp Brookers Hill Shinfield Reading, Berkshire, R G 29B X, United Kingdom
24. 'पद्मश्री' उषाकिरण खाँ, 1–आदर्श कॉलोनी, श्रीकृष्ण नगर, पटना–800001
25. श्री राजेश्वर सिंह 'राजू', 55/4 नानक नगर, जम्मू–180004
26. डॉ. भारत भूषण शर्मा, 55/4 नानक नगर, जम्मू–180004
27. श्रीमती पद्मा सचदेव, बी–242, चितरंजन पार्क, नई दिल्ली–110019
28. श्री कृष्ण शर्मा, 152/119, पक्की ढक्की, जम्मू–180001
29. श्री शम्मी जालंधरी, 49 पाइन एवेन्यू, वाराडेल, एस. ए. 5046, ऑस्ट्रेलिया

    Sh. Shammi Jalandhari, 49 Pine Avenue, Warradale, S. A. 5046, Australia
30. श्रीमती नीलम शर्मा 'अंशु', 15 यू एफ, सफदर हाशमी मार्ग, मंडी हाउस, नई दिल्ली–110001
31. प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, डी. लिट्., वृंदावन, मनोरम नगर, एल. सी. रोड, धनबाद, झारखंड–826001
32. डॉ. रमेश चंद्र शर्मा, 16/16, लक्ष्मी भवन, मोतीलाल नेहरू रोड, घटिया आजम खाँ, आगरा–282003
33. डॉ. सुनील कुमार तिवारी, डी ए–291, एस एफ एस फ्लैट्स, शीशमहल अपार्टमेंट, शालीमार बाग, दिल्ली–110088

❑❑❑

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र

सेवा में,

निदेशक

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,

शिक्षा मंत्रालय, पश्चिमी खंड–7, आर. के. पुरम्, नई दिल्ली – 110066

ई.मेल – chdsalesunit@gmail.com

फोन नं. – 011–26105211 एक्सटेंशन नं. 201, 244

महोदय/महोदया,

कृपया मुझे भाषा (द्वैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए / पाँच वर्ष के लिए/ दस वर्ष के लिए/ बीस वर्ष के लिए दिनांक ..... से सदस्य बनाने की कृपा करें। मैं पत्रिका का वार्षिक/ पंचवर्षीय/ दसवर्षीय/ बीसवर्षीय सदस्यता शुल्क ..... रुपए, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएँ।

नाम : .....

पूरा पता : .....

.....

.....

मोबाइल/दूरभाष : .....

ई–मेल : .....

संबद्धता/व्यवसाय : .....

आयु : .....

पूरा पता जिस पर : .....

पत्रिका प्रेषित की जाए .....

सदस्यता	शुल्क डाक खर्च सहित
वार्षिक सदस्यता	रु. 125.00
पंचवर्षीय सदस्यता	रु. 625.00
दसवर्षीय सदस्यता	रु. 1250.00
बीसवर्षीय सदस्यता	रु. 2500.00

डिमांड ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम एवं पूरा पता भी लिखें।

नाम एवं हस्ताक्षर

नोट : कृपया पते में परिवर्तन होने की दशा में कम से कम दो माह पूर्व सूचित करने का कष्ट करें।

पंजी संख्या. 10646/61
ISSN 0523-1418

भाषा (दुवैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. ई. डी. 305-1-2021
700

भाषा

जनवरी–फरवरी 2021

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
www.chdpublication.mhrd.gov.in
प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली – 110064 द्वारा मुद्रित